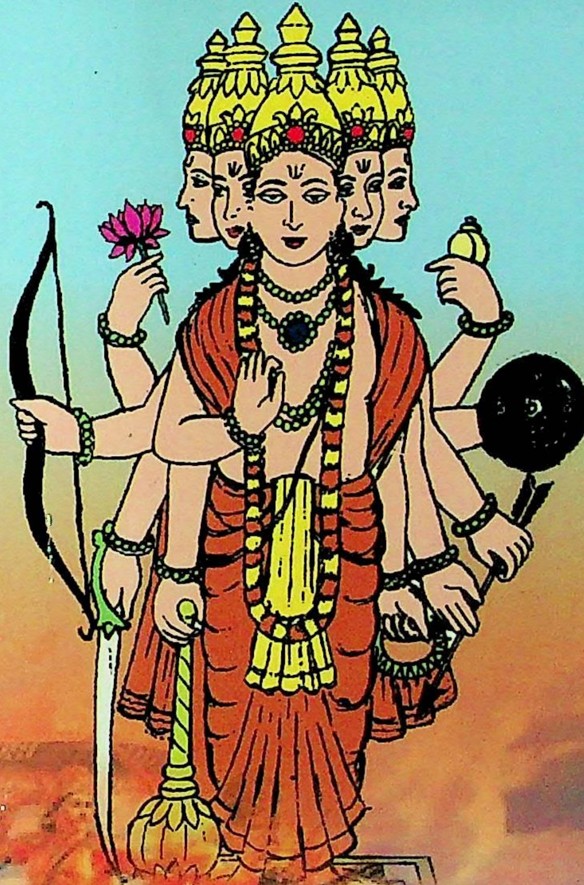
॥ श्री परमात्मने नमः ॥

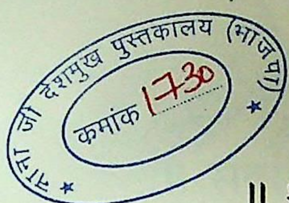
'श्रीमद्-भगवद्-गीता'

गीता-सुगीता-तरङ्गिणी



संकलन-कर्ता एवं टीकाकार

दुर्गा लाल शर्मा राजपुरोहित



॥ श्री परमात्मने नमः ॥

'श्रीमद्-भगवद्-गीता'

गीता-सुगीता-तरङ्गिणी

मूल, पदच्छेद, चरणविभाग, सामान्यर्थ
शुद्ध (उच्चारण-पाठ) विधि समन्वित

संकलनकर्ता एवं टीकाकार :-
दुर्गा लाल शर्मा राजपुरोहित
बी०ए० (हिन्दी-संस्कृत) बी०एड०
अवकाश प्राप्त प्राध्यापक
(जम्मू-कश्मीर राज्य)
किश्तवाड़ 182204
दूरभाष : 01995-260621

॥श्रीमद्-भगवद्-गीता॥

सर्व शास्त्रमयी गीता, सर्व देवमयो हरिः।
सर्व तीर्थमयी गङ्गा, सर्व वेदमयो मनुः॥
गीता गंगा च गायत्री, गोविन्देति हृदि-स्थिते।
चतु-र्गकार संयुक्ते, पुनर्जन्म न विद्यते॥
भारतामृत सर्वस्व, गीताया मथितस्य च।
सार-मुद्धृत्य कृष्णेन, अर्जुनस्य मुखे हुतम्॥
गीताध्ययन शीलस्य, प्राणायामपरस्य च।
नैव सन्ति हि पापानि, पूर्वजन्म कृतानि च।
गीता सुगीता कर्त्तव्या, किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य, मुखपद्माद् विनिःसृतः॥
एकं शास्त्रं देवकीपुत्र गीत,-
मेको देवो देवकीपुत्र एव।
एको मन्त्र-स्तस्य नामानि यानि,
कर्मा-प्येकं तस्य देवस्य सेवा॥

॥ कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

प्रथम संस्करण :
विक्रमाब्द २०६४ ख्रिष्टाब्द २००७

नाम पुस्तक :
श्रीमद्-भगवद्-गीता। "गीता-सुगीता-तरङ्गिणी"

संकलनकर्ता :
दुर्गा लाल शर्मा राजपुरोहित

प्रकाशक :
श्री भारती ज्योतिष प्रकाश कार्यालय,
राजपुरोहित कुटीर, किश्तवाड़ - १८२२०४
दूरभाष - ०१९९५-२६०६२१

लेज़र टाइप सैटिंग:
राजिन्द्र सौगुनिया

मुद्रक : **नीलकंठ कम्युनिकेशंस**
5779/2 ब्लॉक नं. 5, देव नगर, करोल बाग, दिल्ली-110005
दूरभाष : 011-41558813, 41558814 मो॰ 09810030014

मूल्य : 150 रुपया



पण्डित हरि लाल शर्मा 'व्यास'

॥ समर्पणम् ॥



प्रो॰ पण्डित जगन्नाथ शास्त्री जी

प्रातः स्मरणीय

कर्मकाण्डभास्कर-ज्योतिषाचार्य

दिवङ्गत

पण्डित हरि लाल शर्मा 'व्यास'

तथा

ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय गुरुदेव

प्रो॰ पण्डित जगन्नाथ शास्त्री जी

की पुण्य स्मृति में

चतुर्थ पुष्प सादर समर्पित

॥ प्रकाशकीय ॥

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं, सं वो मनांसि जायताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे, संजानाना-मुपासते॥

(अथर्व प्र० खण्ड)

अर्थात् तुम सब लोग जाति भेदभाव से ऊपर उठकर एक हो जाओ (संघे शक्ति क्लौ युगे), सब लोग एक ही विचार के बन जाओ क्योंकि प्राचीन काल में एक मन होने के कारण देवताओं ने हविर्भाग पाया। देवता मनुष्य द्वारा इसीलिए पूजित हुए कि वे एक चित्त थे। एक मन हो जाना ही समाज के गठन का रहस्य है॥

संगठित उद्यम का महान् शत्रु- घृणा, ईर्ष्या, स्वार्थभाव द्वेष्य तथा प्रेम का अभाव है। अतः उपर्युक्त वेद वाक्य (मन्त्र) का अनुसरण कर, 'शुभस्यशीघ्रम्'- मनसा, वचसा, कर्मणा, सब संगठित हो जाओ। हम सभी भारत माता की सन्तान हैं; हम पतित नहीं हैं; हमारा पतन कदापि नहीं हो सकता। हम सनातन हैं।

वेदभगवान्, वेदाङ्ग, पुराण, श्रीमद्भागवत, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, महाभारत आदि महाकाव्य, परमपावनी गीता-गङ्गा का उद्गम स्रोत, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर जैसे अवतारी महापुरुषों की जीवन लीलास्थली, स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द, परमहंस रामकृष्ण, शिवा, प्रताप, दशमेश गुरु गोबिन्द सिंह, सन्त रविदासादि, धर्मवीर, दानवीर, ज्ञान तथा कर्मवीर किंवा राष्ट्रभक्त महात्माओं का जन्म स्थान- भारतवर्ष का अतीत समृद्ध एवं गौरवशाली रहा है।

अपने पूर्वजों की धरोहर को पुनरुज्जीवित एवं सुरक्षित रखने के लिए निद्रा, आलस्य, अकर्मण्यता और उपेक्षा जैसे दुर्गुणों का

सर्वथा त्याग, सनातन धर्म एवं सनातन ब्रह्म में पूर्ण आस्था, व्यक्ति की अपेक्षा व्यक्तितत्त्व की पूजा करना, चित्र की अपेक्षा चरित्र को नमन करना तथा अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए देश, धर्म, संस्कृति और सभ्यता के प्रति प्रेम, विश्वास, आचरण तथा अनुसरण जैसे सद्गुण अपनाने परमावश्यक हैं, अन्यथा हमारी गणना मनुष्य रूप में पशु और धरती का बोझ, रूप में की जायेगी। यथा–

येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुविभार भूता, मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।।

हम सभी कथनी से नहीं वरन् करनी से धर्मवीर, कर्मवीर, दानवीर, ज्ञानी और आस्तिक बनें, अपने कर्त्तव्यकर्त्तव्य, कर्माकर्म को समझें, सद्ग्रन्थों का पठन-पाठनाध्ययन करें– इन सभी यथार्थ तत्त्वों का बोध कराने के लिए तथा मन्त्र स्नानार्थ शुद्धमन्त्रोच्चारण हेतु प्रस्तुत पुस्तक 'गीता-सुगीता-तरङ्गिणी' को लोक हितार्थ प्रकाशित किया गया है।

शरीर को पवित्र रखने के लिए नित्य प्रति जल स्नान आवश्यक है किन्तु मन शुद्धि के लिए मन्त्र स्नान परमावश्यक है। वर्तमान् काल के संघर्षमय जीवन की भागदौड़ में, अशान्त मन को शान्त एवं प्रसन्न रखने के लिए कर्मक्षेत्र, धर्मक्षेत्र, सुखसमृद्ध्यर्थ, पुरुषार्थ चतुष्टय प्राप्त्यर्थ, गीता रूपी गंगा में नियमित रूप से प्रतिदिन कम से कम दस मिनट गोता लगाने के लिए हमारा नम्र एवं सविनय आग्रह है।

श्रीमद्भगवद्गीता में 700 श्लोक हैं। ये सभी मन्त्र हैं क्योंकि मन्त्रशास्त्रानुसार–

मननात् त्रायते यस्मात्, तस्मान्मन्त्रं प्रकीर्तितः।
जपात् सिद्धि र्जपात्सिद्धि, र्जपात्सिद्धि र्न संशयः।।

श्री गीता जी का नित्य नियमपूर्वक पठन या पाठन करने वाले, मनन और चिन्तन करने वाले तथा तद्नुरूप आचरण करने वाले नीरोग, यशस्वी और दीर्घजीवी बने। इस कथन में कोई अतिशयोक्ति (Exaggeration) नहीं वरन् शाश्वत सत्य है– स्व॰ भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ॰ राधाकृष्णन, राष्ट्रपिता गान्धी जी, हमारे माननीय एवं प्रातः स्मरणीय गुरुदेव और ऐसे ही अन्यान्य गीता प्रेमी विभूतियाँ हमारे कथन की पुष्टि के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता जी के पठन पाठन का अधिकार बिना किसी वर्णाश्रम भेद, जाति-लिङ्ग भेद के सब को समान है। भगवान् की शरण में आकर सभी स्त्री पुरुष तथा पापयोनि वाले भी सांसारिक सुख भोग कर अन्ततः परमपद को प्राप्त होते हैं। यथा–

भगवद्वाक्य –

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य, येऽपि स्युः पाप योनयः।
स्त्रियो वेश्य-स्तथा-शूद्रा,- स्तेऽपियान्ति परां गतिम्॥

(गीता अध्याय 9 श्लोक 32वां)

जनता जनार्दन के करकमलों में स्वच्छ, स्वस्थ, शुद्ध एवं संस्कृत सामग्री भेंट की जाये, इस बात का यथा सम्भव प्रयास किया गया है। यद्यपि भगवद्ग्रन्थ को शुद्ध रूप में प्रस्तुत करने की भरसक चेष्टा की गई है, तथापि मानव स्वभाव-सुलभ असावधानी या प्रमादवश कुछ त्रुटियों का रह जाना नितान्त सम्भाव्य है। ऐसी भूलों के लिए क्षमा मांगते हुए विद्वज्जन धर्म तथा जनहित प्रेमी बन्धुजनों से हमारा नम्र निवेदन है कि वे हमें त्रुटियों से अवगत करायें ताकि भविष्य में उनका यथोक्त सुधार सम्भव हो सके।

नोट :- गीता रूपी गंगा में गोता लगाने से पूर्व निम्न चार शीर्षकों के अन्तर्गत दी गई विषयवस्तु को अवश्य पढ़ें– ऐसा हमारा पाठकों से सविनय, सादर एवं नम्र निवेदन है–

(i) प्रकाशकीय (ii) प्रस्तावना और (iii) मन्त्रोच्चारण सिद्धान्त तथा (iv) उपोद्घात्।। अन्त में–

श्री शङ्करः शं करोतु॥

दिनाङ्क : 23-01-2007 **प्रकाशक**
वसन्त पंचमी

॥ श्री श्री गुरुदेवाशीर्वादम् ॥

ब्रह्मलीला लीन होने से पूर्व परमपूज्य गुरु देव

श्रीयुत पं० जगन्नाथ शास्त्री

जय राधे!

श्री पं० दुर्गा लाल शर्मा माँ दुर्गा के चरणों में बड़ी निष्ठा रखते हैं तथा किश्तवाड़ की पुरानी ज्योतिष विद्या, जो किश्तवाड़ और काश्मीर में प्रसिद्ध है, उसमें भी सिद्धहस्त और निष्णान्त हैं।

अब यह नया स्तुत्य प्रयास कर रहे हैं कि 'श्रीमद्भगवद्गीता' की, जनता जनार्दन के लाभार्थ, अन्वय और भाषार्थ सहित छापकर साधारण हिन्दी जानने वालों को पूरा पूरा लाभ हो।

किश्तवाड़ में कुछ वर्षों से 'श्रीसत्यनारायण' मन्दिर में प्रतिदिन गीता पाठ की परिपाटी चल रही थी। उन सज्जनों को भी पूरा-पूरा लाभ मिले और अन्य जनता को 'श्रीमद्भागवद् गीता' से पूरा परिचय और लाभ प्राप्त हो। इस प्रयास में उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। अत: इस कार्य में प्रत्येक गीता प्रेमी को तन-मन-धन से सहयोग देना चाहिए ताकि यह भगवत् कृपा का काम सम्पूर्ण हो सके।

इस पवित्र कार्य के लिए मैं हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि यह काम पूर्णतया सफल और समृद्ध हो तथा इसमें किसी प्रकार का विघ्न न आये।

मेरा इसमें शतशत प्रणाम, आशीर्वाद और सहयोग सम्मिलित है।

जगन्नाथ शास्त्री

वैशाख शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया)

24-09-2058

॥ मङ्गलाशीर्वादम् ॥

अखण्डानन्द बोधाय, सच्चिदानन्ददाताय, गुरुदेवाय ते नमः॥

यह परमानन्द की बात है कि मुझे श्री दुर्गा लाल जी शर्मा राजपुरोहित द्वारा संग्रहीत एवं सम्पादित रचना **'गीता-सुगीता- तरङ्गिणी'** की पाण्डुलिपि को आद्योपान्त पढ़ कर श्रीमद्गीता गङ्गा में मन्त्र स्नान करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रिय बन्धु दुर्गा लाल जी ने पूरे हिन्दू समाज को इस ज्ञान, कर्म और भक्ति की त्रिवेणी में मन्त्र स्नान करने का सफल एवं सुफल प्रयास कर सम्पादित रचना का नाम सार्थक कर दिखाया है; कारण कि मात्र हिन्दी वर्ण माला के अक्षरों और मात्राओं का भली प्रकार ज्ञान रखने वाला, वर्णों से शब्द तथा शब्दसमूह से बने वाक्य को, भली भान्ति पढ़ने वाला, धर्म प्रेमी बन्धु भी श्री गीता जी के श्लोकों का पाठाभ्यास कर सकता है और निरन्तर अभ्यास कर के भगवत्कृपा से सभी धर्म ग्रन्थों को, जो प्राय: संस्कृत भाषा में लिखे गये हैं– का शुद्धता से उच्चारण कर सकता है।

एक विशेष बात– मूल गीता जी के श्लोकों में लेशमात्र भी परिवर्तन या किसी एक शब्द को नहीं बदला है। 'हाथ कंगन को आरसी क्या?' धर्म प्रेमी बन्धु विशेषतया संस्कृत भाषा का ज्ञान रखने वाले विद्वज्जन इस सत्य का स्वयं अनुमोदन कर सकते हैं।

पुस्तक लिखने से पहले 'मंगलाचरण', पुस्तक लिखने के उद्देश्य में प्रस्तावना, जो एक अच्छी पुस्तक के गुण होते हैं– इन बातों का भी पूर्ण रूपेण निर्वहन किया है।

संस्कृत शुद्ध उच्चारणार्थ मूल सिद्धान्त (Rules) का पाठारम्भ से पूर्व पाठक के मार्गदर्शनार्थ अलग से तथा विस्तार और सरल ढंग से समझाने का प्रयास किया है।

'पाठ विधि' का अध्याय जोड़ कर पाठ को सुफल बनाने का शास्त्रोक्त विधान बताया है, जो कि प्रशंसनीय है। स्वयं भगवान् वासुदेव ने भी इस बात का अनुमोदन गीता अध्याय १६ मन्त्र २३ में इस प्रकार किया है। यथा–

य: शास्त्रविधिमुत्सृज्य, वर्तते कामकारत:।
न स सिद्धिमवाप्नोति, न सुखं न परां गतिम्॥

पाठ समाप्ति के पश्चात् माहात्म्य पठन और श्रवण की अनिवार्यता फिर आरती तथा अन्त में क्षमा याचना तथा प्रार्थना का सुन्दर ढंग से समावेश कर लेखक महोदय ने लोक हितार्थ वन्दनीय एवं अनुकरणीय कार्य किया है।

तत्पश्चात् रोचक ढंग से कुछ स्तोत्रादि को लोक कल्याणार्थ प्रस्तुत कर सराहनीय परिश्रम किया है। अन्त में कल्याणकारी, अनुकरणीय विचार लिखकर लेखनी को विराम दिया है।

श्री सनातन धर्म में आस्था रखने वाले पूरे हिन्दू समाज के लिए यह पुस्तक एक अनुपम उपहार है। धर्म तथा धर्मशास्त्र के प्रति अनुराग रखने वाले बन्धुओं के लिए यह पुस्तक एक अनमोल निधि है, ऐसी हमारी धारणा है।

हमारी ओर से इस मंगल कार्य को पूर्ण तथा सफल और उपयोगी बनाने हेतु लेखक को हार्दिक आशीर्वाद एवं पूर्ण सहयोग सम्मिलित होगा।

ओ३म् शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!! सुशान्तिर्भवतु॥

दिनाङ्क १५/१२/२००६

चूनी लाल शर्मा
ज्योतिषी
पूर्व प्रधान, श्रीसनातन धर्म सभा
किश्तवाड़

॥ श्री हरिः ॥

ग्रन्थविषयक टिप्पणी एवमाशीर्वादस्वरूप

'दो वाणी पुष्प'

'श्रीमद्भगवद्गीता' हिन्दू सनातन संस्कृति का एक ऐसा अमूल्यरत्न है जो मानवता का सम्पूर्ण चिरस्थायी शाश्वत सत्य है; एवं अर्थ धर्म काम मोक्ष तथा ज्ञान कर्म उपासना का अद्भुत समन्वय, सम्पूर्ण वेदों का सारभूत "सर्वोपनिषदोगावो दोग्धागोपालनन्दनः। **पार्थोवत्सः सुधी-र्भोक्तादुग्धं गीतामृतं महत्॥** है।

श्री वेदव्यास जी द्वारा रचित श्रीमद्भगवद्गीता को सरस एवं सरल ढंग से 'गीता सुगीता तरङ्गिणी' नामक व्याख्या के माध्यम से, श्रीदुर्गालाल जी शर्मा, राजपुरोहित द्वारा जन जन तक पहुँचाने का सुफल प्रयास हुआ है। इस प्रयास के लिए व्याख्याकार साधुवाद के पात्र हैं। हम ईश्वर से इनके मङ्गलमय जीवन की कामना करते हैं।

यह श्रीमद्भगवद्गीता 'गीता सुगीता तरङ्गिणी' व्याख्या जन जन तक पहुँचकर, धार्मिक प्रचार-प्रसार में सहायक सिद्ध होगी।

रामशरणदास
साहित्यवेदान्ताचार्य
श्रीगौरीशङ्करमन्दिर
सरकूट
किश्तवाड़।

दिनाङ्क 29-12-2006
पौषशुक्लैकादशी
(पुत्रदा एकादशी)

अत्रादौ श्रीमद्गणेशगुर्वादि ध्यानमावाहनमात्मनिवेदनं च किंवा विद्वज्जनानामनुग्रहञ्च

अशेषानन्द बोधाय, शिष्य सन्ताप हारिणे।
अच्युतानन्द दाताय, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥१॥
विश्वेश्वरं नमस्कृत्य, गणेशं च सरस्वतीम्।
इष्टदेवं महेशं च, देवगुरुं बृहस्पतिम्॥२॥
व्यासं व्यासपुत्रं च, नत्वा देवीं महेश्वरीम्।
सूर्यचन्द्रमसौ चैव, प्रत्यक्ष कर्म साक्षिणौ॥३॥
अद्रिप्राणाम्बराक्ष्याब्दे, विक्रमार्कस्य संवति।
गुरुवासर चित्रायां, शुभ सौभाग्य योग च॥४॥
कष्टनिवार वास्तव्य, विप्रवंश समुद्भवः।
दुर्गायाः नन्दनेत्याख्या, भगवत्तव सेवकः॥५॥
प्रकुर्वेऽहं लेखनी बद्धं, लोक कल्याण कारकम्।
गीता-सुगीता-तरङ्गिण्यां, मोक्षाभ्युदय दायकम्॥६॥
श्रीकृष्ण परमेशान, विशुद्ध ज्ञान दायक।
प्रसादं कुरु देवेश, मम कार्येषु सर्वदा॥७॥
कृष्ण कृष्ण हरे कृष्ण, राम राम हरे हरे।
राम राम हरे राम, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥८॥
या देवी सर्वभूतेषु, ज्ञानरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै! नमस्तस्यै!! नमस्तस्यै नमो नमः॥९॥
भीमाक्षि भीमरूपे च, दुष्ट दानव घातिनि।
मङ्गले च सुशीले च, सदाऽमङ्गल नाशिनि॥१०॥
श्रीपीठस्थदेवि चामुण्डे, ममानुग्रहकारिणि।
माहेश्वरि नमस्तुभ्यं, भक्तानामुपकारिणि॥११॥
यद्यस्मिन्विषये किञ्चित्, त्रुटिश्च परिलक्ष्यते।
सद्वाक्य साधुवाक्येनाऽ, नुगृह्णन्तु हि कोविदाः॥१२॥

॥ कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

भजेऽहं सदा वासुदेवं सुरेशं, हरिं केशवं पद्मनाभं ब्रजेशम्।
चिदानन्दरूपं प्रपन्नार्ति नाशं, मुरारिं जगत्तारकं गोपवन्द्यम्॥१॥

परं पावनं ज्ञान-विज्ञान रूपं, अजं निर्विकल्पं सदानन्दरूपम्।
त्रिकालज्ञमीशं लसद्भाल चन्द्रं, भजे कृष्णचन्द्रं सुराणामधीशम्॥२॥

जगद्वन्द्य वंशीधरं यादवेन्द्रं, जगद्भार नाशे महाकालरूपम्।
निरातङ्कमातङ्क मोहादि नाशं, नतोऽहं परं निश्चलं सौम्यरूपम्॥३॥

दयादानशीलं गुणातीतमीशं, महामोह मारं परानन्दरूपम्।
चिदानन्दकन्दं महेशादिवन्द्यं, धराभार नाशं भजे यादवेशम्॥४॥

तडित पुञ्जभासं सुनेत्रं सुवेषं, सुनीलाभ्रवर्णं त्रिनेत्रं सुकेशम्।
दुराचारभक्षं महाकालमीशं, प्रणत्पालमीशं किरीटिं भजेऽहम्॥५॥

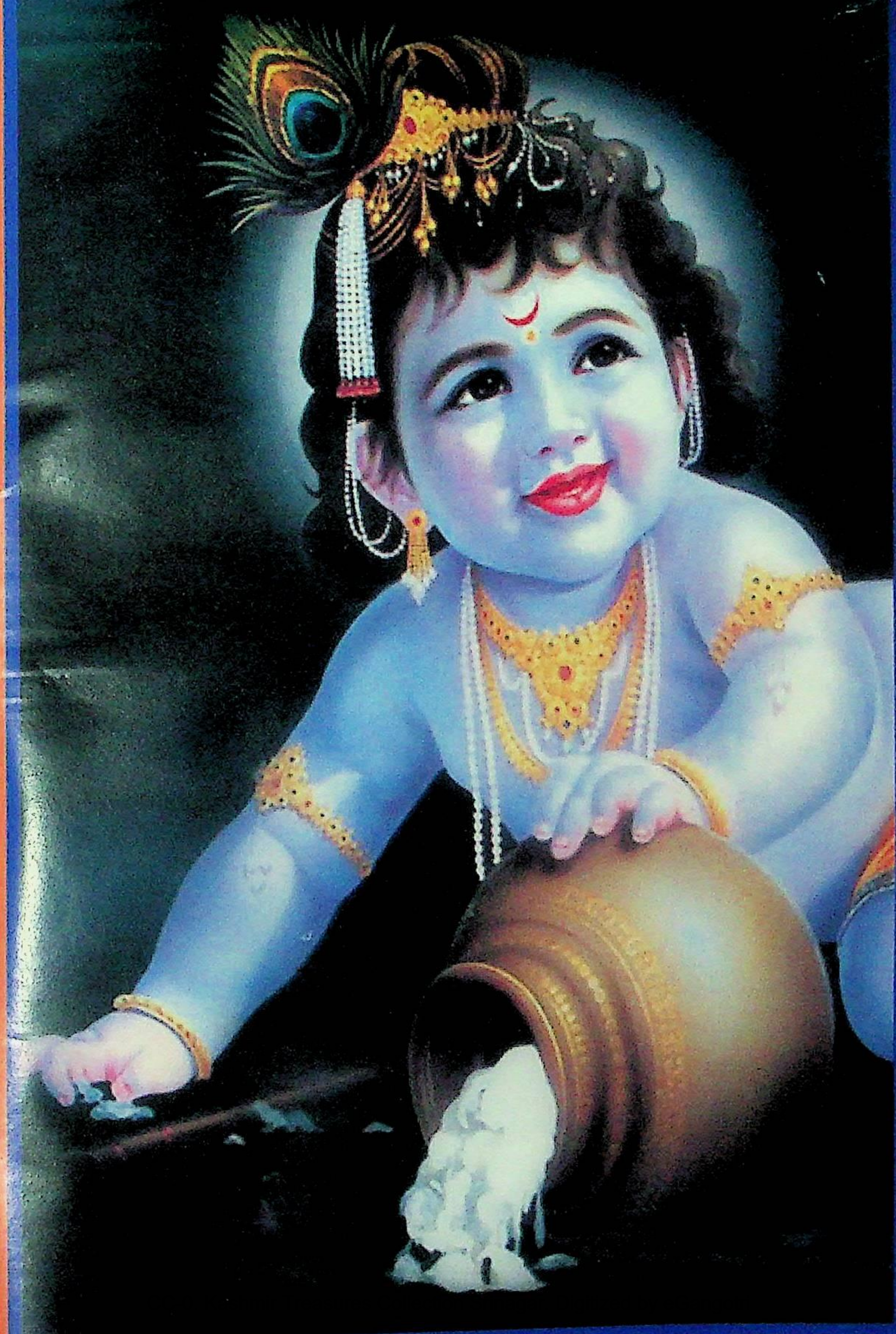
परेषाम्परं ब्रह्मवेद स्वरूपं, अजं श्रीधरं माधवं वेद गर्भम्।
महीभार नाशं चिदानन्दमीशं, सदानन्दकन्दं भजेहं भजेहम्॥६॥

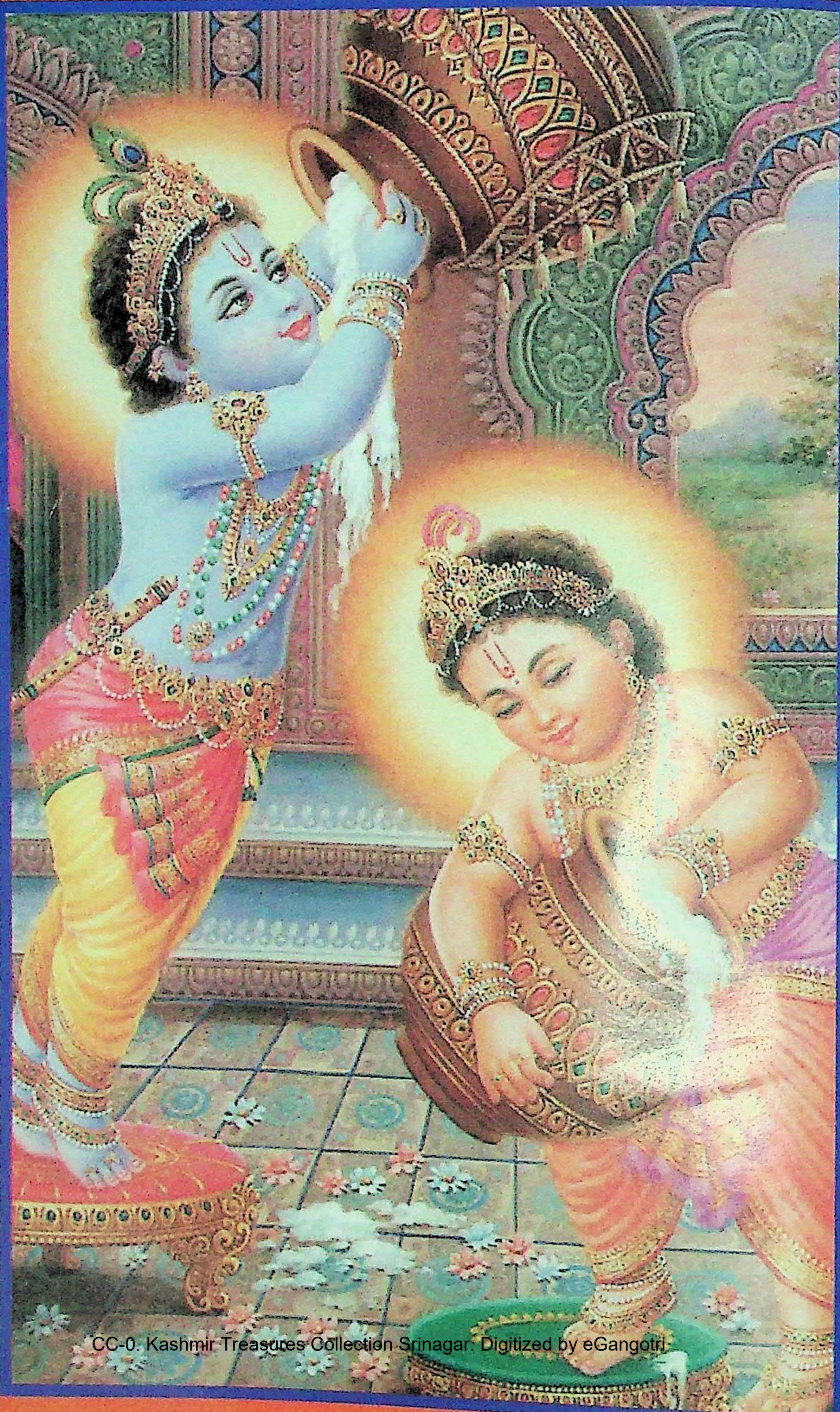
चलत्कुण्डलं श्यामवर्णं सुशीलं, दयालुं कृपालुं सदाचारशीलम्।
अनादिं ह्यपारं महापाप नाशं, महानन्दरूपं भजे कृष्णमीशम्॥७॥

अकारं उकारं मकारं ककारं, प्रजेशं रमेशं महेशं ब्रजेशम्।
निरातङ्करूपं नराकारदेहं, भजे कृष्ण चन्द्रं सदासर्वदाऽहम्॥८॥

कृष्णाष्टकमिदं पुण्यं, शक्तिदासेन निर्मितम्।
यः पठेद् भक्तिभावेन, स लभेत् सम्पदां पदम्॥९॥

केशवाय नमस्तुभ्यं, नमस्तुभ्यं शिवाय च।
एकात्मने नमस्तुभ्यं, हरिये च हराय च॥१०॥





विषयानुक्रमणिका

इत्यलम्।।

॥ प्रस्तावना ॥

वर्णानामर्थसंघानां, रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्तारौ, वन्दे वाणी विनायकौ॥१॥
ओं घण्टा शूल हलानि शंख मुसले, चक्रं धनुः सायकं,
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्त विलस,-च्छीतांशुतुल्य प्रभाम्।
गौरी देह समुद्भवां त्रिजगता,-माधार भूतां महा,
पूर्वामत्र सरस्वती मनुभजे, शुम्भादि दैत्यार्दिनीम्॥२॥

भाषा – वर्णों, अर्थसमुदायों, रसों तथा छन्दों और कल्याणमङ्गल की उदगं स्रोत बुद्धिदात्री माता सरस्वती तथा सिद्धिदाता आदि पूज्य गणपति गणेश की हम वन्दना करते हैं।।1।। जो अपने कर कमलों में क्रमशः घंटा, त्रिशूल, हल, शंख, मूसल, चक्र, धनुष तथा बाण धारण करती हैं, शरद् ऋतु के शोभा सम्पन्न चन्द्रदेव के समान जिनकी शीतल एवं मनोहर कान्ति है, जो तीन लोकों की आधारभूता शक्ति हैं, शुम्भादि दानवों का संहार करने वाली हैं तथा जिनका प्रादुर्भाव मां गौरी के शरीर से हुआ है, उन बुद्धि प्रदा महासरस्वती का हम निरन्तर स्मरण करते हैं।।2।।

अपने कूटस्थ जीवात्मा द्वारा चिरकाल से प्रोत्साहित एवं सचेत करने वाली मूक पुकार, कुछेक धर्म प्रेमी बन्धुओं के निरन्तर आग्रह से कि भगवान् की गीतामयी अमृतवाणी को अपने स्वर में 'टेप' में बन्द कर दी जाए ताकि उसके माध्यम से वे भी अभ्यासरत हो कर पुण्य लाभ प्राप्त कर सकें, 'सूत-शौनक-संवाद' के अन्तर्गत श्रीभगवान् वासुदेव प्रोक्त 'गीता-माहात्म्य' श्रवण, भगवान् केशव का यह आदेश **'कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन'**, देवभाषा संस्कृत से अनभिज्ञ-मात्र हिन्दी भाषा जानने वाले सनातन-धर्म-प्रेमियों की यह

जिज्ञासा कि वे भी 'कर्म-भक्ति एवं ज्ञान- की त्रिवेणी 'गीतामृत वाणी' का आस्वादन एवं लाभ उठा कर कृतकृत्य हो जायें, गुर्वाशीर्वाद, माँ भारती का अनुग्रह तथा द्रुतलेख लेखन निपुण गणपति गणेश का वरद हस्त- इन उपर्युक्त प्रेरणा स्त्रोतों के फलस्वरूप हमारा यह 'सर्वलोक हितार्थ'- **'गीता-सुगीता-तरंगिणी'** के प्रकाशन का भवभयहारी एवं मंगलकारी स्वप्न साकार हुआ। यह सब दैव की कृपा है- हम तो निमित्त मात्र हैं।

'नर सेवा - नारायण सेवा' यही हमारा एकमात्र ध्येय है। यदि जनता जनार्दन के करकमलों में इस पुस्तक के आ जाने से तथा इसके पठन-पाठन, चिन्तन-मनन किंवा तद्नुरूप व्यावहारिक जीवन में आचरण करने से सत्पथ पर आरूढ़ होकर अपना इहलोक एवं परलोक सुधारने में सम्बल मिले तो इससे बढ़कर प्रसन्नता तथा पारितोषिक अवाञ्छनीय है।

॥ श्रीमद्-भगवद् गीता नामकरण ॥

श्रीमद्भगवद्गीता सन्धियुक्त समस्त पद है। यथा-

श्रीमत्+भगवत्+गीता = श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीमत् = सौभाग्यशाली, समृद्धिशाली आदि,

किन्तु यहाँ अर्थ होगा - परमानन्ददाता

भगवत् = यशस्वी, श्रद्धेय, देव उपदेव का विशेषण

किन्तु यहाँ अर्थ होगा - भगवान् वासुदेव

गीता = संस्कृत पद्य में लिखे गए कुछ धार्मिक ग्रन्थ, बहुधा 'गुरु-शिष्य-संवाद' रूप में जो विशेष रूप से धार्मिक और आध्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं और यहां अर्थ होगा- श्री 'कृष्णार्जन-संवाद' रूप धार्मिक एवं आध्यात्मिक ग्रन्थ।

अर्थात् श्रीसम्पन्न, परमानन्द, सच्चिदानन्दघन, भगवान् वासुदेव प्रणीत 'श्री कृष्णार्जुन-संवाद' रूप, धार्मिक एवं आध्यात्मिक ग्रन्थ– 'श्रीमद्-भगवद्-गीता' है।

नोट :- जिज्ञासु धर्म प्रेमी, हमारे आदरणीय बन्धुजन, संस्कृत शब्दकोश का अवलोकन कर सार्थकतानुमोदन करें।

'श्रीमद्-भगवद्-गीता' सत्-चित्-आनन्द-घन स्वरूप, परमानन्द, परमपिता, त्रिलोकी नाथ, जगन्नियन्ता, परात्पर, परब्रह्म परमेश्वर, भक्तवत्सल भगवान् श्री कृष्ण की दिव्य वाणी का प्रसाद है।

यह अपूर्व एवं अद्‌वितीय ग्रन्थ रत्न– धर्मार्थकाममोक्ष संज्ञक पुरुषार्थ चतुष्टय प्रदाता, वर्णाश्रमधर्म-व्यवस्था का प्रेरक, सभी देश-विदेश के धर्म-सम्प्रदाय तथा मतमतान्तर जन समुदाय का यह 'ग्रन्थ शिरोमणि' है। जभी तो देश-विदेश की अन्यान्य भाषाओं में इस भगवत्-प्रणीत शास्त्र के अनुवाद पुष्प उपलब्ध हैं।

इस भगवदोक्त ग्रन्थ की गरिमा इस सत्य से भी अधिक उज्ज्वल हो रही है कि यह सर्वमान्य ग्रन्थ किसी अन्य धर्मावलम्बी के धर्म का खण्डन नहीं करता वरन् सभी विभिन्न धर्म-पथ पर चलने वालों को अपने ही अपनाये हुए धर्म का दृढ़तापूर्वक एवं पूर्ण निष्ठा के साथ पालन करने की आज्ञा देता है। इस कथन का प्रमाण अध्याय 3 मन्त्र 35 अवलोकनीय है : **"श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनंश्रेयः, परधर्मो भयावहः॥"** अतः हमारा यह कथन 'गीता एक सार्वभौम ग्रन्थ रत्न है' में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

गीता 'सर्वशास्त्रमयी है- – इस अमूल्य ग्रन्थ रत्न में धर्म-कर्म, ज्ञान-विज्ञान, भक्ति एवं वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था का विषद किंवा सारगर्भित विवेचन है। धर्मक्षेत्र, कर्मक्षेत्र, ज्ञानक्षेत्र, राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में कार्यरत महानुभावों के लिए ज्ञान के प्रकाश की प्राप्त्यर्थ – इस ग्रन्थ का अध्ययन नितान्त आवश्यक है।

एक महत्त्वपूर्ण बात

हमारे क्षेत्रीय तथा अन्य कुछेक बन्धुजनों की यह धारणा है कि 'गीता ज्ञान' संन्यासी महात्माओं की विषयवस्तु है तथा गीतापाठी संन्यासी हो जाता है। हमारे स्थानीय पूर्वाचार्यों की भी सम्भवतः यही धारणा रही होगी, जभी तो हमारे क्षेत्र में 'सर्वशास्त्रमयी' गीता के पठन-पाठन का अभाव चिरकाल तक रहा। किन्तु हमारे उपर्युक्त धारणा रखने वाले बन्धुजन तथा पूर्वाचार्यगण इस सार्वभौम ऐतिहासिक सत्य को भला कैसे झुठला सकते हैं कि गीता ज्ञान देने वाले 'वक्ता' तथा गीता ज्ञान सुनने वाले तथा तद्नुरूप आचरण करने वाले 'श्रोता' - गोपाल कृष्ण तथा धनुर्धर अर्जुन – दोनों ही गृहस्थी थे और अन्ततः गृहस्थाश्रम में ही रहे।

साष्टांग नमन

हमारी उपर्युक्त बात का अनुमोदन करते हुए एक डेढ़ दशक पूर्व हमारे इसी कष्टनिवार क्षेत्र के ब्राह्मण कुलभूषण, ज्ञानवृद्ध एवं वयोवृद्ध पण्डित लेखराज शर्मा जी ने श्री किश्तवाड़ नगर के मध्य स्थित 'श्री लक्ष्मी नारायण मन्दिर' में स्ववर्णाश्रम धर्म के सनातन धर्म प्रेमी 10/12 युवाओं को प्रेरित कर गीता जी का पाठाभ्यास करवाया। इनके वन्दनीय एवं भगवदास्था से प्रेरित मंगलमय प्रयास से हमारे उपर्युक्त संख्यक युवाबन्धु गीता पाठ करने में सक्षम हो गये हैं। भगवान् वासुदेव इन्हें शतवर्षायु एवं शुभस्वास्थ्य प्रदान करें– ऐसी हमारी हार्दिक कामना है। दूसरी ओर हमारे प्रातः स्मरणीय दिवंगत परमपूज्य गुरू देव, प्रोफेसर जगन्नाथ शास्त्री जी ने हमारी पूजनीया महिला समाज को गीता जी का पठन-पाठनाभ्यास तथा गीतोपदेश का सफल किंवा सुफल प्रयास किया और दीर्घायु समयावधि पूर्ण कर भगवद्धाम सिधारे। इन उपर्युक्त दोनों सनातन-धर्मानुयायी, ज्ञान-मान-वृद्ध, दीर्घजीवी, धर्म-कर्म वीरों को, हमारा शत-शत प्रणाम।

यह श्री अकाट्य एवं निर्विवाद ऐतिहासिक सत्य है कि अर्जुन अपने

क्षात्रधर्म से विमुख हो गया था, किन्तु गीता ज्ञान श्रवण कर– धर्माधर्म, कर्त्तव्याकर्त्तव्य को भली भान्ति समझ कर कर्त्तव्य कर्म में पुनः आरूढ़ हुआ तथा युद्ध में विजयश्री प्राप्त कर पृथ्वी का राज्य भोगा, संन्यासी नहीं बना।

नर रूपधारी भगवान् वासुदेव ने अपने परमसखा एवं अनन्य भक्त पृथा पुत्र पार्थ को निमित्त बनाकर 'गीताज्ञान' रूपी अमूल्य रत्न, अनन्तकाल तक, अनन्त पीढ़ियों के लिए, धरोहर रूप में रख छोड़ा है ताकि सभी अज्ञानान्धकार से निकल कर ज्ञान के प्रकाश से आलोकित होकर, अपना वर्णाश्रम-धर्म मङ्गलमय बनाने के साथ-साथ भगवान् के बताये हुए अत्यन्त सुगम एवं सहज मार्ग पर चलते हुए निष्काम कर्म द्वारा अभ्युदय (आयु, विद्या, बल, यश, स्त्री सन्तान सुख, सर्व मङ्गल) और निःश्रेयस (परमगति) की सिद्धि प्राप्त कर सकें, जो कि मानव जीवन का परम किंवा चरम लक्ष्य है।

इस ग्रन्थ के पठन-पाठन से सभी श्रोता-वक्ता-साधक महानुभावों का कल्याण हो, इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर पाठारम्भ एवं समाप्ति का, शास्त्र सम्मत अध्याय जोड़ कर तथा सम्पूर्ण भगवदोक्त माहात्म्य को सटीक प्रस्तुत कर और गीता का सान्वयार्थ यथा मति लिख कर पाठक महानुभावों की जिज्ञासा तथा अभिरूचि बढ़ाने का प्रयास किया है।

हमारा उक्त लघु प्रयास कहां तक सफल है? इसका उत्तर सनातन धर्म प्रेमी, धर्म के मर्म को समझने की इच्छा रखने वाले साधक महानुभावों से अपेक्षित है, जिसकी हमें व्यग्रता से प्रतीक्षा रहेगी।

॥ आभार ॥

इस परोपकारार्थ मङ्गलकारी ग्रन्थ रत्न को साकार रूप देने में हम अपने परमप्रिय शिष्य, पाडर मण्डलस्थ, अठोली ग्रामवासी,

पेयजल विभाग में कार्यरत प्रिय ताराचन्द परिहार और उनके पारिवारिक बन्धुओं का विशेष रूप से बड़े आभारी हैं।

अपने परम प्रियसखा, माँ चण्डी अष्टादशभुजा के परम भक्त, धर्म कार्यों के प्रति निष्कपट श्रद्धा एवं आस्था रखने वाले, धर्मवीर तथा दानवीर आदरणीय श्री अमृत सागर गुप्ता के प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं।

अपने सभी सम्माननीय धर्माचार्यो, लेखकों, शोधकर्ताओं, व्याकरणाचार्यों, धर्म-कर्म वीरों का जिन्होंने हमें प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सत्परामर्श तथा सहयोग दिया तथा जिन धर्मप्रेमी बन्धुओं ने अविलम्ब प्रतियां प्राप्त्यर्थ अग्रिम राशि देकर हमारा मनोबल बढ़ाया, जिससे इस पुस्तक का प्रकाशन एक दशक साधना के पश्चात् फलीभूत हुआ, हम इन सब का भी हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

हमारी परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है ये सभी प्रियजन सदाचारी, सद्व्यवहारी, नीति निपुण एवं कार्यकुशल बनकर अपना भविष्य उज्ज्वल एवं प्रेरक बनायें।

अन्त में साधुजनों, सनातन धर्म तथा सर्वार्थसाधिका माँ चण्डी को दण्डवत प्रणाम कर लेखनी को विराम देते हैं :-

भ्रमराः मधुमिच्छन्ति, व्रणमिच्छन्ति माक्षिकाः।
सज्जना गुणमिच्छन्ति, दोषमिच्छन्ति पामराः॥१॥
येन विश्वमिदं नित्यं, धृतं चैव सुरक्षितम्।
सनातनोऽक्षरश्चैव, तस्मै धर्माय वै नमः॥२॥
सर्व मङ्गल मांगल्ये। शिवे सवार्थ साधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि। नारायणि नमोऽस्तुते॥३॥

मार्गशीर्षशुक्लैकादशीगुरुवार
श्री गीता जयन्ती, श्री भृगुवासर
01-12-2006, 01-12-2006

विदुषामनुचरः
दुर्गालाल शर्मा

॥ उपोद्घातः ॥

धर्म की परिभाषा

धारणाद् धर्ममित्याहु,- धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद् धारण संयुक्तं, स धर्म इति निश्चयः॥

(महाभारत कर्ण पर्व 69/58)

अर्थात् धर्म वह तत्त्व है जो जगत् को धारण करता है। जिसके सेवन और पालन करने से यानि जिस पर चलने से प्राणी परम उत्कर्ष को प्राप्त करता है।

धर्म के लक्षण

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं, शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्म लक्षणम्॥

(नारद परिव्राजकोपनिषत् 3/24, मनुस्मृति 6/92)

धृति (धैर्य या सन्तोष), क्षमा, दम (मन का दमन, निर्विकारमन:स्थिति या दु:ख-सुख समभाव), अस्तेय (न्यायपूर्वक धनार्जन), शौच (मानसिक एवं शारीरिक स्वच्छता), इन्द्रियनिग्रह (ज्ञान तथा कर्मेन्द्रियों पर संयम), धी (शास्त्रादि परिज्ञान), विद्या (आत्मज्ञान), सत्य और अक्रोध (शान्ति)- ये धर्म के दस लक्षण हैं। इनका पालन सभी आश्रम वासियों तथा सभी वर्णों के लिए अनिवार्य है।

धर्म-पालन फल

वैशेषिक दर्शन 1/2 के अनुसार :

"यतोभ्युदय निःश्रेयस सिद्धि स धर्मः"

अर्थात् जिससे अभ्युदय (आयु, विद्या, यश, बल, स्त्री-सन्तान सुख, सर्व मङ्गल) और निःश्रेयस (परमगति) की सिद्धि हो- वह धर्म है।

श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 16 मंत्र 23 में भगवान् वासुदेव भी यही बात कहते हैं–

यः शास्त्र विधिमुत्सृज्य, वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति, न सुखं न परां गतिम्॥

भगवान् वासुदेव ने 'सिद्धि', 'सुख' और परमगति अर्थात् मोक्ष को धर्म का फल बताया है।

मनुस्मृति अध्याय 6 मन्त्र 13 :-

दश लक्षणानि धर्मस्य, ये विप्राः समधीयते।
अधीत्य चानुवर्तन्ते, ते यान्ति परमां गतिम्॥

अर्थात् जो मानव पूर्वोक्त धर्म के दस लक्षणों का एकाग्रचित हो अध्ययन करने के पश्चात् तदनुरूप आचरण करता है, वह धर्म, अर्थ, काम और अन्ततोगत्वा परमपद प्राप्त करता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया कि धर्म पालन के फलस्वरूप मानव कल्याण निश्चित है। धर्मपालक का रक्षक स्वयं धर्म होता है, किन्तु जो प्राणी धर्म की अवहेलना करता है उसे पूर्व वर्णित उपलब्धियाँ प्राप्त नहीं होतीं वरन् वह अधोगतिका भागी बनता है। जभी तो मनु जी कहते हैं–

धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद् धर्मो न हन्तव्यो, मानो धर्मो हतोवधीत्॥

(मनु॰ 8/15)

एक विशेष बात– (महाभारत अश्व॰ 92)

भारतं मानवो धर्मो, वेदाः साङ्गाश्चिकित्सितम्।
आज्ञा सिद्धानिचत्वारि, न हन्तव्यानि हेतुभिः॥

अर्थात् महाभारत, मनुजी का धर्मशास्त्र (मनुस्मृति), अंगों सहित चारों वेद और आयुर्वेद– ये चारों सिद्ध धर्मोपदेश बोधक ग्रन्थ सिद्ध

सनातन उपदेश देने वाले हैं– अतः व्यर्थ के तर्क द्वारा इनका खण्डन नहीं करना चाहिए। (नित्यकर्म विधिः पृ० सं० 273)

मानव जन्म बड़ा दुर्लभ है। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के पश्चात् परब्रह्म की कृपा से सत्कर्मों के फलस्वरूप मनुष्य जन्म का लाभ प्राप्त होता है और मात्र इसी योनि में भगवदुपासना का मंगलमय अवसर प्राप्त होता है। वर्णाश्रम धर्मानुसार आचरण करने वाला प्राणी अपने इष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है और परिणामतः इहलौकिक सुख-सुविधाओं का यथेष्ट उपभोग कर तथा पारलौकिक मार्ग को प्रशस्त कर अन्त में मोक्ष पद प्राप्त कर सकता है जो जीवन का परम एवं चरम लक्ष्य है।

तमक्षरं ब्रह्म परं परेश,– मव्यक्त-माध्यात्मिक-योग-गम्यम्।
अतीन्द्रियं सूक्ष्म-मिवाति-दूर,- मनन्त-माद्यं परिपूर्ण-मीडे॥

यह एक सार्वभौम सनातन सत्य है– सुख-शान्ति प्राप्ति तथा दुःख-निवृत्ति की लालसा, अखण्ड ब्रह्माण्ड में व्याप्त सभी देहधारियों (देव, दानव, मानव, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्गादि) का ध्येय है।

मनुष्य सामाजिक पशु है। मनुष्य और पशुओं के सम्पूर्ण अङ्ग-प्रत्यंग में समानता (भले ही आकार, प्रकार, रूप-रङ्गादि में भिन्नता हो) देखने को मिलती है। जभी तो मनुष्य को पशु संज्ञा देने का औचित्य बनता है। मन, मस्तिष्क तथा बुद्धि भी दोनों में विद्यमान् है– इस कथन में भी दो राय नहीं। नागराज इसका प्रत्यक्ष प्रमाण। किन्तु एक बात– पशु में मनुष्य की अपेक्षा विचारशक्ति का विकास प्रायः मन्द होता है, मनुष्य में बिना लिङ्गभेद के विचारशक्ति का विकास बाहुल्य है, यह पश्वादि की तरह ध्येय प्राप्त्यर्थ अन्धाधुन्ध उद्यम नहीं करता। बुद्धि और विवेक में पृथ्वी-आकाश का अन्तर है– यदि मनुष्य विवेक तथा दूरदर्शिता से उद्यमारूढ़ हो जाये तो वह न केवल उपरोक्त ध्येय प्राप्ति में अविलम्ब सफल हो जायेगा वरन् विवेक, दूरदर्शिता, आस्था एवं सत्यनिष्ठा– इन

चार शस्त्रों का कवच धारण कर पुरुषार्थ चतुष्टय में से प्रथम पुरुषार्थत्रयी को सहज प्राप्त कर स्वर्गादि लोकों की उपलब्धि अवश्यमेव होगी।

हमारे अखिल भारतवर्ष की महिमा एवं गरिमा विश्वव्यापी किंवा अद्‌वितीय रही है, थी और रहेगी, ऐसा हमारा विश्वास है। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी हमारा भारत भूभाग उन्नत था, है और रहेगा। इस भारतवर्ष में मनुष्य शरीर धारण की महिमा के वर्णन में देवगण कहते हैं, "स्वर्ग और अपवर्ग से भी अधिक सुखदायी भारतस्थली पर पुनर्जन्म लेकर पंचमहाभौतिक शरीर का यथेष्ट फल प्राप्त्यर्थ, हम मानव शरीर धारण कर त्याग, तपस्या, ज्ञान, ध्यान, भजन, श्रीमद्‌भगवन्नाम-कीर्तनादि से सुखपूर्वक जीवन की सार्थकता प्राप्त करें।।" यथा–

गायन्ति देवाः किलगीतकानि, धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्ग भूते, भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।

त्रिविध ताप से निवृत्ति, परम पद की प्राप्ति में सच्चिदानन्दघन, पुराणपुरुष-पुरुषोत्तम का नाम-कीर्तन प्रधान कारण है– यह निर्विवाद सत्य है।

श्रीमन्नारायण के चरणार्विन्द सेवी अनन्यभक्त तो पुरुषार्थ चतुष्टय को भी नगण्य मानते हैं तथा नवधा भक्ति द्‌वारा भगवन्नाम स्मरण, भगवत्कृपा और भगवत् सानिध्याकांक्षी रहते हैं। दूसरी ओर भगवान् भी ऐसे भक्तों के सानिध्याभिलाषी रहते हैं और सदैव उनके साथ ही रहने के लिए उत्सुक रहते हैं। यथा–

नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिनां हृदये न च।
मद्‌भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद।।

।। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता जी पर प्रमुख टीकायें और भाष्य ।।

श्रीमदानन्द गिरिकृत 'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता भाषा-टीका, वैक्रम संवत् 1965 तदनुसार खिष्टाब्द संवत् 1909, में पृष्ठ संख्या 10 से

उद्धृत– गीता जी के प्रताप से महात्मा, सन्त, साधु, सज्जन हो गये हैं. .... इस गीता पर बावन (52) 'टीका' प्रसिद्ध हैं और दो भाग हैं। एक तो हनुमान जी का बनाया हुआ और दूसरा श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमच्छङ्कराचार्य जी का बनाया हुआ, जिस पर श्रीस्वाम्यानन्दगिरि जी का 'टीका' है और हनुमान भाष्य पर श्रीमहाराज पण्डित राजमोहन लाल जी की टीका और 'श्रीसम्प्रदाय' और 'माधवी सम्प्रदाय' और 'निम्बार्क सम्प्रदाय' वाले भी अपने आचार्यों के किए हुए 'भाष्य' भी गीता पर कहते हैं सो उन भाष्यों को उनके सम्प्रदाय वाले पढ़ते-सुनते हैं। इसी प्रकार बावन टीका से सिवाय हैं कम नहीं और 'देशभाषा' में और 'यामिनी भाषा में' भी बहुत हैं।

तब से अब तक एक शताब्दी के अन्तराल में स्वदेशीय (प्राकृत) भाषाओं में, देववाणी, राष्ट्र एवं राजभाषाओं में किंवा विदेशी भाषाओं में इस परम पावनी कर्म, उपासना एवं ज्ञान की त्रिवेणी श्रीमद्भगवद् गीता रूपी गङ्गा की अनुमानातीत व्याख्याएँ, भाष्य एवं टीकायें मिलेंगी।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता में काण्ड विभाजन ॥

इसी उपरोक्त 'श्री वेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय, मुम्बई' से छपी 'पुस्तक शिरोमणि' की पृष्ठसंख्या 11 से उद्धृत अनुच्छेद– "प्रथम के छः अध्यायों (1-6) में 'कर्म निष्ठा' का वर्णन है, और सातवें अध्याय से बारह तक (7-12) 'उपासना' का वर्णन है और तेरह से अठारह (13-18) तक 'ज्ञान निष्ठा' का निरूपण है। जैसे वेदों में 'कर्म-उपासना-ज्ञान' तीन काण्ड हैं– ऐसे ही गीता जी में तीन काण्ड हैं। ये तीनों काण्ड परस्पर सापेक्ष हैं, अर्थात् स्वतन्त्र ये तीनों मुक्ति के कारण नहीं। कर्म तो उपासना-ज्ञान की अपेक्षा रखता है और उपासना प्रथम कर्म की और फिर ज्ञान की अपेक्षा रखती है, और ज्ञान, प्रथम कर्म तथा उपासना इन दोनों की अपेक्षा रखता है। कर्म करने से अन्तःकरण शुद्ध

होता है। उपासना से चित्त एकाग्र होता है, फिर ज्ञान द्वारा मुक्ति होती है। इस प्रकार यह तीनों का परस्पर सापेक्ष है। इसको क्रमसमुच्चय कहते हैं।

समसमुच्चय इसको समझना न चाहिए क्योंकि एक काल में एक पुरुष से कर्मनिष्ठा और ज्ञान निष्ठा इन दोनों का अनुष्ठान नहीं हो सकता।...तात्पर्य यह कि प्रथम कर्म निष्ठा मुख्य रहती है और ज्ञान निष्ठा गोण..........।।"

॥ हमार मन्तव्य ॥

हम प्रातः स्मरणीय स्वाम्यानन्दगिरि महाराज के मत से पूर्णतया सहमत हैं। माननीय एवं आदरणीय धर्मप्रेमी साधक बन्धुओं की जिज्ञासापूर्ती एवं लाभार्थ थोड़ा सा सांकेतिक निर्देशन नैतिक दायित्व समझते हैं– तद्यथा :–

। विभाजन के भिन्न-भिन्न नाम ।

	1 तः 6 अध्याय,	7 तः 12,	13 तः 18 अध्याय
(क)	कर्मनिष्ठा	उपासनानिष्ठा,	ज्ञाननिष्ठा
(ख)	कर्म काण्ड	उपासना काण्ड,	ज्ञान काण्ड
(ग)	कर्म योग	भक्ति योग,	ज्ञान योग

कर्म से अन्तःकरण की शुद्धि; उपासना से मन की शुद्धि तथा ज्ञान द्वारा मुक्तिमार्ग (परमपद) प्राप्ति।।

उक्त तीनों काण्ड परस्पर सापेक्ष (Interdependent) हैं। इनकी क्रमसमुच्चय (Group of Serials) संज्ञा है।

एक और तथ्य–

(क) प्रथम कर्मनिष्ठा का प्राधान्य (Prime need and due attention on Karma)

और उपासना निष्ठा गौण (Secondary i.e. next in importance or subordinate — Upāsanā)

कर्म निष्ठा परिपाक (सुदृढ़ता) (State of the highest perfection)।

(ख) उपासना निष्ठा का प्राधान्य तथा ज्ञान निष्ठा गौण, उपासना निष्ठा परिपाक।

(ग) कर्मोपासना निष्ठाओं का परिपाक ज्ञान निष्ठा का प्राधान्य

(घ) कर्मोपासनाज्ञान निष्ठा तीनों का परिपाक (State of the highest perfection i.e. firmness in all the three stages— Karma, Upāsanā and Gyana)

परम किंवा चरम लक्ष की प्राप्ति अर्थात् परमानन्द प्राप्ति और समस्त दुःखों से निवृत्ति (Eternal happiness i.e. salvation and end of all miseries, the complete peace and tranquility)।

उपर्युक्त (क), (ख) और (ग) के अन्तर्गत दिए गये स्पष्टीकरण से सिद्ध हुआ कि तीनों काण्ड अन्यान्याश्रित (Interdependent) हैं।

॥ ओं शान्तिः ॥

सत्यसनातन धर्मानुयायी हमारे आदरणीय प्रिय बन्धुओं के लिए विशेषतया अवलोकनीय, पठनीय किंवा अनुमोदनीयानुच्छेदोद्धरण :-

('गीता का व्यवहार दर्शन' के लेखक और प्रकाशक श्री रामगोपाल मोहता ओ०बी०ई०, जुलाई 1938 तदनुसार कार्तिक 1992 विक्रमी, 'श्रीसत्यनारायण प्रेस' कराची)।

"पृथ्वी पर जब जनसंख्या बहुत बढ़ जाती है तब लोगों में व्यक्तित्व के भाव अत्यन्त प्रबल हो जाते हैं, और वे व्यक्तिगत अहंकार और स्वार्थों के लिए भौतिक उन्नति में एक दूसरे से बढ़ा-चढ़ी करते हैं, जिससे

राग-द्वेष के आसुरी भावों की प्रबलता हो जाती है और भिन्न-भिन्न समाजों में संघर्ष उत्पन्न हो कर जनता में घोर अशान्ति फैल जाती है। इस तरह की राग-द्वेषयुक्त अपरिमित भौतिक उन्नति से जगत् में विषमता बहुत बढ़ जाती है, जिससे विश्व को धारण करने वाली दैवी शक्तियाँ विक्षुब्ध होती हैं एवं लोग अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं। जब लोगों के दुःख चरम सीमा को पहुँच जाते हैं और सब के मन में उस बेहिसाब बढ़ी हुई विषमता से उत्पन्न हुए दुःखों से छुटकारा पाने की तीव्र तिलमलाहट उत्पन्न हो जाती है, तब सब की अन्तःकरण की सम्मिलित आतुरता के प्रतिफल स्वरूप उसकी प्रतिक्रिया होती है अर्थात् सब के आत्मा-परमात्मा की समष्टि सात्त्विक शक्ति, परिस्थिति की आवश्यकतानुसार विशेष कला से किसी विशेष व्यक्ति के रूप में प्रकट होकर सब की एकता के साम्य-भावयुक्त व्यवहारों द्वारा उस बढ़ी हुई जनसंख्या की काँट-छाँट करके एवं विषमता का समीकरण करके शान्ति स्थापन करती है, तथा लोगों को उस समय की परिस्थिति के उपयुक्त धर्म के उपदेश से उपरोक्त अधर्म की प्रवृत्ति छुड़ाकर साम्यभावयुक्त व्यवहार करने के लिए धर्म का पुनः प्रचार करती हैं।"

वर्तमान काल में गुरुकुल परम्परा तथा वर्णाश्रम व्यवस्था का विकृत रूप देखने को मिलता है। इस त्रुटि के लिए सामान्यतः हम सब नागरिक और विशेषतया सैक्यूलरवाद (सर्वधर्म समभाव) की दुहाई देने वाली, धर्म के अंकुश से हीन, धर्म तन्त्र-स्वतन्त्र भ्रष्ट राजनीति उत्तरदायी है। आधुनिक विद्यालयों में वेदभाषा तो दूर की बात है, देवभाषा दूसरे शब्दों में धर्म भाषा– 'संस्कृत' के पठन-पाठन का सर्वथा लोप कर, हमारे धर्म के प्रति जागरूक रहने के प्रेरणास्रोत को ही अवरुद्ध कर दिया गया है, जो बड़े दुःख की बात है। धर्म प्रेमी बन्धु समय रहते कोई मध्यम मार्ग निकालें वरना यह एक अक्षम्य अपराध हो जायेगा, जिसका परिणाम हमें और हमारी आने वाली सन्तति को अवश्य भोगना पड़ेगा। श्रीमद्भगवद्गीता

(श्रीमत्+भगवत्+गीता) – स्वयं भगवान् के मुखारविन्द से निकली बात है। वेदों का सार उपनिषद है और उपनिषदों का सार गीता है तथा गीता का सार ईश्वर की शरणागति है। यथा :–

सर्वधर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥१॥
यो मां पश्यति सर्वत्र, सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि, स च मे न प्रणश्यति॥२॥
यत् करोषि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय, तत् कुरुष्व मदर्पणम्॥३॥
मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजि मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वेव,- मात्मानं मत्परायणः॥४॥

(श्रीमद्भगवद्गीताध्याय – 18/66, 6/30, 9/27, 34)

श्रीमद्भगवद्गीता पञ्चमवेद है, इस कथन में कोई अत्युक्ति या अतिशयोक्ति नहीं वरन् यह सत्यसनातन है–

या स्वयं पद्मनाभस्य, मुख पद्माद्विनिसृतः॥

गीता में भगवान् कमलनाभ के मुख कमल से निकले अनमोल बोलों का समावेश है। ज्ञान, कर्म तथा भक्ति की त्रिवेणी में गोता लगा कर अमूल्य रत्नों को प्राप्त करना प्रत्येक सनातन धर्म-प्रेमी बंधु का कर्त्तव्य है और अधिकार भी है।

(खिष्टाब्द 2001 नित्यकर्म विधि प्र०सं० 52 वैक्रम 2057)

॥ परिवर्तन, प्रकृति का अनिवार्य नियम ॥

प्रसिद्ध साहित्यकार श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' द्वारा रचित छः एकांकी नाटक समुच्चय (षटदल) की भूमिका के वाक्य युगल–

"जाति के हर संक्रमण काल में सामाजिक परिस्थितियां एक नया सन्तुलन मांगती है।।1।। भूत की भित्ति पर वर्तमान् की सामग्री से भविष्यत का निर्माण होता है।।2।।"

।। हमारे प्रयास का महत्त्वपूर्ण पक्ष ।।

सामान्यतः पूरे जम्मू कश्मीर राज्य में और विशेषतः ज़िला डोडा तथा ज़िला किश्तवाड़ की सनातन धर्म प्रेमी 90 प्रतिशत जनता, देवभाषा संस्कृत तो दूर, राष्ट्रभाषा हिन्दी से भी अनभिज्ञ हैं। अपने पूरे धर्म प्रेमी हिन्दु समाज में राष्ट्रभाषा और देववाणी को सीखने की उत्कट इच्छा जगाने के लिए हम संकल्पबद्ध हैं। निरभिमान् एवं निष्कामभाव से प्रयास करना हमारे आधीन तथा फल ईश्वराधीन; कारण कि :-

हानि-लाभ जीवन-मरण, यश-अपयश विधि हाथ।

बदलाव के पक्षधर स्वयं भगवान् किन्तु फिर भी- समयाभाव तथा विस्तार भय से और प्रस्तावनाऽन्तर्गत प्रथम अनुच्छेद में पुस्तक लेखन की आवश्यकता को दृष्टि में रखकर निम्न प्रामाणिक, सर्वमान्य उद्धरणों का दिग्दर्शन यथार्थानुभूत्यर्थ पर्याप्त समझते हैं-

'श्रीमद्भगवद्गीता' के मूल स्वरूप में सामाजिक परिस्थितियों वश, बदलाव की एक झलक-

भीष्मद्रोणप्रमुखतःसर्वेषांचमहीक्षिताम्।
उवाचपार्थपश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति।।

(वैक्रमसंवत् 1865, 1965 अध्याय 1 श्लोक 25)

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति।।
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्चैतान् समवेतान् कुरूनिति।।

(वैक्रम सं॰ 1987, 1995)

॥ दूसरा उदाहरण ॥

अशोच्याननुशोचस्त्वंप्रज्ञावादांश्चभाषसे।
गतासूनगतासूंश्चनानुशोचन्तिपण्डिताः॥
अशोच्यानन्वशोचस्त्वंप्रज्ञावादांश्चभाषसे।
गतासूनगतासूंश्चनानुशोचन्तिपण्डिताः॥
अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

(श्रीवैंकटेश्वर प्रेस मुम्बई, वैं० सं० 1865; गीता प्रेस गोरखपुर, 1965; श्रीसत्यनारायण प्रिंटिंग प्रेस, कराची, 1987 गी० अ० 2/11)

॥ तृतीय उदाहरण ॥

संकटहरण, मङ्गलकरणार्थ प्रति वर्ष निरन्तर किंवा निर्बाध रूप से हेमन्त एवं शरद् नवरात्र में आत्मकल्याणार्थ अमुक परिवार व व्यक्ति की आपत्तिनिवृत्यर्थ, रोगभय, राजभय, विश्वशान्तिः तथा अन्यान्य प्रयोगार्थ, आतङ्कवादसमूलोन्मूलनार्थ इत्यादि अनुष्ठानार्थ, अभीष्टफलप्रद, सर्वमान्यग्रन्थरत्न 'दुर्गा सप्तशति' ग्रन्थ में बदलाव की एक अवलोकनीय झलक :-

ओंयद्गुह्यंपरमंलोकेसर्वरक्षाकरंनृणाम्।
यन्नकस्यचिदाख्यातंतन्मेब्रूहिपितामह॥

(दुर्गा कवच प्रथम मंत्र)

(शकाब्द 1838 तदनुसार वैक्रमाब्द 1973 श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस मुम्बई द्वारा मुद्रित श्री पं० मग्नीरामकृत भाषा-टीका)

श्रीजनकल्याणसेवा संस्थान गीता प्रेस द्वारा विक्रमाब्द 2004 में बदलाव की एक झलक–

ओं यद्गुह्यं मरमं लोके सर्व रक्षाकरं नृणाम्।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह॥

उपरोक्त उद्धरणों से तथा इस शीर्षान्तर्गत प्रसंगों से हमारे पुस्तक लेखन के उद्देश्य के विषय में पर्याप्त तथ्योद्घाटनोपरान्त लेखकों, रचनाकारों, भाष्य एवं टीकाकारों, सत्परामर्शदाताओं, सद्ग्रन्थों एवं सर्वोपरि परमानन्द, सच्चिदानन्दघन, पीताम्बर, घनश्याम वासुदेव को कोटि कोटि प्रणाम कर लेखनी को विराम देते हैं। नर सेवा नारायण सेवा।।

मूकं करोति वाचालं, पङ्गुं लंघयते गिरिम्।
यत् कृपा तमहं वन्दे, परमानन्द माधवम्।।

ऊँ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

शुभान्तिर्भवतु।।

येन विश्व-मिदं-नित्यं, धृतं चैव सुरक्षितम्।
सनातनोऽक्षरोयस्तु, तस्मै धर्माय वै नमः।।

दिनाङ्कः 23/01/2007 **लेखक**
वसन्त पंचमी

"संस्कृत भाषा का शुद्ध उच्चारण करने के कतिपय सिद्धान्त॥"

1. सर्वप्रथम याद रखने योग्य अनिवार्य बात – शब्द का जैसा रूप है, उसे बीच में तोड़ कर न पढ़ें तथा लघु और गुरु का (यथा अ आ इ ई), विसर्ग (:), अनुस्वार (ँ) तथा श, ष, स को दृष्टि में रखकर पढ़ें तो भाषा का शुद्ध उच्चारण करना स्वत: आ जायेगा।

2. उच्चारण में 'इ, उ, ऋ' इन तीन स्वरों के लघु और गुरु का ध्यान रखना भी परमावश्यक है।

3. ए, ऐ, ओ, औ स्वरों को सदैव गुरु समझें – ये लघु कदापि नहीं।

4. म्, म, मा – ये क्रमश: ह्रस्व, दीर्घ व प्लुत संज्ञक हैं। ह्रस्व में एक मात्रा का समय, दीर्घ में दुगुना तथा प्लुत के उच्चारण क्रम में तिगुना समय लगता है। यथा– म् = म्, म्+अ = म, म+आ = मा।

   आङ्गल भाषा में Rama, Krishna का उच्चारण रामा, कृष्णा प्लुत में नहीं है वरन् राम, कृष्ण है। 'a' अक्षर 'अ' लघु स्वर के समान है अत: उच्चारण दीर्घ में ही होगा। प्रत्येक व्यञ्जनाक्षर का इस प्रकार उच्चारण करें कि 'अ' स्वर कुछ ध्वनित हो। व्यञ्जनाक्षर का बिना स्वर के उच्चारण नहीं होता।

5. संयोग (–) तथा विसर्ग (:) के आदि का स्वर गुरु हो जाता है।

6. अनुस्वार (ँ) का उच्चारण आगे आने वाले वर्ग के अन्तिम अर्थात् पंचम व्यञ्जनाक्षर के आधे के अनुरूप होता है।

   यथा– **कवर्ग** (क, ख, ग, घ, ङ) परे होने पर ङ् होगा।

   टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ, ण) परे होने पर ण् बोला जायेगा।

चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ) परे होने पर ञ् रूप होगा।
तवर्ग (त, थ, द, ध, न) परे होने पर न् उच्चारण होगा।
पवर्ग (प, फ, ब,भ, म) परे होने पर म् उच्चारण होगा।

उदाहरण –
रूपंदेहि = रूपन्देहि। धर्मंचर = धर्मञ्चर। शंकरोतु = शङ्करोतु। मार्तंड = मार्तण्ड। संन्यास = सन्न्यास। संमोहन = सम्मोहन। संजय = सञ्जय।

7. किसी भी अक्षर व शब्द के आगे आने वाले आधे अक्षर स्, श्, च्, र्, ॅ, इत्यादि को पूर्वाक्षर व शब्द के साथ जोड़ कर बोलें। यथा – नमस्ते = नमस् ते। सरस्वती = सरस्वती। जगन्नाथ = जगन् नाथ। उच्चारण = उच् चारण। यत्तत् = यत्‌तत्।।

8. किन्तु अन्तिम आठ व्यञ्जनाक्षर – य, र ल, व, श, ष, स, ह के आगे आने पर (ँ) का ही शुद्ध उच्चारण करें जो केवल नासिका से होता है।

9. कुछ ऐसे भी शब्द हैं जिनमें आधा र 'आ' की मात्रा (ा) के ऊपर होता है, ऐसे में उसे शब्द के आदि अक्षर के साथ जोड़ कर पढ़ें। यथा– दुर्गा = दुर्‌गा। शर्मा = शर्‌मा। इस ' ॅ ' की संज्ञा 'रेफ' है।

10. कभी-कभी किसी शब्द में दो आधे अक्षर आते हैं। ऐसे में आदि अक्षर के साथ र् जोड़कर तथा दूसरे आधे अक्षर को अगले के साथ जोड़ कर पढ़ें। यथा– सामर्थ्य = सामर्‌थ्य। पुनर्स्थापना = पुनर् स्थापना।

11. 'श्रीमद्-भागवद्-गीता' में अधिकतम अनुष्टुभ् छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में आठ अक्षर होते हैं।

चरण विभाग कर पढ़ना, प्रत्येक चरण के अर्ध विराम (,), विराम (।) और पूर्ण विराम (॥) को दृष्टि में रखकर छन्द को पढ़ने का ठीक ढंग है। इससे पाठ में लय आता है और मन्त्र सशक्त बनता है तथा पाठोद्देश्य सफल होता है। जभी तो हमने पाठकों की सुविधा तथा मङ्गल को दृष्टि में रखकर अर्ध विराम (,) लगाकर चरण विभाग कर दिया है। यथा–

धर्मक्षेत्रेकुरुक्षेत्रे, समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव, किमकुर्वतसञ्जय॥

12. कहीं-कहीं चरण विभाग में अर्ध विराम तथा योजक (, , -) एक साथ दिया है– प्रथम तथा तृतीय चरण के अन्त में तथा द्वितीय एवं चतुर्थ के आदि में। ऐसी स्थिति में द्वितीय या चतुर्थ चरण के आदि का आधा अक्षर (स् आदि) प्रथम व तृतीय चरण के अन्तिम ~~शब्द~~ अक्षर से जोड़ कर पढ़ना चाहिए। यथा–

यथोल्बेनावृतोगर्भ,- स्तथा तेनेदमावृतम्।

ऐसे पढ़ें–

यथोल्बेनावृतोगर्भस्, तथा तेनेदमावृतम्॥
मनसस्तुपराबुद्धि, - र्यो बुद्धेः पर तस्तुसः।
पढ़ें– **मनसस्तु पराबुद्धिर्, यो बुद्धेः परतस्तु सः।**

13. 'ए' और 'ओ' पदान्त से परे ह्रस्व (अ) हो तो 'ए' और 'ओ' के आगे 'ऽ' ऐसा चिह्न लगता है जो 'अ' दर्शाता है– किन्तु उच्चारण में नहीं आता। यथा– मोक्षसे+अशुभात् = मोक्षसेऽशुभात्। उच्चारण होगा – मोक्षसेशुभात्। यहां इस 'ऽ' चिह्न से पूर्व का स्वर दीर्घ उच्चरित करें।

पाण्डवाश्चैव = पाण्डवाश्चैव पाठ होगा।

यत्त्वया = यत् त्वया पाठ होगा अर्थात् प्रथम मात्रा, आदि अक्षर के साथ और दूसरी आगे वाले अक्षर से जुड़कर ध्वनित होगी।

भोक्ता = भोक्ता पाठ होगा। प्रोक्ता = प्रोक्ता।

सङ्गात् = सङ्‌गात् पाठ होगा।

युद्ध = युद्‌ध ('द्' का आधा और 'ध'का पूरा उच्चारण) पाठ होगा।

योगाद्धनंजय = योगाद्‌धनञ्जय पाठ होगा।

मुक्तसङ्गः = मुक्तसङ्‌गः पाठ होगा।

त्यक्त्वोत्तिष्ठ = त्यक्त्वोत्तिष्‌ठ पाठ होगा।

॥ अनुष्टुभ्छन्द ॥

महाकवि कालिदास ने इसी छन्द में, इसकी परिभाषा इस प्रकार की है–

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं, सर्वत्र लघु पंचमम्।
द्विचतुष्पादयो-र्ह्रस्वं,सप्तमं दीर्घ-मन्ययोः॥

अर्थात् अनुष्टुभ् छन्द के प्रत्येक चरण का पाँचवां वर्ण लघु, छठा वर्ण सर्वत्र गुरु होता है तथा सातवां वर्ण प्रथम-तृतीय चरण में दीर्घ अर्थात् गुरु और द्वितीय-चतुर्थ चरण में ह्रस्व अर्थात् लघु होता है। अनुष्टुभ् छन्द के अनेक भेद हैं किन्तु इस उपर्युक्त लघु-गुरु वाले प्रकार का सर्वाधिक प्रयोग देखने को मिलता है॥ इति॥

॥ ज्ञातव्य विषय ॥

श्रीमद्भगवद्गीता में कुल मिलाकर 700 श्लोक हैं। इनमें अनुष्टुभ् छन्द के 644 श्लोक 32 अक्षरों के तथा 11वें अध्याय का पहला एक श्लोक 33 अक्षर का है। इसका उल्लेख नियम 11 के अन्तर्गत कर दिया गया है। शेष 55 श्लोकों की संज्ञा 'त्रिष्टुभ्छन्द' है। इस छन्द के प्रत्येक

चरण में 11 अक्षर होते हैं; अतः यह छन्द 44 अक्षर का बनता है। इन 55 में से 51 श्लोक 44 अक्षर वाले तथा दूसरी अध्याय का छठा 1 श्लोक 46 अक्षर (12/12/11/11) का, द्वितीय, अष्टम तथा पंचदश अध्यायों का क्रमशः 29वां, 10वां और 3रा श्लोक 45 अक्षरके (11/12/11/11, 11/11/11/12 तथा 12/11/11/11) हैं। इस गणना से श्री गीता जी के 700 श्लोकों में प्रयोग में लाये गये अक्षरों की कुल संख्या (644 × 32+33+51 × 44+46+3 × 45 = 20608+33+2244 +46+135=23066) तेईस हज़ार छयासठ है। इनमें से अनुष्टुभ् छन्द के 645 श्लोकों के वर्णों की संख्या 20641 तथा त्रिष्टुभ् छन्द के 55 श्लोकों की वर्ण संख्या 2425 है। तथा दोनों छन्दों के सामूहिक (645+55) अर्थात् 700 श्लोकों के वर्णों की कुल संख्या (20641+2425) यानि 23066 है।।

॥ आर्षप्रयोग ॥

गीता अध्याय 3 श्लोक क्रमाङ्क 11 तथा अष्टम अध्याय का श्लोक क्रमाङ्क 2 में तृतीय चरण का पंचमाक्षर गुरु, 11वीं अध्याय के प्रथम श्लोक के प्रथम चरण में भी पंचम गुरु और नौ अक्षर तथा गुरु से पूर्व नगण है। साथ ही साथ त्रिष्टुभ छन्द वाले 3 श्लोक 45 अक्षर वाले और एक 46 अक्षरों वाले हैं। यद्यपि ये छन्दरचना के नियमानुकूल ठीक नहीं बैठते, फिर भी शुद्ध प्रमाणित हैं। इसी को आर्ष प्रयोग की संज्ञा दी गई है। आर्ष-प्रयोग से तात्पर्य – 'ऋषेरिदम्' अर्थात् सप्तशती गीता माला मन्त्र के छन्दोबद्ध रचनाकार भगवान् वेदव्यास ऋषि के मुखारविन्द से प्रस्फुरित वचनामृत नियमबन्धन मुक्त हैं और इन्हें प्रामाणिक किंवा शुद्ध एवं संस्कारित माना जाये। इसलिए अनुष्टुभ् छन्द का 33 अक्षर वाला श्लोक अनुष्टुभ् छन्द के अन्तर्गत और त्रिष्टुभ् छन्द वाले 4 श्लोक 45/46 अक्षर वाले त्रिष्टुभ् छन्द की ही परिधि में सत्यं, शिवं, सुन्दरम् हैं।

॥ भगवद्गीता मन्त्रोच्चारण विधिः ॥

अनुष्टुभ् छन्द ३२ अक्षर

8, 8 अक्षर का एक चरण

उच्चारण प्रकार– एक बार में एक-एक चरण का ही पाठ करना चाहिये। यथा–

दृ ष्ट् वे मं स्व ज नं कृ ष्ण, यु यु त्सुं स मु प स्थि त म्।
1 2 3 4 5 6 7 8 1 2 3 4 5 6 7 8

सी द न्ति म म गा त्रा णि, मु खं च प रि शु ष्य ति॥
1 2 3 4 5 6 7 8 1 2 3 4 5 6 7 8

त्रिष्टुभ् छन्द 44 अक्षर

11, 11 अक्षर का एक चरण

उच्चारण प्रकार– एक बार में एक-एक चरण का ही पाठ करना शुद्ध है। यथा–

का र्प ण्य दो षो प ह त स्व भा वः,
1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11

पृ च्छ मि त्वां ध र्म सं मू ढ चे ताः।
1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11

य च्छ्रे यः स्या न्नि श्चि तं ब्रू हि त न्मे,
1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11

शि ष्य स्तेऽ हं शा धि मां त्वां प्र प न्न म्॥
1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11

नोट :- आधे अक्षर (ट्, ण्, च्, न् आदि) या मात्रा (ा, ि, ी, ु, े, ै, ृ, ेआदि) नहीं गिने जाते हैं। संस्कृत भाषा में वार्णिक छन्दों का ही प्रयोग होता है। मात्रिक छन्द (दोहा, चौपाई, सोरठ आदि) का प्रयोग हिन्दी भाषा की पद्य रचनाओं में मिलेगा।

एक और अनिवार्य बात– संस्कृत व्याकरणानुसार पढ़ते समय संस्कृत-शब्दों में सन्धि-विच्छेद करना वर्जित है। साथ ही आधे अक्षर का उच्चारण पिछले चरण के अन्तिम ~~शब्द~~ अक्षर के साथ किया जाना उचित एवं व्याकरण शास्त्र सम्मत है। जैसे–

(क) प श्यै तां पा ण्डु पु त्रा णा, मा चा र्य म ह तीं च मू म्।

1 2 3 4 5 6 7 8 1 2 3 4 5 6 7 8

व्यू ढां द्रु प द पु त्रे ण, त व शि ष्ये ण धी म ता ।।

1 2 3 4 5 6 7 8 1 2 3 4 5 6 7 8

पहली पंक्ति में– पश्यैतां पाण्डुपुत्राणा, माचार्य महतीं चमूम्। ऐसे पाठ होगा। यदि पाठ– पश्यैतां पाण्डुपुत्राणाम्, आचार्य महतीं चमूम।
ऐसे किया जाये तो वर्ण (म) भङ्ग दोष लगेगा। साथ ही सन्धिछेद होगा।

(ख) ना स तो विद् य ते भा वो, ना भा वो विद् य ते स तः ।

1 2 3 4 5 6 7 8 1 2 3 4 5 6 7 8

उ भ यो र पि दृ ष्टोऽ न्त, स्त्व न यो स्त त्त्व द र्शि भिः।।

1 2 3 4 5 6 7 8 1 2 3 4 5 6 7 8

द्वितीय पंक्ति में – उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्, त्वनयोस् तत्त्व दर्शिभिः।।
ऐसे शुद्ध पाठ होगा
यदि पाठ– उभयोरपि दृष्टोऽन्तः, त्वनयोस् तत्त्वदर्शिभिः।। ऐसे किया जाये तो सन्धि-विच्छेद दोष है।।

14. संयुक्ताक्षर में नीचे का अक्षर ऊपर वाले अक्षर वा अक्षरों को आधा कर देता है। तद्यथा –

(क) दृष्ट्वा का उच्चारण दृष्ट्वा होगा।

(ख) दृष्ट्वेमं का उच्चारण दृष्ट्वेमम् होगा।

(ग) सर्वमेतदृतं का उच्चारण सर्वमेतद्त्रृतम् होगा।

15. अन्तिम किन्तु महत्त्वपूर्ण बात– **'अनर्थका मन्त्राः'** अर्थात् मन्त्रों को अर्थ की दृष्टि से तोड़ कर न पढ़ा जाए, इससे मन्त्र शक्ति का ह्रास होता है।

एक बात और भी– **अधि माधं मधं कुर्यात्, छन्दोभङ्गं न कारयेत्।**



श्रीमद्-भगवद्-गीता पाठ-विधिः

अधुनात्र प्रवक्ष्यामो, साधकानां च प्रीतये।
पाठ विधिं तु गीतायाः, सर्वकल्याण दायकम्॥१॥

अब हम यहां साधकों की प्रसन्नतार्थ सर्वमङ्गलदायक गीता पाठ विधि बतायेंगे–

पृथ्वि त्वया धृता लोका, देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि, पवित्रं कुरु चासनम्॥२॥

उपर्युक्त मन्त्र पढ़कर, आसन पर थोड़ा जल छिड़क कर, आसन पर बैठें।

* पुनः हाथ जोड़ कर–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु,- र्गुरुः साक्षान् महेश्वरः।
गुरुरेव जगत्सर्वं, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥३॥

इस मन्त्र को बोलते हुए, मन में गुरुदेव को नमस्कार करें।

* अब निम्न मन्त्रों को बोलते हुए क्रम से चार बार आचमन लें। यथा–

ॐ केशवायनमः॥१॥ ॐ माधवाय नमः॥२॥
ॐ नारायणाय नमः॥३॥ ॐ ऋषीकेशाय नमः॥४॥

* पुनः निम्न मन्त्र से तिलक लगायें –

ॐ परमात्मने पुरुषोत्तमाय, पञ्चभूतात्मकाय,
आत्मने नारायणाय गन्धं नमः॥८॥

* निम्न मन्त्र से कुशा पवित्र दाहिने हाथ की अनामिका उँगली के मध्यपर्व पर धारण करें –

कुशा हरति पापानि, कुशा कल्याण दायिका।
तस्मात् कुशपवित्रं तु, श्रद्धया धारयाम्यहम्॥९॥

* निम्न मन्त्र से दीपक को नमस्कार करें–

सुप्रकाशो महादीपः, सर्व तिमिर नाशकः।
प्रसीद मम गोविन्द, दीपोऽयं परिकल्पितः॥१०॥

* पुनः निम्न मन्त्र बोलते हुए धूप को नमस्कार करें–

वनस्पति रसो दिव्यो, गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आह्वानं सर्व देवानां, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥११॥

॥ अथ सङ्कल्पः॥

अब अर्घपात्र में यवाक्षत पुष्प और जल लेकर निम्न संकल्प पढ़ें–

ॐ विष्णु-र्विष्णु-र्विष्णुः। ॐ श्री परमात्मने नमः।

श्री पुराण पुरुषोत्तमस्य, श्री विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्याद्य, श्री ब्रह्मणो द्वितीय परार्द्धे, श्रीवाराह कल्पे, वैवस्वतमन्वन्तरे, आर्या वर्तान्तर्गत ब्रह्मा-वर्तैक देशे, जम्बू द्वीपे, भारत वर्षे, भरत खण्डे, (श्री कष्टनिवार नगरे वा अमुक ग्रामे, श्रीमानामुकगृहे, वा श्रीस्थल नामेति सिद्धपीठे, वा अमुक नामेति भूभागे) वर्तमाने अमुक नाम संवत्सरे, मासोत्तमे महामांगल्य प्रदे अमुक मासे, अमुक पक्षे, अमुक तिथावामुक वासरे, सकल शास्त्रश्रुति स्मृति फल प्राप्ति कामः, अमुक गोत्रोत्पन्नः अमुक (शर्मा, वर्मा, गुप्ता) अहं ममात्मनः (अमुक नाम, गोत्री यजमानस्य च) श्री वासुदेवानुग्रहतो ग्रहकृत, राजकृत सर्वविध पीडानिवृत्ति-पूर्वकं (अमुक गोत्र नाम्नामुक यजमानस्य अमुक कार्य निमित्तं वा अत्र अस्मिन् क्षेत्रे दुर्घटनाग्रस्त, अकाल मृत्यु प्राप्त

समस्त बन्धु-बान्धवानां सद्गति प्राप्त्यर्थं) श्रीकृष्ण प्रीतये– "धृतराष्ट्र उवाच। धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे इत्याद्यारभ्य 'तत्र श्री-र्विजयो-भूति-र्ध्रुवा नीति-र्मति-र्मम' इत्यन्तं श्रीमद्भगवद्गीता पाठं, तत्रादौ पुस्तक पूजनं, विनियोग न्यास ध्यानं च तथान्ते क्षमा प्रार्थना नीराजनमादिञ्च करिष्ये।। जल निर्माल्य पात्र में गिरायें।

निवेदन– संकल्प में वर्णित 'अमुक' शब्द के स्थान पर मास, पक्ष, तिथ्यादि यथा निर्दिष्ट पञ्चाङ्ग गत संज्ञापद लगायें तथा भावादिकभाव अर्थात् (ब्रेकट्) में दिये गये अर्द्धवाक्यों को स्थान तथा उद्देश्य के अन्तर्गत ही सङ्कल्प में सम्मिलित किया जाये।

शुभमऽस्तु।

* पुनः निम्न मन्त्रों से गीता जी का पञ्चोपचार पूजन करें–

गीता भगवत्यै गन्धं समर्पयामि नमः।।२३।।

तिलक लगायें।

गीता भगवत्यै अर्घपुष्पं समर्पयामि नमः।।२४।

चावल पुष्प डालें।

गीता भगवत्यै दीपं दर्शयामि नमः।।२५।

दीप दिखायें।

गीता भगवत्यै धूपं समर्पयामि नमः।।२६।।

धूप दिखायें।

गीता भगवत्यै नमस्कारं समर्पयामि नमः।।२७।।

प्रणाम करें।

।। वाणीमयी मूर्ति गीता जी का स्वरूप ।।

अपने बांयें हाथ की ओर से प्रारम्भ 1 तः 5 अध्याय – पांच मुख।

बांयें हाथ की ओर ऊपर से नीचे 6 तः 10 अध्याय – पांच भुजाएं, दाहिने हाथ की ओर ऊपर से नीचे 11 तः 15 अध्याय – पांच भुजाएं।

सोलहवीं अध्याय वाणीमयी मूर्ति का – उदर (पेट)। पुनः सत्रहवीं अध्याय दाँयां चरण कमल और अठारहवीं अध्याय बाँयां चरणकमल जान कर ध्यान करें।

॥श्रीमद्-भगवद्-गीतायाः वाङ्मयी मूर्तिर्ध्यानम्॥

वक्त्राणि पंच जानीहि, पञ्चाध्याया-ननु-क्रमात्।
दशाध्याया भुजाश्चैक,- मुदरं द्वौ पदाम्बुजे॥१॥
एव-मष्टादशाध्यायी, वाङ्मयी मूर्ति-रीश्वरी।
जानीहि ज्ञान मात्रेण, कलि मलाघ मर्षिणी॥२॥
महादेवि नमस्तुभ्यं, पाप संताप नाशिनि।
आवाहयामि सद्भक्त्या, ज्ञानदान प्रदा भव॥३॥

॥ विनियोग वाक्यानि ॥

अब पुनः अर्घपात्र में जल लेकर निम्न मन्त्र पढ़कर जल गिरायें–

ऊँ अस्यश्रीमद् भगवद् गीता माला मन्त्रस्य, श्री भगवान् वेद व्यास ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीकृष्णः परमात्मा देवता– अशोच्या नन्वशोचस्त्वं, प्रज्ञावादांश्च भाषसे–इतिबीजम्। सर्वधर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज – इति शक्तिः॥ अहं त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुच – इति कीलकम्।

श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थे पाठे विनियोगः

॥ करन्यासः ॥

* पुनः निम्न मन्त्र बोलते हुए क्रमशः दोनों अंगूठों, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठिका तथा हथेलियों और पृष्ठभागों का स्पर्श करें–

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावक – इत्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः॥
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुत– इति तर्जनीभ्यां नमः॥
अच्छेद्योऽय मदाह्योऽय, मक्लेद्योऽशोष्य एव च – इति मध्यमाभ्यां नमः॥

नित्यः सर्वगतः स्थाणु,– रचलोऽयं सनातन – इत्यनामिकाभ्यां नमः॥
पश्य मे पार्थ रूपाणि, शतशोऽथ सहस्त्रश – इति कनिष्ठिकाभ्यां नमः॥
नाना विधानि दिव्यानि, नाना वर्णाकृतीनि च – इति करतलकर पृष्ठाभ्यां नमः॥

॥ षडङ्गन्यासः ॥

पुनः उपर्युक्त मन्त्र बोलते हुए क्रमशः हृदय, शिर चोटी, बाँयें हाथ से दाहिने कन्धे तथा दाँयें हाथ से बाँयें कन्धे का, दोनों आँखों का तथा दाहिने हाथ को बाँयीं ओर से आगे की ओर ले जाकर तथा पीछे से दाहिनी ओर ले आकर तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों से बाँयीं हथेली पर तीन बार ताली बजायें, तद्यथा –

नैनं छिन्दन्तिशस्त्राणि, नैनं दहति पावक – – इति हृदयाय नमः॥
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, नशोषयति मारुत– – इति शिरसे स्वाहा॥
अच्छेद्योऽय मद्दाह्योऽय, मक्लेद्योऽशोष्य एवच– इति शिखायै वषट्॥
नित्यः सर्वगतः स्थाणु, रचलोऽयं सनातन – इति कवचायहुम्॥
पश्य मे पार्थ रूपाणि, शतशोऽथ सहस्त्रश – – इति नेत्रत्रयाय वौषट्॥
नाना विधानि दिव्यानि, नाना वर्णाकृतीनिच – इत्यस्त्राय फट्॥

॥ अथ ध्यानम् ॥

अब निम्न मन्त्रों को बोलते हुए, वासुदेव का ध्यान करते हुए पुष्पार्पण कर मङ्गलकारी पाठारम्भ करें– यथा :

नमोऽस्तु ते व्यास विशाल-बुद्धे, फुल्लारविन्दायत-पत्रनेत्र।
यैन त्वया भारत तैल पूर्णः, प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः॥१॥

1 व्यास, 2 विशाल बुद्धे, 3 फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र, 4 ते, 5 नमः, 6 अस्तु, 7 येन, 8 त्वया, 9 भारततैलपूर्णः, 10 ज्ञानमयः, 11 प्रदीपः, 12 प्रज्वालितः॥

भाषा : हे व्यास! हे विशालबुद्धे! हे खिले कमलपत्र समान नेत्र वाले! आपके प्रति हमारा नमस्कार है। जिन आपने भारत तैलपूर्ण ज्ञानरूप दीपक प्रज्वलित किया।।1।।

टीका – जिनकी विवेकशील बुद्धि तथा फूले कमल के चौड़े पत्रवत् नेत्र हैं– ऐसे भगवान् वेदव्यास ऋषि को हमारा नमस्कार है, जिन्होंने महाभारत जैसे वृहद्ग्रन्थ की रचना कर ज्ञानरूपदीपक जनकल्याणार्थ जलाया।।१।।

प्रपन्न पारिजाताय, तोत्र वेत्रैक पाणये।
ज्ञान मुद्राय कृष्णाय, गीतामृत दुहे नमः।।२।।

1 2 3 4 5 6
कृष्णाय, नमः, प्रपन्नपारिजाताय, तोत्रवेत्रैकपाणये, ज्ञानमुद्राय, गीतामृतदुहे।।

भाषा :- श्रीयदुनन्दन वासुदेव को हमारा नमस्कार है। वे अद्वितीय हैं। भक्तों के लिए पारिजात वृक्ष (कल्पतरु) हैं, जिनके एक हाथ में बेत की छड़ी है, पुनः उनकी (अद्वितीय) ज्ञानमुद्रा है अर्थात् तर्जनी अंगुली से अंगूठा मिलाये हुए, पृथापुत्र पार्थ को गीतोपदेश दे रहे हैं तथा जिन्होंने गीतारूप अमृत का दोहन किया।।२।।

वसुदेव सुतं देवं, कंस चाणूर मर्दनम्।
देवकी परमानन्दं, कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्।।३।।

4 5 6 7 1 2 3
वसुदेवसुतम्, देवम्, कंसचाणूरमर्दनम्, देवकीपरमानन्दम्, कृष्णम्, वन्दे, जगद्गुरुम्।।

भाषा :- हमारा भगवान् वासुदेव को नमस्कार, वे अद्वितीय जगद्गुरु हैं। वसुदेव जी के पुत्र (ज्ञानस्वरूप, दीप्तिमान् भास्कर सृदश, प्राणरक्षक), कंस, चाणूर जैसे दुष्टों के संहारकर्ता, अपनी जननी माता देवकी को परमानन्दानुभूति कराने वाले (कृष्ण को नमस्कार है)।

नोट – उपरोक्त यह किशोरावस्था (11 से 15 वर्ष की आयु) का ध्यान है।

भीष्म द्रोण तटा जयद्रथ जला, गान्धार नीलोत्पला-
शल्य ग्राहवती कृपेण वहनी, कर्णेन वेलाकुला।
अश्वत्थाम विकर्ण घोरमकरा, दुर्योधना वर्त्तिनी-
सोत्तीर्णा खलु पाण्डवै कुरुनदी, कैवर्तकः केशवः॥४॥

8 9 10 11 12 13 14
भीष्मद्रोणतटा, जगद्रथजला, गान्धारनीलोत्पला, शल्यग्राहवती, कृपेण, वहनी, कर्णेन,
15 16 17 5 7 3
वेलाकुला, अश्वत्थामविकरणघोरमकराः, दुर्योधनावर्त्तिनी, सा, उत्तीर्णा, खलु,
4 6 2 1
पाण्डवैः, कुरुनदी, कैवर्तकः, केशवः॥

भाषा :- केशव (वासुदेव) केवट (नाविक) हुए अर्थात् श्री कृष्ण जैसे कुशल नाविक के कारण ही पाण्डवों ने दुर्योधनादि पर विजयश्री प्राप्त की। कैसी है वह नदी? – भीष्मद्रोण जिसके किनारे हैं, जिसमें जयद्रथ जलरूप है, गान्धी पुत्र शकुनी नीलकमल हैं; कर्ण द्वारा जिसकी वेला (प्रवाह) व्याप्त हो रही है, जिसके भीतर अश्वत्थाम-विकरण जैसे भयानक मगरमच्छ बैठे है, दुर्योधन जिसमें चक्र सदृश है अर्थात् भंवर है तात्पर्य यह है कि भगवान् वासुदेव पाण्डवों के नीतिनिपुण सहायक सिद्ध होकर परिणाम में विजयश्री के भागी बने। जभी तो महात्मा सञ्जय द्वारा यह भविष्य कथन सार्थक सिद्ध हुआ **'यत्र योगेश्वरः कृष्णो, यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्री-र्विजयो भुति-र्ध्रुवा नीति-र्मति-र्मम।'**

पाराशर्यवचः सरोज-ममलं, गीतार्थ गन्धोत्कटं-
नानाख्यानक केसरं हरिकथा, सम्बोधना बोधितम्।
लोके सज्जन षट्पदै-रहरहः, पेपीयमानं मुदा-
भूयाद् भारत पंकजं कलिमल, प्रध्वंसि नः श्रेयसे॥५॥

6 7 8 9 10 11
पाराशर्यवचः सरोजम्, अमलम्, गीतार्थगन्धोत्कटम्, नाना, आख्यनक, केसरम्,
12 13 14 15 16 18 17
हरिकथा, सम्बोधनाबोधितम्, लोके, सज्जनषट्पदैः, अहरहः, पेपीयमानम्, मुदा,
4 1 5 2 3
भूयात्, भारतपंकजम्, कलिमलप्रध्वंसि, नः, श्रेयसे।।

भाषा :- हे भारत कमल! हमारे कल्याणार्थ, हमारा मङ्गल करो। वह भारत कैसा अद्वितीय है? कलिपापनाशक है, भगवान् व्यास जी का वाणी रूप कमल जो निर्मल गीतार्थ है, वही उत्कट गन्ध है, नाना प्रकार की कथाएँ कुङ्कुम सदृश हैं, जो हरिकथा सम्बोधन करके जाग रहा है। अर्थात् जो श्रीमद्भगवद्गीतोपदेश से विकसित है तथा जगत् में सज्जन रूप भ्रमर आनन्दपूर्वक प्रतिदिन उस अद्वितीय कमल का पूर्णतया रसास्वादन करते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस महाभारत में भगवत्सम्बन्धी कथा है और जिसके बीच में (पंचम वेद) श्रीमद्भगवद्गीता विराजमान है, जिसको भगवत्प्रेमी श्रेष्ठ जन पढ़ते, सुनते हैं और परमानन्द प्राप्त करते हैं– ऐसा निर्दोष किंवा निर्मल 'महाभारत' हम सब का कल्याणमङ्गल करे।।5।।

मूकं करोति वाचालं, पङ्गुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे, परमानन्द माधवम्।।६।।

6 7 8 9 10 11 12 5 2 1
मूकम्, वाचा, अलम्, करोति, पङ्गुम्, गिरिम्, लंघयते, यत्कृपा, तम्, अहम्,
4 3
वन्दे, परमानन्द माधवम्।।

भाषा :- हम तिन परमानन्दस्वरूप लक्ष्मीपति नारायण को नमस्कार करते हैं, जिनकी कृपा गूंगे को वाणी देकर वाचाल बनाती है अर्थात् गूंगा अनायास शब्द बोलने लगता है तथा लङ्गड़ा भगवत्कृपा से पहाड़ जैसी बाधाओं को लांघने में सक्षम हो जाता है।।6।।

सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपाल नन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधी-र्भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत्।।७।।

1 2 3 4 5 6 7 8 9
सर्वापानिषदः, गावः, दोग्धा, गोपालनन्दनः, पार्थः, वत्सः, सुधीः, भोक्ता, दुग्धम्,
10 11
गीतामृतम्, महत्।।

भाषा :- सब (108) उपनिषद् गौ के सदृश हैं। दोहने वाले स्वयं भगवान् गोपनन्दन कृष्ण हैं; अर्जुन बछड़ा सुन्दर बुद्धि वाला (निर्मल बुद्धि), भेक्ता है– गीतामृत रूप महत्कल्याणकारी दूध को। तात्पर्य यह कि भगवान् वासुदेव ने सब उपनिषदों का समस्त सार तत्त्वार्थ अर्जुन को निमित्त करके शुद्धन्तःकरण वालों के लिए कहा है। गीता जी का अर्थ जानकर पूर्णतया शंका समाधान हो जाने पर फिर सन्देह नहीं रहता जभी तो महत् विशेषण जुड़ा है, परिणामतः पुनर्जन्म-मृत्यु के चक्कर में नहीं पड़ता, गीताध्ययन अभ्यासी के लिए, इसी कारण गीता के साथ अमृत विशेषण है।।7।।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्र रुद्र मरुतः, स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपद-क्रमोप-निषदै,- र्गायन्ति यं सामगाः।
ध्याना-वस्थित तद्गतेन मनसा, पश्यन्ति यं योगिनो-
यस्यान्तं न विदुः सुरा-सुरगणा, देवाय तस्मै नमः।।८।।

1 2 5 3 4 7 6
यम्, ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः, स्तुन्वन्ति, दिव्यैः, स्तवैः, वेदैः, साङ्गपदक्रमोपनिषदैः,
10 8 9 12 13 15 14 11 17
गायन्ति, यम्, सामगाः, ध्यानावस्थिततद्गतेन, मनसा पश्यन्ति, यम्, योगिनः यस्यान्तम्,
18 19 16 21 20 22
न, विदुः, सुरासुरगणाः, देवाय, तस्मै, नमः।।

भाषा :- ब्रह्म, वरुण, इन्द्र, रुद्र तथा मरुद्गण दिव्यस्तोत्रों से जिनकी स्तुति करते हैं और जो अद्वितीय वेद हैं, साङ्गपद क्रम द्वारा जिनको

सामवेद पाठी गाते हैं अर्थात् मङ्गलगान करते हैं, योगीजन ध्यान में मन को एकाग्र कर, परमेश्वर में मन स्थिर कर, जिनका दर्शन करते हैं तथा सुर-असुरगण जिसका पारावार नहीं पाते ऐसे देवता (पूर्णब्रह्म) के प्रति हमारा साष्टाङ्ग नमस्कार है।

वंशी विभूषित करान्, नव-नीरदाभात्-
पीताम्बरा-दरुण-बिम्ब-फलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दु सुन्दरमुखा-दरविन्द नेत्रात्-
कृष्णात् परं किमपि तत्त्व-महं न जाने॥९॥

1 2 3
वंशीविभूषितकरान्, नवनीरदाभात्, पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्,
4 5 6 7 8 9 10 11
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखात्, अरविन्दनेत्रात्, कृष्णात्, परम्, किम्, अपि, तत्त्वम्, अहम्,
12 13
न, जाने॥

भाषा :- हाथों में बाँसुरी, नये बादल सदृश रूप अर्थात् घनश्याम, पीताम्बरधारी, लाल बिम्बा (एक वृक्ष विशेष का फल जब पक जाता है तो मनोहारी लाल रंग का हो जाता है) फल जैसे अधरोष्ठ, पौर्णमाशी के चन्द्रमा सदृश मुख, कमल नेत्र, ऐसे कृष्ण के अतिरिक्त और कोई तत्त्व (यथार्थ) मैं नहीं जानता।

कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥ ३ बार॥

अर्थात् परात्पर, परब्रह्म, पुरुषोत्तम, भगवान् वासुदेव को हमारा बारम्बार नमस्कार॥



॥ ओं नमो भगवते वासुदेवाय ॥

श्रीमद् भगवद् गीता

“गीता - सुगीता - तरङ्गिणी”

अथ प्रथमोऽध्यायः

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे, समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव, किम-कुर्वत संजय॥१॥

पदच्छेदः

[2] धर्मक्षेत्रे, [3] कुरुक्षेत्रे, [4] समवेताः, [5] युयुत्सवः, [6] मामकाः, [9] पाण्डवाः, [7] च, [8] एव, [10] किम्, [11] अकुर्वत, [1] संजय॥

भाषा :- हे संजय! धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में इकट्ठे हुए युद्ध की इच्छा वाले मेरे और ऐसे ही पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया?॥१॥

संजय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं, व्यूढं दुर्योधन-स्तदा।
आचार्य-मुपसंगम्य, राजा वचन-मब्रवीत्।।२।।

6 7 5 4 3 1 8
दृष्ट्वा, तु, पाण्डवानीकं, व्यूढं, दुर्योधनः, तदा, आचार्यम्,
9 2 10 11
उपसंगम्य, राजा, वचनम्, अब्रवीत्।।

भाषा :- संजय ने कहा– उस समय राजा दुर्योधन ने व्यूहरचनायुक्त पाण्डवों की सेना को देख कर तथा गुरु (द्रोणाचार्य) के पास जाकर यह वचन कहा।।२।।

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणा,-माचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपद पुत्रेण, तव शिष्येण धीमता।।३।।

11 8 7 1 9 10 6
पश्य, एताम्, पाण्डुपुत्राणाम्, आचार्य, महतीं चमूम्, व्यूढाम्,
5 2 4 3
द्रुपदपुत्रेण, तव, शिष्येण, धीमता।।

भाषा :- हे आचार्य! आपके बुद्धिमान् शिष्य द्रुपदपुत्र (धृष्टद्युम्न) द्वारा व्यूहाकार खड़ी की हुई पाण्डुपुत्रों की इस विशाल सेना को देखिये।।३।।

अत्र शूरा महेष्वासा, भीमार्जुन-समा युधि।
युयुधानो विराटश्च, द्रुपदश्च महारथः।।४।।

1 5 2 4 3 6 8
अत्र, शूराः, महेष्वासाः, भीमार्जुनसमाः युधि, युयुधानः विराटः,
7 11 9 10
च, द्रुपदः, च, महारथः।

भाषा :- यहां (इस सेना में) बड़े-बड़े धनुर्धर युद्ध में भीम और अर्जुन के समान अन्यान्य शूरवीर हैं (जैसे) युयुधान (सात्यकि) और विराट तथा महारथी द्रुपद-॥४॥

धृष्टकेतु-श्चेकितानः, काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित् कुन्तिभोजश्च, शैब्यश्च नर पुंगवः॥५॥

धृष्टकेतुः (2), चेकितानः (3) काशिराजः (6), च (1), वीर्यवान् (5), पुरुजित् (7), कुन्तिभोजः (8), च (4), शैब्यः (11), च (9), नरपुङ्गवः (10)।

भाषा :- तथा धृष्टकेतु, चेकितान और बलवान् काशिराज, पुरुजित्, कुन्तिभोज तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ शैब्य- ॥५॥

युधामन्युश्च विक्रान्त, उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च, सर्व एव महारथाः॥६॥

युधामन्युः (3), च (1), विक्रान्तः (2), उत्तमौजाः (6), च (4), वीर्यवान् (5), सौभद्रः (7), द्रौपदेयाः (9), च (8), सर्वे (10), एव (11), महारथाः (12)।

भाषा :- और पराक्रमी युधामन्यु तथा बलवान् उत्तमौजा, सुभद्रा पुत्र (अभिमन्यु) और द्रौपदी के (पांचों) पुत्र (ये) सब ही महारथी हैं॥६॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये, तान् निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य, संज्ञार्थं तान् ब्रवीमि ते॥७॥

2 3 5 4 6 7 1 12
अस्माकम्, तु, विशिष्टाः, ये, तान्, निबोध, द्विजोत्तम, नायकाः,
10 11 9 13 14 8
मम, सैन्यस्य, संज्ञार्थम्, तान्, ब्रवीमि, ते।

भाषा :- हे द्विजश्रेष्ठ! हमारे पक्ष में भी जो जो प्रधान हैं, उनको (आप) जान लीजिये। आपके ज्ञानार्थ, मेरी सेना के (जो जो) सेनापति हैं, उनको कहता हूँ– ॥७॥

भवान् भीष्मश्च कर्णश्च, कृपश्च समितिंजयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च, सौमदत्ति-स्तथैव च॥८॥

1 3 2 5 4 8 6 7
भवान्, भीष्मः, च, कर्णः, च, कृपः, च, समितिञ्जयः,
12 13 9 15 10 11 14
अश्वत्थामा, विकर्णः, च, सौमदत्तिः, तथा, एव, च।

भाषा :- (एक तो स्वयं) आप और (पितामह) भीष्म तथा कर्ण और संग्रामविजयी कृपाचार्य। वैसे ही अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्त पुत्र (भूरिश्रवा)– ॥८॥

अन्ये च बहवः शूरा, मदर्थे त्यक्त जीविताः।
नाना शस्त्र प्रहरणाः, सर्वे युद्ध विशारदाः॥९॥

1 2 3 4 6 7 5
अन्ये, च, बहवः, शूरा, मदर्थे, त्यक्तजीविताः, नानाशस्त्रप्रहरणाः,
8 9
सर्वे, युद्धविशारदाः।

भाषा :- (तथा) और भी बहुत से शूरवीर, अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से युक्त, जीवन की आशा को त्यागने वाले, सब के सब युद्ध में प्रवीण हैं॥९॥

अपर्याप्तं तदस्माकं, बलं भीष्मा-भिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विद-मेतेषां, बलं भीमा-भिरक्षितम्।।१०।।

5 3 2 4 1 11
अपर्याप्तम्, तत्, अस्माकम्, बलम्, भीष्माभिरक्षितम्, पर्याप्तम्,
6 9 8 10 7
तु, इदम्, एतेषाम्, बलम्, भीमाभिरक्षितम्।

भाषा :- (और) भीष्म द्वारा रक्षित हमारी वह सेना सब प्रकार से अजेय है। और भीम द्वारा रक्षित इन लोगों की (पाण्डुपुत्रों की) यह सेना जीतने में सहज है।।१0।।

अयनेषु च सर्वेषु, यथा भाग-मवस्थिताः।
भीष्म-मेवाभि-रक्षन्तु, भवन्तः सर्व एव हि।।११।।

3 1 2 4 5 10 11
अयनेषु, च, सर्वेषु, यथाभागम्, अवस्थिताः, भीष्मम्, एव,
12 6 7 8 9
अभिरक्षन्तु, भवन्तः, सर्वे, एव, हि।

भाषा :- अतः सब मोर्चों पर अपने-अपने स्थान पर स्थित रहते हुए आप सब के सब ही, निश्चित रूप से भीष्मपितामह की ही सब ओर से रक्षा करें।।११।।

तस्य संजनयन् हर्षं, कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः, शंखं दध्मौ प्रतापवान्।।१२।।

4 6 5 1 3 8 9
तस्य, संजनयन्, हर्षं, कुरुवृद्धः, पितामहः, सिंहनादम्, विनद्य,
7 10 11 2
उच्चैः, शंखम्, दध्मौ, प्रतापवान्।

भाषा :- कौरवों में वृद्ध महाप्रतापी पितामह (भीष्म ने) उस (दुर्योधन) के (मन में) प्रसन्नता बढ़ाते हुए उच्च (स्वर से) सिंह के समान गर्ज कर शंख ध्वनि की।।१२।।

ततः शंखाश्च भेर्यश्च, पणवानक गोमुखाः।
सहसै-वाभ्य-हन्यन्त, स शब्द-स्तुमुलोऽ भवत्।।१३।।

1 2 3 4 5 6 7 8
ततः शंखाः, च, भेर्यः, च, पणवानक-गोमुखाः, सहसा, एव,
9 10 11 12 13
अभ्यहन्यन्त, सः, शब्दः, तुमुलः, अभवत्।

भाषा :- तदुपरान्त शंख और नगारे तथा ढोल, मृदंग और नृसिंहादि बाजे एक साथ ही बजे। (उनका) वह शब्द बड़ा भयंकर हुआ।।१३।।

ततः श्वेतै-र्हयै-र्युक्ते, महति स्यन्दने-स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव, दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः।।१४।।

1 2 3 4 5 6 7 8
ततः, श्वेतैः, हयैः, युक्ते, महति, स्यन्दने, स्थितौ, माधवः,
10 9 11 12 13 14
पाण्डवः, च, एव, दिव्यौ, शंखौ, प्रदध्मतुः।

भाषा :- तदनन्तर सफेद घोड़ों से युक्त उत्तमरथ में बैठे हुए माधव (श्रीकृष्ण) और पाण्डव (श्री अर्जुन) ने भी अलौकिक शंख नाद किए।।१४।।

पाञ्चजन्यं ऋषीकेशो, देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं, भीमकर्मा वृकोदरः।।१५।।

2 1 4 3 7 9
पाञ्चजन्यम्, ऋषीकेशः, देवदत्तम्, धनंजयः, पौण्ड्रम्, दध्मौ,
8 5 6
महाशंखम्, भीमकर्मा, वृकोदरः।

भाषा :- ऋषीकेश (भगवान् कृष्ण) ने 'पाञ्चजन्य' नामक, धनंजय (अर्जुन) ने 'देवदत्त' नामक (तथा) भयंकर कर्म वाले वृकोदर (भीम) ने 'पौण्ड्र' नामका महाशंख बजाया।।१५।।

अनन्तविजयं राजा, कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च, सुघोष मणिपुष्पकौ।।१६।।

4 2 1 3 5 7
अनन्तविजयम्, राजा, कुन्तीपुत्रः, युधिष्ठिरः, नकुलः, सहदेवः,
6 8
च, सुघोष-मणिपुष्पकौ।

भाषा :- कुन्ती नन्दन राजा युधिष्ठिर ने 'अनन्तविजय' नामक (शंख) तथा नकुल और सहदेव ने (क्रमशः) 'सुघोष' और 'मणिपुष्पक' नाम वाले (शंख) बजाये।।१६।।

काश्यश्च परमेष्वासः, शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च, सात्यकिश्चा-पराजितः।।१७।।

2 3 1 5 6 4 7
काश्यः, च, परमेष्वासः, शिखण्डी, च, महारथः, धृष्टद्युम्नः,
9 8 12 10 11
विराटः, च, सात्यकिः, च, अपराजितः।

भाषा :- श्रेष्ठधनुषवाला काशिराज और महारथी शिखण्डी तथा धृष्टद्युम्न और विराट तथा अजेय सात्यकि ...।।१७।।

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च, सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः, शंखान् दध्मुः पृथक् पृथक्॥१८॥

1 3 2 7 8 6 4 5
द्रुपदः, द्रौपदेयाः, च, सर्वशः, पृथिवीपते, सौभद्रः, च, महाबाहुः,
11 12 9 10
शंखान्, दध्मुः, पृथक्, पृथक्।

भाषा :- (तथा) राजा द्रुपद और द्रौपदी के पुत्र तथा बड़ी भुजाओं वाला सुभद्रा पुत्र (अभिमन्यु), इन सबने हे राजन्! (धृतराष्ट्र), अलग-अलग शंख बजाये॥१८॥

स घोषो धार्त-राष्ट्राणां, हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव, तुमुलो व्यनुनादयन्॥१९॥

2 4 10 11 12 5 1 7
सः, घोषः, धार्तराष्ट्राणाम्, हृदयानि, व्यदारयत्, नभः, च, पृथिवीम्,
6 8 3 9
च, एव, तुमलः, व्यनुनादयन्।

भाषा :- तथा उस भयानक शब्द ने आकाश और पृथ्वी को भी शब्दायमान करते हुए धृतराष्ट्र पुत्रों के हृदय विदीर्ण कर दिये॥१९॥

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा, धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्र संपाते, धनु-रुद्यम्य पाण्डवः॥२०॥

2 5 7 6 3 10
अथ, व्यवस्थितान्, दृष्ट्वा, धार्तराष्ट्रान्, कपिध्वजः, प्रवृत्ते,
9 11 12 4
शस्त्रसम्पाते, धनुः, उद्यम्य, पाण्डवः।

हृषीकेशं तदा वाक्य,- मिदमाह महीपते।

अर्जुन उवाच

सेनयो-रुभयो-र्मध्ये, रथं स्थापय मेऽच्युत॥२१॥

13 8 15 14 16 1 21 20
हृषीकेशम्, तदा, वाक्यम्, इदम्, आह, महीपते, सेनयोः उभयोः,
22 19 23 18 17
मध्ये, रथम्, स्थापय, मे, अच्युत।

भाषा :- हे राजन् (धृतराष्ट्र)! तदुपरान्त कपिध्वज अर्जुन ने, व्यवस्थानुसार खड़े हुए धृतराष्ट्र पुत्रों को देखकर, उस शस्त्र चलने की तैयारी के समय, धनुष उठाकर श्री भगवान् कृष्ण से यह वचन कहा, हे अच्युत! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच खड़ा कर दो॥२०-२१॥

यावदेतान् निरीक्षेऽहं, योद्धुकामा-नवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्य,- मस्मिन् रण-समुद्यमे॥२२॥

1 3 6 2 5 4 10
यावत्, एतान्, निरीक्षे, अहम्, योद्धुकामान्, अवस्थितान्, कैः,
9 11 12 7 8
मया, सह, योद्धव्यम्, अस्मिन्, रणसमुद्यमे।

भाषा :- जब तक मैं इस स्थित हुए युद्ध की कामना वालों को भली भान्ति देख लूं (कि) इस युद्ध रूपी व्यापार में मुझे किन-किन के साथ युद्ध करना उचित है॥२२॥

योत्स्यमाना-नवेक्षेऽहं, य एतेऽत्र समागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धे,- र्युद्धे प्रिय-चिकीर्षवः॥२३॥

9 11 10 5 6 7 8 2
योत्स्यमानान्, अवेक्षे, अहम्, ये, एते, अत्र, समागताः, धार्तराष्ट्रस्य,
1 3 4
दुर्बुद्धेः, युद्धे, प्रियचिकीर्षवः।

भाषा :- तथा – दुर्बुद्धि दुर्योधन का युद्ध में कल्याण चाहने वाले जो-जो ये (राजा लोग) इस सेना में आये हैं (उन) युद्ध करने वालों को मैं देखूंगा।।२३।।

संजय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो, गुडाकेशेन भारत।
सेनयो-रुभयो-र्मध्ये, स्थापयित्वा रथोत्तमम्।।२४।।

भीष्म द्रोण प्रमुखतः, सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान्, समवेतान् कुरूनिति।।२५।।

3 4 5 2 1 7 6
एवम्, उक्तः, हृषीकेशः, गुडाकेशेन, भारत, सेनयोः, उभयोः,
8 14 13 9 11 10
मध्ये, स्थापयित्वा, रथोत्तमम्, भीष्मद्रोणप्रमुखतः, सर्वेषाम्, च,
12 16 17 21 18 19 20 15
महीक्षिताम्, उवाच, पार्थ, पश्य, एतान्, समवेतान्, कुरून्, इति।।

भाषा :- संजय बोला– भारत (हे धृष्टराष्ट्र)! अर्जुन द्वारा इस प्रकार कहे हुए– श्रीकृष्ण ने दोनों सेनाओं के मध्य भीष्म और द्रोणाचार्य के सामने तथा समस्त राजाओं के सम्मुख उत्तम रथ को खड़ा करके ऐसे कहा (कि) हे पार्थ! इन इकट्ठे हुए कौरवों को देख।।२४-२५।।

तत्रापश्यत् स्थितान् पार्थः, पितॄनथ पितामहान्।
आचार्यान् मातुलान् भ्रातॄन्, पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा।।२६।।
श्वशुरान् सुहृदश्चैव, सेनयो-रुभयोरपि।

3 21 7 2 8 1 9 10
तत्र, अपश्यत्, स्थितान्, पार्थः, पितॄन्, अथ, पितामहान्, आचार्यान्,
11 12 13 14 16 15 17 19
मातुलान्, भ्रातॄन्, पुत्रान्, पौत्रान्, सखीन्, तथा, श्वशुरान्, सुहृदः,
18 20 6 4 5
च, एव, सेनयोः, उभयोः, अपि।

भाषा :– तदनन्तर पार्थ (अर्जुन) ने उन दोनों ही सेनाओं में एकत्र हुए चाचों, दादों, आचार्यों, मामों, भाइयों, पुत्रों, पौत्रों तथा मित्रों, ससुरों और हितेषियों को देखा।।२६-२७।।

तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः, सर्वान् बन्धू-नवस्थितान्।।२७।।
कृपया परया-विष्टो, विषीदन्-निद-मब्रवीत्।

1 5 6 10 3 4 2 8
तान्, समीक्ष्य, सः, कौन्तेयः, सर्वान्, बन्धून्, अवस्थितान्, कृपया,
7 9 11 12 13
परया, आविष्टः, विषीदन्, इदम्, अब्रवीत्।

भाषा :– (इस प्रकार) उन खड़े हुए बन्धओं को देखकर वह अत्यन्त करुणा से युक्त हुआ कुन्ती पुत्र (अर्जुन) शोक करता हुआ यह वचन बोला– ।।२७-२८।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण, युयुत्सुं समुपस्थितम्।।२८।।
सीदन्ति मम गात्राणि, मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे, रोमहर्षश्च जायते।।२९।।

6 2 5 1 3 4 9
दृष्ट्वा, इमम्, स्वजनम्, कृष्ण, युयुत्सुम्, समुपस्थितम्, सीदन्ति,
7 8 11 10 12 16 13 15 14
मम, गात्राणि, मुखं, च, परिशुष्यति, वेपथुः, च, शरीरे, मे,
18 17 19
रोमहर्षः, च, जायते।

भाषा :– हे कृष्ण! इस युद्ध की इच्छा वाले, खड़े हुए स्वजन समुदाय को देखकर मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं तथा मुख भी सूख रहा है तथा मेरे शरीर में कम्पकम्पी और रोमांच होता है।।२८-२९।।

गाण्डीवं स्त्रंसते हस्तात्, त्वक् चैव परिदह्यते।
न च शक्नो-म्यवस्थातुं, भ्रमतीव च मे मनः।।३०।।

2 3 1 5 4 6 7 15 8
गाण्डीवम्, स्त्रंसते, हस्तात्, त्वक्, च, एव, परिदह्यते, न, च,
16 13 11 12 14 9 10
शक्नोमि, अवस्थातुम्, भ्रमति, इव, च, मे, मनः।

भाषा :– तथा– हाथ से 'गाण्डीव' (धनुष) गिरता है और त्वचा (चमड़ी) भी बहुत जलती है तथा मेरा मन भ्रमित सा हो रहा है। अतः मैं– खड़ा होने में भी असमर्थ हूँ।।३०।।

निमित्तानि च पश्यामि, विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनु-पश्यामि, हत्वा स्वजन-माहवे।।३१।।

2 3 5 4 1 11 10 9
निमित्तानि, च, पश्यामि, विपरीतानि, केशव, न, च, श्रेयः,
12 8 7 6
अनुपश्यामि, हत्वा, स्वजनम्, आहवे।

भाषा :– (और) हे केशव! लक्षणों को भी विपरीत देखता हूँ (तथा) युद्ध में अपने बान्धवों को मारकर कल्याण भी नहीं देखता हूँ।।३१।।

न कांक्षे विजयं कृष्ण, न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द, किं भोगै-र्जीवितेन वा।।३२।।

3 4 2 1 9 5 6 8 7 13
न, कांक्षे, विजयम्, कृष्ण, न, च, राज्यम्, सुखानि, च, किम्,
11 12 10 17 15 16 14
नः, राज्येन, गोविन्द, किम्, भोगैः, जीवितेन, वा।

भाषा :– हे कृष्ण! (मैं) विजय को नहीं चाहता और राज्य तथा सुख भी नहीं (चाहता)। हे गोविन्द! हमें राज्य से क्या (प्रयोजन) अथवा भोगों से तथा जीवन से (भी) क्या (प्रयोजन है)?।।३२।।

येषामर्थे कांक्षितं नो, राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे, प्राणां-स्त्यक्त्वा धनानि च।।३३।।

2 3 8 1 4 5 7 6 9 10
येषाम्, अर्थे, कांक्षितम्, नः, राज्यम्, भोगाः, सुखानि, च, त, इमे,
16 15 13 14 11 12
अवस्थिताः, युद्धे, प्राणान्, त्यक्त्वा, धनानि, च।

भाषा :– कारण कि हमें जिन के लिए राज्य, भोग और सुख की अपेक्षा है, वे सब धन और जीवन की आशा त्याग कर युद्ध में खड़े हैं।३३।।

आर्चाया: पितरः पुत्रा,– स्तथैव च पितामहाः।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः, श्यालाः सम्बन्धिन-स्तथा।।३४।।

1 2 3 5 6 4 7 8
आर्चाया:, पितर:, पुत्रा:, तथा, एव, च, पितामहा:, मातुला:,
9 10 11 13 12
श्वशुरा:, पौत्रा:, श्याला:, सम्बन्धिन:, तथा।

भाषा :– जो कि – गुरुजन, चाचे-ताये, पुत्र और वैसे ही दादा, मामा, ससुर, पोते, साले तथा (अन्य) सम्बन्धी लोग हैं।।३४।।

एतान् न हन्तु-मिच्छामि, घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्य राज्यस्य,– हेतो: किं नु महीकृते।।३५।।

7 9 8 10 2 3 1 6
एतान्, न, हन्तुम्, इच्छामि, घ्नत:, अपि, मधुसूदन, अपि,
4 5 13 12 11
त्रैलोक्यराज्यस्य, हेतो:, किम्, नु, महीकृते।

भाषा :– अत: हे मधुसूदन! (मुझे) मारने पर भी, तीन लोकों के राज्य के लिए भी (मैं) इनको मारना नहीं चाहता। फिर पृथ्वी के लिए तो कहना ही क्या है? ।।३५।।

निहत्य धार्तराष्ट्रान् न:, का प्रीति: स्याज्जनार्दन।
पाप-मेवाश्रये-दस्मान्, हत्वैता-नात-तायिन:।।३६।।

3 2 4 5 6 7 1 12
निहत्य, धार्तराष्ट्रान्, न:, का, प्रीति:, स्यात्, जनार्दन, पापम्,
13 14 11 10 8 9
एव, आश्रयेत्, अस्मान्, हत्वा, एतान्, आततायिन:।

भाषा :– जनार्दन! धृतराष्ट पुत्रों को मार कर हमें क्या प्रसन्नता होगी? इन आततायियों को मार कर हमें पाप ही लगेगा।।३६।।

तस्मान् नार्हा वयं हन्तुं, धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान्।
स्वजनं हि कथं हत्वा, सुखिनः स्याम माधव॥३७॥

1 7 8 6 5 4 3
तस्मात्, न, आर्हाः, वयम्, हन्तुम्, धार्तराष्ट्रान्, स्वबान्धवान्,
10 9 12 11 13 14 2
स्वजनम्, हि, कथम्, हत्वा, सुखिनः, स्याम, माधव।

भाषा :– इसलिए हे माधव! अपने बान्धव धृतराष्ट्रपुत्रों को मारने के लिए हम योग्य नहीं हैं। कारण कि अपने (ही) परिवार को मार कर हम कैसे सुखी होंगे॥३७॥

यद्य-प्येते न पश्यन्ति, लोभो-पहत चेतसः।
कुल क्षय कृतं दोषम्, मित्रद्रोहे च पातकम्॥३८॥

1 3 9 10 2 4
यद्यपि, एते, न, पश्यन्ति, लोभोपहतचेतसः, कुलक्षयकृतम्,
5 7 6 8
दोषम्, मित्रद्रोहे, च, पातकम्।

भाषा :– यद्यपि लोभ से भ्रष्ट चित वाले ये लोग कुल-नाश-कृत दोषों तथा मित्र के साथ विरोध करने में पाप को नहीं देखते हैं॥३८॥

कथं न ज्ञेय-मस्माभिः, पापा-दस्मान् निवर्तितुम्।
कुल क्षय कृतं दोषं, प्रपश्यद्भि-र्जनार्दन॥३९॥

9 10 11 5 7 6 8
कथम्, न, ज्ञेयम्, अस्माभिः, पापात्, अस्मात्, निवर्तितुम्,
2 3 4 1
कुलक्षयकृतम्, दोषम्, प्रपश्यद्भिः, जनार्दन।

भाषा :– जनार्दन! कुल के नाश करने से प्राप्त दोष को जानने वाले हम लोगों को इस पाप से हटने के लिए क्यों नहीं विचार करना चाहिए?।।३९।।

कुलक्षये प्रणश्यन्ति, कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मं नष्टे कुलं कृत्स्न,- मधर्मोऽभि भवत्युत।।४०।।

1 4 3 2 5 6 8
कुलक्षये, प्रणश्यन्ति, कुलधर्माः, सनातनाः, धर्मे, नष्टे, कुलम्,
7 9 11 10
कृत्स्नम्, अधर्मः, अभिभवति, उत।।४०।।

भाषा :– कुलनाश से सनातन कुल धर्म नष्ट हो जाते हैं। धर्म के नष्ट होने से सम्पूर्ण कुल को अधर्म (पाप) भी दबा लेता है।।४०।।

अधर्माभि-भवात्कृष्ण, प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय, जायते वर्णसंकरः।।४१।।

2 1 4 3 6 7
अधर्माभिभवात्, कृष्ण, प्रदुष्यन्ति, कुलस्त्रियः, स्त्रीषु, दुष्टासु,
5 9 8
वार्ष्णेय, जायते, वर्णसंकरः।

भाषा :– हे कृष्ण! पाप के अधिक बढ़ जाने से कुल की स्त्रियां दूषित हो जाती हैं। (तथा) हे वार्ष्णेय! स्त्रियों के दूषित होने पर वर्णसंकर उत्पन्न होता है।।४१।।

संकरो नरकायैव, कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां, लुप्त पिण्डोदक क्रियाः।।४२।।

1 5 6 2 4 3 11 9
संकरः, नरकाय, एव, कुलघ्नानाम्, कुलस्य, च, पतन्ति, पितरः,
10 8 7
हि, एषां, लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।

भाषा :– वर्ण संकर, कुलघातियों को तथा कुल को नरक में (ले जाने के लिए) ही (होता है)। लोप हुई पिण्ड और जल की क्रिया वाले इनके पितर लोग भी पतित होते हैं।।४२।।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां, वर्णसंकर कारकैः।
उत्साद्यन्ते जाति धर्माः, कुल धर्माश्च शाश्वताः।।४३।।

3 1 4 2 9 8
दोषैः, एतैः, कुलघ्नानाम्, वर्णसंकरकारकैः, उत्साद्यन्ते, जातिधर्माः,
6 7 5
कुलधर्माः, च, शाश्वताः।

भाषा :– तथा इन वर्ण संकर कारक दोषों से कुलघातियों के सनातन कुल धर्म और जाति धर्म नष्ट हो जाते हैं।।४३।।

उत्सन्न-कुलधर्माणां, मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽ-नियतं वासो, भवती-त्यनु-शुश्रुम।।४४।।

2 3 1 5 4
उत्सन्नकुलधर्माणाम्, मनुष्याणाम्, जनार्दन, नरके, अनियतम्,
6 7 8 9
वासः, भवति, इति, अनुशुश्रुम।

भाषा :– फलस्वरूप – जनार्दन! नष्ट हुए कुल धर्म वाले मनुष्यों का, अनन्त काल तक नरक में वास होता है– ऐसा (हमने) सुना है।।४४।।

अहो बत महत्पापं, कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद् राज्य सुख लोभेन, हन्तुं स्वजन-मुद्यता:॥४५॥

1 2 4 5 6 3 7
अहो, बत, महत्पापम्, कर्तुम्, व्यवसिता:, वयम्, यत्,
8 10 9 11
राज्यसुखलोभेन, हन्तुम्, स्वजनम्, उद्यता:।

भाषा :– अहो शोक है (कि) हम लोग महान् पाप करने को तैयार हुए हैं। जो कि राज्य और सुख के लोभ से अपने कुल को मारने के लिए तैयार हुए हैं॥४५॥

यदि माम-प्रतीकार,- मशास्त्रं शस्त्र पाणय:।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्यु,- स्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥४६॥

1 2 4 3 5 6
यदि, माम्, अप्रतीकारम्, अशस्त्रम्, शस्त्रपाणय:, धार्तराष्ट्रा:,
7 8 9 10 11 12
रणे, हन्यु:, तत्, मे, क्षेमतरम्, भवेत्।

भाषा :– यदि मुझ शस्त्र रहित (एवं) सामना न करने वाले को शस्त्रधारी धृतराष्ट्र पुत्र रण में मार डालें तो वह मारना भी मेरे लिए अधिक कल्याण कारक होगा॥४६॥

संजय उवाच

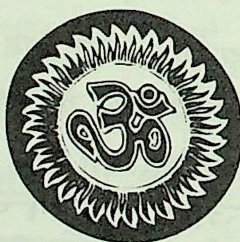
एव-मुक्त्वार्जुन: संख्ये, रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं, शोक-संविग्न मानस:॥४७॥

4 5 3 10 9 10 8
एवम्, उक्त्वा, अर्जुन:, संख्ये, रथोपस्थ, उपाविशत्, विसृज्य,
6 7 2
सशरम्, चापम्, शोकसंविग्नमानस:।

भाषा :– संजय बोला – रणभूमि में शोक से व्याकुल मन वाला अर्जुन ऐसा कहकर (तथा) बाण सहित धनुष को त्याग कर रथ के पिछले भाग में बैठ गया।।४७।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीता-
सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन
संवादेऽर्जुन विषाद- योगोनाम प्रथमोऽध्याय:
श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु।।१।।

श्लोका: ४७ एवमादि त: ४७





॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

संजय उवाच

तं तथा कृपया-विष्ट,- मश्रुपूर्णा-कुलेक्षणम्।
विषीदन्त-मिदं वाक्य,- मुवाच मधुसूदनः॥१॥

6 1 2 3 4 5
तम्, तथा, कृपया, आविष्टम्, अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्, विषीदन्तम्,
8 9 10 7
इदम्, वाक्यम्, उवाच, मधुसूदनः॥

भाषा :– इस प्रकार करुणा से व्याप्त और आँसुओं से पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रों वाले शोकाकुल उस (अर्जुन) के प्रति भगवान् मधुसूदन ने यह वचन कहा– ॥१॥

श्री भगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मल-मिदं, विषमे समुपस्थितम्।
अनार्य-जुष्ट-मस्वर्ग्य,- मकीर्तिकर-मर्जुन॥२॥

6 2 5 4 3 7 8
कुतः, त्वा, कश्मलम्, इदम्, विषमे, समुपस्थितम्, अनार्यजुष्टम्,
9 10 1
अस्वर्ग्यम्, अकीर्तिकरम्, अर्जुन।

भाषा :– श्रीभगवान् बोले – हे अर्जुन! तुझे इस असमय में यह मोह (अज्ञान) किस हेतु से प्राप्त हुआ? (क्योंकि) न तो (यह) श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा आचरित है, न स्वर्ग को देने वाला है (और) न कीर्ति को करने वाला है॥२॥

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ, नैतत्-त्वय्युप-पद्यते।
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं, त्यक्त्वो-त्तिष्ठ परंतप॥३॥

2 3 4 5 1 8 6 7 9 11
क्लैब्यम्, मा, स्म, गमः, पार्थ, न, एतत्, त्वयि, उपपद्यते, क्षुद्रम्,
12 13 14 10
हृदयदौर्बल्यम्, त्यक्त्वा, उत्तिष्ठ, परंतप।

भाषा :– इसलिए हे पार्थ! नपुंसकता को मत प्राप्त हो, यह तेरे में योग्य नहीं। हे परंतप! तुच्छ मानसिक दुर्बलता को त्याग कर (युद्ध के लिए) खड़ा हो॥३॥

अर्जुन उवाच

कथं भीष्म-महं संख्ये, द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि, पूजार्हा-वरिसूदन॥४॥

8 4 2 ३ 6 5 1 9 7
कथम्, भीष्मम्, अहम्, संख्ये, द्रोणम्, च, मधुसूदन, इषुभिः, प्रति,
10 12 11
योत्स्यामि, पूजार्हौ, अरिसूदन।

भाषा :– हे मधुसूदन! मैं रणभूमि में भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य के प्रति कैसे बाणों से युद्ध करूंगा? (क्योंकि) हे शत्रुजयी! वे दोनों ही पूजनीय हैं।।४।।

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्,
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्य-मपीह लोके।
हत्वार्थ कामांस्तु गुरुनिहैव,
भुंजीय भोगान् रुधिर प्रदिग्धान्।।५।।

2 3 10 1 9 8 6 7
गुरून्, अहत्वा, हि, महानुभावान्, श्रेयः, भोक्तुम्, भैक्ष्यम्, अपि,
4 5 12 15 18 11 13 17 19 16
इह, लोके, हत्वा, अर्थकामान्, तु, गुरून्, इह, एव, भुञ्जीय, भोगान्
14
रुधिरप्रदिग्धान्।

भाषा :– महानुभाव गुरुजनों को न मार कर इस लोक में भिक्षा का अन्न खाना मंगलकारी समझता हूँ क्योंकि गुरुजनों को मार कर (भी) इस लोक में रक्तसने अर्थ और काम रूप भोगों को ही भोगूँगा।।५।।

न चेतद् विद्मः कतरन्नो गरीयो,
यद्वा जयेम यदिवा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः।।६।।

3 2 1 4 6 5 7 8 9 10 11
न, च, एतत्, विद्मः, कतरत्, नः, गरीयः, यद्वा, जयेम, यदि, वः,
12 13 14 19 15 16 17 18 22
न, जयेयुः, यान्, एव, हत्वा, न, जिजीविषामः, ते, अवस्थिताः,
21 20
प्रमुखे, धार्तराष्ट्राः।

भाषा :– और हम लोग यह भी नहीं जानते कि हमें क्या (करना) श्रेष्ठ है अथवा हम (युद्ध में) विजयी होंगे या हम को वे जीतेंगे तथा जिनको मारकर (हम) जीना भी नहीं चाहते, वे ही धृतराष्ट्र पुत्र हमारे सम्मुख खड़े हैं।।६।।

कार्पण्यदोषो-पहत स्वभावः,
पृच्छामि-त्वां धर्म सम्मूढ चेताः।
यच्छ्रेयः स्यान् निश्चितं ब्रूहितन्मे,
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।७।।

1 4 3 2 5
कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः, पृच्छामि, त्वाम्, धर्मसम्मूढचेताः, यत्,
7 8 6 11 9 10 14 13 12 18
श्रेयः, स्यात्, निश्चितम्, ब्रूहि, तत्, मे, शिष्यः, ते, अहम्, शाधि,
17 15 16
माम्, त्वाम्, प्रपन्नम्।

भाषा :– इसलिए कायरता रूप दोष से उपहत स्वभाव वाला (तथा) धर्म के विषय में मोहित चित्त वाला (मैं) आप से पूछता हूँ कि जो निश्चित किया हुआ मङ्गलकारी साधन हो वह मेरे लिए कहिये (क्योंकि) मैं आपका शिष्य हूँ (इसलिए) आपकी शरण आया हूँ, मुझे शिक्षा दीजिये।।७।।

न हि प्रपश्यामि ममाप-नुद्याद्,
यच्छोक-मुच्छोषण-मिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमाव-सपत्न-मृद्धं,
राज्यं सुराणा-मपि चाधिपत्यम्॥८॥

11 1 12 14 18 13 17 16
न, हि, प्रपश्यामि, मम्, अपनुद्यात्, यत्, शोकम्, उच्छोषणम्,
15 9 2 3 4 5 7
इन्द्रियाणाम्, अवाप्य, भूमौ, असपत्नम्, ऋद्धम्, राज्यम्, सुराणाम्,
10 6 8
अपि, च, आधिपत्यम्।

भाषा :– क्योंकि भूमि पर निष्कण्टक धन-धान्य सम्पन्न राज्य को और देवताओं के स्वामीपने को प्राप्त होकर भी (मैं) उस (उपाय) को नहीं देखता हूँ, जो मेरी इन्द्रियों के सुखाने वाले शोक को दूर कर सके॥८॥

संजय उवाच

एव-मुक्त्वा ऋषीकेशं, गुडाकेशः परन्तप।
न योत्स्य इति गोविन्द, - मुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह॥९॥

4 5 3 2 1 7 8 9
एवम्, उक्त्वा, ऋषीकेशम्, गुडाकेशः, परंतप, न, योत्स्ये, इति,
6 11 12 13 10
गोविन्दम्, उक्त्वा, तूष्णीम्, बभूव, ह।

भाषा :– संजय बोले– हे राजन! निद्राजयी (अर्जुन) अन्तर्यामी कृष्ण के प्रति इस प्रकार कहकर (फिर) गोविन्द को – 'युद्ध नहीं करूँगा' ऐसा स्पष्ट कह कर चुप हो गया॥९॥

तमुवाच ऋषीकेशः, प्रहसन्निव भारत।
सेनयो-रुभयोर्मध्ये, विषीदन्त-मिदं वचः॥१०॥

6 12 2 8 9 1 4 3 5
तम्, उवाच, ऋषीकेशः, प्रहसन्, इव, भारत, सेन्योः, उभयोः, मध्ये,
7 10 11
विषीदन्तम्, इदम्, वचः।

भाषा :– तदुपरान्त – हे भारत (भरवंशी धृतराष्ट्र)! अन्तर्यामी श्री कृष्ण महाराज ने दोनों सेनाओं के बीच में उस शोकाकुल (अर्जुन) को हँसते हुए यह वचन कहा–॥१०॥

श्रीभगवानुवाच

अशोच्या-नन्व-शोचस्त्वं, प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासून-गतासूंश्च, नानु-शोचन्ति पण्डिताः॥११॥

2 3 1 5 4 6 8
अशोच्यान्, अन्वशोचः, त्वम्, प्रज्ञावादान्, च, भाषसे, गतासून्,
10 9 1 12 7
अगतासून्, च, न, अनुशोचन्ति, पण्डिताः।

इस श्लोक से श्रीमद्भगवद्गीतोपदेश प्रारम्भ होता है–

भाषा :– हे अर्जुन! तू न शोक करने योग्यों के प्रति शोक करता है और पण्डितों के (जैसे) वचनों को कहता है, (किन्तु) पण्डितजन मरे हुए तथा जीवित लोगों के लिए (भी) शोक नहीं करते हैं ॥११॥

न त्वेवाहं जातु नासं, न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः, सर्वे वय-मतः परम्॥१२॥

1 2 3 4 5 6 7 9 8 12 10 11
न, तु, एव, अहम्, जातु, न, आसम्, न, त्वम्, न, इमे, जनाधिपाः,
14 13 15 20 21 19 18 16 17
न, च, एव, न, भविष्यामः, सर्वे, वयम्, अतः, परम्॥१२॥

भाषा :– क्योंकि आत्मा नित्य-सत्य सनातन है– न तो (ऐसा) है (कि) मैं किसी काल में नहीं था (अथवा) तू नहीं था (अथवा) ये राजा लोग नहीं थे और न (ऐसा) ही (है कि) इस से आगे हम सब नहीं रहेंगे? ।।१२।।

देहिनोऽ-स्मिन् यथा देहे, कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तर प्राप्ति,- र्धीर स्तत्र न मुह्यति।।१३।।

2 3 1 4 5 6 7 8
देहिनः, अस्मिन्, यथा, देहे, कौमारम्, यौवनम्, जरा, तथा,
9 11 10 12 13
देहान्तरप्राप्तिः, धीरः, तत्र, न, मुह्यति।

भाषा :– किन्तु जीवात्मा की इस देह में कुमार, युवा (तथा) वृद्धावस्था (होती है) वैसे ही (मरने के बाद पुनः) अन्य शरीर की प्राप्ति होती है; (अतः) धीर पुरुष उस विषय में मोहित नहीं होता है अर्थात् शोक नहीं करता।।१३।।

मात्रा-स्पर्शा-स्तु कौन्तेय, शीतोष्ण सुख दुःखदाः।
आगमा-पायिनोऽ-नित्या,-स्तां-स्तितिक्षस्व भारत।।१४।।

3 4 1 2 5
मात्रास्पर्शाः, तु, कौन्तेय, शीतोष्णसुखदुःखदाः, आगमापायिनः,
6 8 9 7
अनित्याः, तान्, तितिक्षस्व, भारत।

भाषा :– हे कुन्ती नन्दन! सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख देने वाले इन्द्रिय तथा विषयों जनित संयोग तो क्षणभङ्गुर और अनित्य (अस्थायी) हैं। इसलिए– हे भरत कुलभूषण (अर्जुन)! तू उनको सहन कर– ।।१४।।

यं हि न व्यथय-न्त्येते, पुरुषं पुरुष-र्षभ।
सम दुःख सुखं धीरं, सोऽमृत त्वाय कल्पते॥१५॥

4 1 8 9 7 6 2 3
यम्, हि, न, व्यथयन्ति, एते, पुरुषम्, पुरुषर्षभ, समदुःखसुखम्,
5 10 11 12
धीरम्, सः, अमृतत्वाय, कल्पते।

भाषा :– क्योंकि हे नरश्रेष्ठ! सुख-दुःख को समान समझने वाले जिस धीर पुरुष को यह (इन्द्रिय जनित विषय) व्याकुल नहीं कर सकते, वह मोक्ष का पात्र होता है– ॥१५॥

नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्त,- स्त्वनयो-स्तत्त्व दर्शिभिः॥१६॥

3 1 4 2 8 7 9 6 11
न, असतः, विद्यते, भावः, न, अभावः, विद्यते, सतः, उभयोः,
12 15 13 5 10 14
अपि, दृष्टः, अन्तः, तु, अन्योः, तत्त्वदर्शिभिः॥१६॥

भाषा :– असत् वस्तु का अस्तित्व नहीं है और सत् का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनों का स्वरूप तत्त्व ज्ञानियों द्वारा देखा गया है– ॥१६॥

अविनाशि तु तद् विद्धि, येन सर्वमिदं ततम्।
विनाश-मव्यय स्यास्य, न कश्चित् कर्तु-मर्हति॥१७॥

1 2 3 4 5 7 6 8 11
अविनाशि, तु, तत्, विद्धि, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्, विनाशम्,
10 9 14 13 12 15
अव्ययस्य, अस्य, न, कश्चित्, कर्तुम्, अर्हति।

भाषा :– नाशरहित तो तू उसको जान, जिससे यह सम्पूर्ण (जगत्) व्याप्त है (क्योंकि) इस अविनाशी का नाश करने को कोई भी समर्थ नहीं है– ॥१७॥

अन्तवन्त इमे देहा, नित्य-स्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽ– प्रमेयस्य, तस्माद् युध्यस्व भारत॥१८॥

7 5 6 3 8 4 1
अन्तवन्तः, इमे, देहाः, नित्यस्य, उक्ताः, शरीरिणः, अनाशिनः,
2 9 11 10
अप्रमेयस्य, तस्मात्, युध्यस्व, भारत।

भाषा :– नाशरहित, अप्रमेय (माप रहित), नित्यस्वरूप जीवात्मा के ये सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं। इसलिए हे भारत (अर्जुन)! (तू) युद्ध कर– ॥१८॥

य एनं वेत्ति हन्तारं, यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो, नायं हन्ति न हन्यते॥१९॥

1 2 4 3 6 5 7 9 8 11 10
यः, एनम्, वेत्ति, हन्तारम्, यः, च, एनम्, मन्यते, हतम्, उभौ, तौ,
12 13 15 14 16 17 18
न, विजानीतः, न, अयम्, हन्ति, न, हन्यते।

भाषा :– जो इस आत्मा को मारने वाला समझता है तथा जो इसे मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते हैं (क्योंकि) यह आत्मा न मरता है (और) न मारा जाता है– ॥१९॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन्,
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो,
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।२०।।

3 4 7 5 2 6 1 10 12 8
न, जायते, म्रियते, वा, कदाचित्, न, अयम्, भूत्वा, भविता, वा,
9 11 14 15 16 13 17 20 21 18
न, भूयः, अजः, नित्यः, शाश्वतः, अयम्, पुराणः, न, हन्यते, हन्यमाने,
19
शरीरे।

भाषा :– यह (आत्मा) किसी काल में भी न जन्मता और न मरता है अथवा न (यह आत्मा) होकर के पुनः होने वाला है– (कारण कि) यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत् (और) पुरातन है। शरीर नाश होने पर भी (यह) नाश नहीं होता है– ।।२०।।

वेदाविनाशिनं नित्यं, य एन-मज-मव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ, कं घातयति हन्ति कम्।।२१।।

8 4 5 2 3 6 7 11
वेद, अविनाशिनम्, नित्यम्, यः, एनम्, अजम्, अव्ययम्, कथम्,
9 10 1 12 13 15 14
सः, पुरुषः, पार्थ, कम्, घातयति, हन्ति, कम्।।

भाषा :– हे पृथापुत्र (अर्जुन)! जो पुरुष इस आत्मा को अविनाशी, नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है, वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है (और) कैसे किसको मारता है– ।।२१।।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा,-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।२२।।

4 3 1 5 7 8 2 6
वासांसि, जीर्णानि, यथा, विहाय, नवानि, गृह्णाति, नरः, अपराणि,
9 12 13 11 14 16 15 10
तथा, शरीराणि, विहाय, जीर्णानि, अन्यानि संयाति, नवानि, देही।

भाषा :– शरीर बिछुड़ने का शोक करना भी उचित नहीं है– क्योंकि जैसे मनुष्य पुराने कपड़ों को त्याग कर नये (वस्त्रों) को ग्रहण करता है, वैसे (ही) जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है– ।।२२।।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदय-न्त्यापो, न शोषयति मारुतः।।२३।।

3 1 4 2 7 5 8 6 11 13
न, एनम्, छिन्दन्ति, शस्त्राणि, न, एनम्, दहति, पावकः, न, च,
9 12 10 14 16 15
एनम्, क्लेदयन्ति, आपः, न, शोषयति, मारुतः।

भाषा :– और हे अर्जुन! इस (आत्मा) को शस्त्र नहीं काट सकते, इसे आग नहीं जला सकती है। तथा इसको जल नहीं गीला कर सकता और वायु नहीं सुखा सकती है– ।।२३।।

अच्छेद्योऽय-मदाह्योऽय,- मक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणु,-रचलोऽयं सनातनः।।२४।।

2 1 4 3 5 7 9 6
अच्छेद्यः, अयम्, अदाह्यः, अयम्, अक्लेद्यः, अशोष्य, एव, च,
10 11 13 12 8 14
नित्यः, सर्वगतः, स्थाणुः, अचलः, अयम्, सनातनः।

भाषा :– क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है; यह आत्मा-अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है। तथा यह आत्मा निःसन्देह नित्य, सर्वव्यापक, अचल, स्थिर तथा सनातन है– ।।२४।।

अव्यक्तोऽय-मचिन्त्योऽय,- मविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं, नानु-शोचितु-मर्हसि।।२५।।

2 1 4 3 6 5 7
अव्यक्तः, अयम्, अचिन्त्यः, अयम्, अविकार्यः, अयम्, उच्यते,
8 10 11 9 13 12 14
तस्मात्, एवम्, विदित्वा, एनम्, न, अनुशोचितुम्, अर्हसि।

भाषा :– और यह (आत्मा) अव्यक्त है, यह आत्मा अचिन्त्य है (और) यह आत्मा अविकारी है (ऐसा) कहा जाता है। इसलिए हे अर्जुन! आत्मा को ऐसा जानकर (तू) शोक करने को योग्य नहीं है अर्थात् तेरा शोक करना उचित नहीं है– ।।२५।।

अथ चैनं नित्य जातं, नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो, नैवं शोचितु-मर्हसि।।२६।।

1 2 4 5 7 6 9 8 10
अथ, च, एनम्, नित्यजातम्, नित्यम्, वा, मन्यसे, मृतम्, तथापि,
3 11 14 12 13 15
त्वम्, महाबाहो, न, एवम्, शोचितुम्, अर्हसि।

भाषा :– और यदि तू इसको सदा जन्मने और सदा मरने वाला माने तो भी महाबाहो (हे अर्जुन!) इस प्रकार शोक करने को तू योग्य नहीं है– ।।२६।।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु,- र्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मा-दपरिहा र्येऽर्थे, न त्वं शोचितु-मर्हसि।।२७।।

2 1 3 4 7 8 6 5 9 11
जातस्य, हि, ध्रुवः, मृत्युः, ध्रुवम्, जन्म, मृतस्य, च, तस्मात्, अपरिहार्ये,
12 14 10 13 15
अर्थे, न, त्वम्, शोचितुम्, अर्हसि।।२७।।

भाषा :– क्योंकि (ऐसा होने से तो) जन्मने वाले की निश्चित मृत्यु और मरने वाले का निश्चित जन्म (होना सिद्ध हुआ)। इससे भी (तू) इस बिना उपाय वाले विषय में शोक करने के योग्य नहीं है– ।।२७।।

अव्यक्तादीनि भूतानि, व्यक्त मध्यानि भारत।
अव्यक्त निधनान्येव, तत्र का परिदेवना।।२८।।

3 2 6 1 4
अव्यक्तादीनि, भूतानि, व्यक्तमध्यानि, भारत, अव्यक्तनिधनानि,
5 7 8 9
एव, तत्र, का, परिदेवना।

भाषा :– और यह भीष्मादिकों के शरीर मायामय होने से अनित्य हैं। इससे शरीरों के लिए भी शोक करना उचित नहीं क्योंकि– हे भारत! समस्त प्राणी जन्म से पूर्व बिना शरीर वाले और मरने के बाद भी बिना शरीर वाले ही हैं। (केवल) बीच में ही शरीर वाले (प्रतीत होते) हैं। फिर उस विषय में क्या चिन्ता है? ।।२८।।

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेन,-
माश्चर्यवद् वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यव च्चैन-मन्यः शृणोति,
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥२९॥

3 4 1 2 9 10 6
आश्चर्यवत्, पश्यति, कश्चित्, एनम्, आश्चर्यवत्, वदति, तथा,
7 5 12 14 11 13 8 15 18
एव, च, अन्यः, आश्चर्यवत्, च, एनम्, अन्यः, शृणोति, श्रुत्वा,
19 20 23 21 16 22 17
अपि, एनम्, वेद, न, च, एव, कश्चित्।

भाषा :– और हे अर्जुन! यह आत्मतत्त्व बड़ा गहन है इसलिए– कोई (महात्मा ही) इस आत्मा को आश्चर्य की भान्ति देखता है और वैसे ही दूसरा कोई आश्चर्यवत् (इसके तत्त्व को) कहता है और अन्य इस आत्मा को आश्चर्य की भान्ति सुनता है और कोई सुनकर भी इस (आत्मा) को नहीं जानता– ॥२९॥

देही नित्य-मवध्योऽयं, देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात् सर्वाणि भूतानि, न त्वं शोचितु-मर्हसि॥३०॥

3 6 7 2 5 4 1 8 9
देही, नित्यम्, अवध्यः, अयम्, देहे, सर्वस्य, भारत, तस्मात्, सर्वाणि,
10 13 11 12 14
भूतानि, न, त्वम्, शोचितुम्, अर्हसि।

भाषा :– हे भारत! यह आत्मा सब के शरीर में सदा ही अवध्य है। इसलिए समस्त भूत प्राणियों के लिए तू शोक करने के योग्य नहीं है॥३०॥

स्वधर्म-मपि चावेक्ष्य, न विकम्पितु-मर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्, क्षत्रियस्य न विद्यते॥३१॥

2 4 1 3 6 5 7 9 8
स्वधर्मम्, अपि, च, अवेक्ष्य, न, विकम्पितुम्, अर्हसि, धर्म्यात्, हि,
10 12 11 13 14 15
युद्धात्, श्रेयः, अन्यत्, क्षत्रियस्य, न, विद्यते।

भाषा :– और अपने धर्म को देख कर भी तू भय करने को योग्य नहीं अर्थात् तुझे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा (कोई) कल्याणकारक कर्त्तव्य क्षत्रिय के लिए नहीं है– ॥३१॥

यदृच्छया चोप-पन्नं, स्वर्गद्वार-मपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ, लभन्ते युद्ध-मीदृशम्॥३२॥

2 4 3 6 5 9 10
यदृच्छया, च, उपपन्नम्, स्वर्गद्वारम्, अपावृतम्, सुखिनः, क्षत्रियाः,
1 11 8 7
पार्थ, लभन्ते, युद्धम्, ईदृशम्।

भाषा :– और हे पार्थ! अपने आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्ग के द्वार रूप इस प्रकार के युद्ध को भाग्यवान् क्षत्रिय लोग (ही) पाते हैं– ॥३२॥

अथ चेत् त्व-मिमं धर्म्यं, संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च, हित्वा पाप-मवाप्स्यसि॥३३॥

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
अथ, चेत्, त्वम्, इमम्, धर्म्यं, संग्रामम्, न, करिष्यसि, ततः, स्वधर्मम्,
12 11 13 14 15
कीर्तिम्, च, हित्वा, पापम्, अवाप्स्यसि।

भाषा :– और यदि तू इस धर्म युद्ध को नहीं करेगा तो स्वधर्म और यश को खोकर पाप का भागी बनेगा।।३३।।

अकीर्तिं चापि भूतानि, कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्ति, - र्मरणा-दति-रिच्यते।।३४।।

5 1 6 2 7 3 4
अकीर्तिम्, च, अपि, भूतानि, कथयिष्यन्ति, ते, अव्ययाम्,
10 8 9 11 12
सम्भावितस्य, च, अकीर्तिः, मरणात्, अतिरिच्यते।

भाषा :– और सब लोग तेरी चिरकाल तक रहने वाली अपकीर्ति का भी कथन करेंगे तथा वह अपकीर्ति माननीय पुरुष के लिए मरण से भी अधिक बुरी होती है– ।।३४।।

भयाद्-रणा-दुपरतं, मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो, भूत्वा यास्यसि लाघवम्।।३५।।

10 11 12 13 9 8 2 1 3
भयात्, रणात्, उपरतम्, मंस्यन्ते, त्वाम्, महारथाः, येषाम्, च, त्वम्,
4 5 7 6
बहुमतः, भूत्वा, यास्यसि, लाघवम्।

भाषा :– और जिनकी (दृष्टि में) तू पहले बहुत सम्मानित होकर (भी अब) तुच्छता को प्राप्त होगा (वे) महारथी लोग तुझे भय के कारण युद्ध से हटा हुआ मानेंगे– ।।३५।।

अवाच्य वादांश्च बहून्, वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्त-स्तव सामर्थ्यं, ततो दुःखतरं नु किम्।।३६।।

8 1 7 9 2 3 6 4
अवाच्यवादान्, च, बहून्, वदिष्यन्ति, तव, अहिताः, निन्दन्तः, तव,
5 11 12 10 13
सामर्थ्यम्, ततः, दुःखतरम्, नु, किम्।

भाषा :– और तेरे बैरी लोग तेरे सामर्थ्य की निन्दा करते हुए बहुत सी न कहने योग्य बातें कहेंगे, फिर उससे बढ़कर दुःख क्या होगा?॥३६॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मा-दुत्तिष्ठ कौन्तेय, युद्धाय कृत निश्चयः॥३७॥

2 1 4 3 6 5 8 7 9
हतः, वा, प्राप्स्यसि, स्वर्गम्, जित्वा, वा, भोक्ष्यसे, महीम्, तस्मात्,
13 10 11 12
उत्तिष्ठ, कौन्तेय, युद्धाय, कृतनिश्चयः।

भाषा :– अतः युद्ध करना तेरे लिए मङ्गलकारी होगा; क्योंकि या तो मरकर स्वर्ग को प्राप्त होगा अथवा जीतकर पृथ्वी को भोगे-गा (राज करेगा)। इससे हे अर्जुन! युद्ध के लिए निश्चय करके खड़ा हो जा– ॥३७॥

सुख दुःखे समे कृत्वा, लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय सुज्यस्व, नैवं पाप-मवाप्स्यसि॥३८॥

1 4 5 2 3 6 7
सुखदुःखे, समे, कृत्वा, लाभालाभौ, जयाजयौ, ततः, युद्धाय,
8 11 9 10 12
युज्यस्व, न, एवं, पापम्, अवाप्स्यसि॥३८॥

भाषा :– सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय को समान समझ कर, उसके बाद युद्ध के लिए तैयार हो जा; इस प्रकार (युद्ध करने से) तू पाप को नहीं प्राप्त होगा (पाप का भागी नहीं बनेगा)– ॥३८॥

एषा तेऽभिहिता सांख्ये, बुद्धि-र्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ, कर्म बन्धं प्रहास्यसि॥३९॥

2 4 6 5 3 9 7 8 10 12
एषा, ते, अभिहिता, सांख्ये, बुद्धिः, योगे, तु, इमाम्, शृणु, बुद्ध्या,
13 11 1 14 15
युक्तः, यया, पार्थ, कर्मबन्धम्, प्रहास्यसि॥३९॥

भाषा :– हे पार्थ! यह बुद्धि तेरे लिए ज्ञान योग के विषय में कही गई है और इसी को (अब) निष्काम कर्मयोग के विषय में सुन (कि) जिस बुद्धि से युक्त हुआ तू कर्म-बन्धन को भली प्रकार से नाश करेगा॥३९॥

नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति, प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्प-मप्यस्य धर्मस्य, त्रायते महतो भयात्॥४०॥

3 1 2 4 5 6 7 10
न, इह, अभिक्रमनाशः, अस्ति, प्रत्यवायः, न, विद्यते, स्वल्पम्,
11 8 9 14 12 13
अपि, अस्य, धर्मस्य, त्रायते, महतः, भयात्।

भाषा :– इस (निष्काम कर्म योग में) आरम्भ अर्थात् बीज का नाश नहीं है और उलटा फलरूप दोष भी नहीं होता है। (इसलिए) इस (निष्काम कर्मयोग रूप) धर्म का थोड़ा भी (अभ्यास), जन्म-मृत्युरूप महान् भय से उद्धार कर देता है॥४०॥

व्यवसायात्मिका बुद्धि,- रेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च, बुद्धयोऽ-व्यवसायिनाम्॥४१॥

3 4 5 2 1 10 6
व्यवसायात्मिका, बुद्धिः, एका, इह, कुरुनन्दन, बहुशाखाः, हि,
11 7 9 8
अनन्ताः, च, बुद्धयः, अव्यवसायिनाम्।

भाषा :– और हे अर्जुन! इस (कल्याण मार्ग में) निश्चयात्मक बुद्धि एक ही है। और अनिश्चयात्मक (अज्ञानी, सकामी पुरुषों की) बुद्धियाँ बहुत भेदों वाली अनन्त होती हैं– ।।४१।।

यामिमां पुष्पितां वाचं, प्रवदन्त्य-विपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ, नान्य-दस्तीति वादिनः।।४२।।
कामात्मानः स्वर्गपरा, जन्म कर्म फल प्रदाम्।
क्रिया विशेष बहुलां, भोगैश्वर्य गतिं प्रति।।४३।।

16 15 17 18 19 10 3
याम्, इमाम्, पुष्पितां, वाचम्, प्रवदन्ति, अविपश्चितः, वेदवादरताः,
1 6 5 7 8 9 2 4
पार्थ, न, अन्यत्, अस्ति, इति, वादिनः, कामात्मानः, स्वर्गपराः,
11 14 12 13
जन्मकर्मफलप्रदाम्, क्रियाविशेषबहुलाम्, भोगैश्वर्यगतिम्, प्रति।

भाषा :– हे पार्थ! सकामी पुरुष केवल फलश्रुति में प्रीति रखने वाले, स्वर्ग को ही परमश्रेष्ठ मानने वाले, (इससे बढ़कर) और कुछ नहीं है, ऐसे कहने वाले हैं; (वे) अविवेकी जन जन्मरूप कर्मफल को देने वाली और भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए बहुत सी क्रियाओं के विस्तार वाली, इस प्रकार की जिस दिखाऊ शोभायुक्त वाणी को कहते हैं– ।।४२-४३।।

भोगैश्वर्य प्रसक्तानां, तयाप-हृत चेतसाम्।
व्यवसा-यात्मिका बुद्धिः, समाधौ न विधीयते।।४४।।

3 1 2 5
भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम्, तया, अपहृतचेतसाम्, व्यवसायात्मिका,
6 4 7 8
बुद्धिः, समाधौ, न, विधीयते।

भाषा :– उस (वाणी द्‌वारा) हरे हुए चित्त वाले तथा भोग और ऐश्वर्य में आसक्ति वाले (उन पुरुषों के) अन्तःकरण में निश्चयात्मक बुद्‌धि नहीं होती है।।४४।।

त्रैगुण्य विषया वेदा, नि-स्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्‌वन्द्‌वो नित्य सत्त्वस्थो, निर्योग क्षेम आत्मवान्।।४५।।

3 2 4 9 1 5
त्रैगुण्यविषयाः, वेदाः, निस्त्रैगुण्यः, भव, अर्जुन, निर्द्‌वन्द्‌वः,
6 7 8
नित्यसत्त्वस्थः, निर्योगक्षेमः, आत्मवान्।

भाषा :– और – हे अर्जुन! सब वेद तीनों गुणों के कार्यरूप (समस्त भोगों एवं उनके) साधनों का प्रतिपादन करने वाले हैं; (इसलिए तू) उनमें आसक्ति रहित, सुख-दुःखादि द्‌वन्द्‌वों से रहित, नित्यवस्तु (परमात्मा) में स्थित, योग (अप्राप्त की प्राप्ति) क्षेम (प्राप्त वस्तु की रक्षा) को न चाहने वाला और स्वतन्त्र अन्तःकरण वाला हो– ।।४५।।

यावानर्थ उदपाने, सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान् सर्वेषु वेदेषु, ब्राह्मणस्य विजानतः।।४६।।

4 5 3 1 2 10 8 9
यावान्, अर्थः, उदपाने, सर्वतः, संप्लुतोदके, तावान्, सर्वेषुं, वेदेषु,
7 6
ब्राह्मणस्य, विजानतः।

भाषा :– सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त हो जाने पर छोटे जलाशय में जितना प्रयोजन रहता है, ब्रह्म को अच्छी प्रकार जानने के लिए ब्राह्मण का समस्त वेदों में उतना ही प्रयोजन रहता है– ।।४६।।

कर्मण्ये-वाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भू,- र्मा ते संगोऽ-स्त्वकर्मणि॥४७॥

2 3 4 1 7 5 6 9 8
कर्मणि, एव, अधिकारः, ते, मा, फलेषु, कदाचन, मा, कर्मफलहेतुः,
10 14 11 13 15 12
भूः, मा, ते, संगः, अस्तु, अकर्मणि।

भाषा :– तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। तू कार्यों के फल की वासना वाला (भी) मत हो (तथा) तेरी कर्म न करने में भी प्रीति न हो– ॥४७॥

योगस्थः कुरु कर्माणि, सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्य-सिद्ध्योः समो भूत्वा, समत्वं योग उच्यते॥४८॥

7 9 8 2 3 1 4
योगस्थः, कुरु, कर्माणि, सङ्गम्, त्यक्त्वा, धनंजय, सिद्ध्यसिद्ध्योः,
5 6 10 11 12
समः, भूत्वा, समत्वम्, योगः, उच्यते।

भाषा :– हे धनंजय! ममता का त्याग कर तथा सिद्धि-असिद्धि में समभाव होकर योग में स्थित हुआ कर्त्तव्यकर्मों को कर। (यह) समत्वभाव ही योग (नाम से) कहा जाता है– ॥४८॥

दूरेण ह्यवरं कर्म, बुद्धि योगाद् धनंजय।
बुद्धौ शरण-मन्विच्छ, कृपणाः फल हेतवः॥४९॥

3 9 4 2 1 5 6 7
दूरेण, हि, अवरम्, कर्म, बुद्धियोगात्, धनंजय, बुद्धौ, शरणम्,
8 11 10
अन्विच्छ, कृपणाः, फलहेतवः।

भाषा :– इस समत्व रूप – बुद्धि योग से (सकाम) कर्म अत्यन्त तुच्छ है। (अत:) हे धनंजय! (तू) समत्व बुद्धियोग का आश्रय ग्रहण कर, क्योंकि फल की वासना वाले अत्यन्त दीन हैं– ।।४९।।

बुद्धि युक्तो जहातीह, उभे सुकृत दुष्कृते।
तस्माद् योगाय युज्यस्व, योगः कर्मसु कौशलम्।।५०।।

1 5 4 3 2 6 7
बुद्धियुक्तः, जहाति, इह, उभे, सुकृतदुष्कृते, तस्मात्, योगाय,
8 9 10 11
युज्यस्व, योगः, कर्मसु, कौशलम्।

भाषा :– समत्व बुद्धियुक्त मनुष्य पुण्य-पाप दोनों को इस लोक में (ही) त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इससे (तू) समत्व योग में लग जा; (यह) योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्म बन्धन से छूटने का उपाय है– ।।५०।।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि, फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्म बन्ध विनिर्मुक्ताः, पदं गच्छ-न्त्यनामयम्।।५१।।

4 2 1 5 6 3
कर्मजम् बुद्धियुक्ताः, हि, फलम्, त्यक्त्वा, मनीषिणः,
7 9 10 8
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः, पदम्, गच्छन्ति, अनामयम्।

भाषा :– क्योंकि बुद्धि योग युक्त ज्ञानी जन, कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल को त्याग कर जन्म रूप बन्धन से मुक्त हो, अमृतमय परम पद को प्राप्त होते हैं– ।।५१।।

यदा ते मोह कलिलं, बुद्धि-र्व्यति तरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं, श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।५२।।

1 2 4 3 5 6 11

यदा, ते, मोहकलिलम्, बुद्धिः, व्यतितरिष्यति, तदा, गन्तासि,

10 7 9 8

निर्वेदम्, श्रोतव्यस्य, श्रुतस्य, च।

भाषा :– और हे अर्जुन! जिस काल में तेरी बुद्धि मोह रूप दलदल को बिल्कुल तर जायेगी, तब (तू) सुने हुए और सुनने में आने वाले वैराग्य को प्राप्त होगा– ॥५२॥

श्रुति विप्रतिपन्ना ते, यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धि,- स्तदा योग-मवाप्स्यसि॥५३॥

3 2 1 8 7 5

श्रुतिविप्रतिपन्ना, ते, यदा, स्थास्यति, निश्चला, समाधौ, अचला,

4 9 10 11

बुद्धिः, तदा, योगम्, अवाप्स्यसि।

भाषा :– जब तेरी अनेक प्रकार के सिद्धान्तों को सुनने से विचलित हुई बुद्धि परमात्म-स्वरूप में अचल-स्थिर ठहर जायेगी, तब (तू) समत्व स्वरूप को प्राप्त होगा॥५३॥

अर्जुन उवाच

स्थित प्रज्ञस्य का भाषा, समाधि स्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत, किमासीत व्रजेत किम्॥५४॥

3 4 5 2 1 6 7

स्थितप्रज्ञस्य, का, भाषा, समाधिस्थस्य, केशव, स्थितधीः, किम्,

8 9 10 12 11

प्रभाषेत, किम्, आसीत, व्रजेत, किम्।

भाषा :– भगवान् के वचनों को सुनकर अर्जुन ने पूछा– हे केशव! समाधि में स्थित, स्थिर बुद्धि वाले पुरुष का क्या लक्षण है?

तथा स्थिर बुद्धि पुरुष कैसे बोलता है? कैसे उठता और कैसे चलता है?।।५४।।

श्रीभगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्, सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आतमन्ये-वात्मना तुष्टः, स्थित प्रज्ञ-स्तदोच्यते।।५५।।

6 2 5 4 1 3 10 9
प्रजहाति, यदा, कामान्, सर्वान्, पार्थ, मनोगतान्, आत्मनि, एव,
8 11 12 7 13
आत्मना, तुष्टः, स्थितप्रज्ञः, तदा, उच्यते।

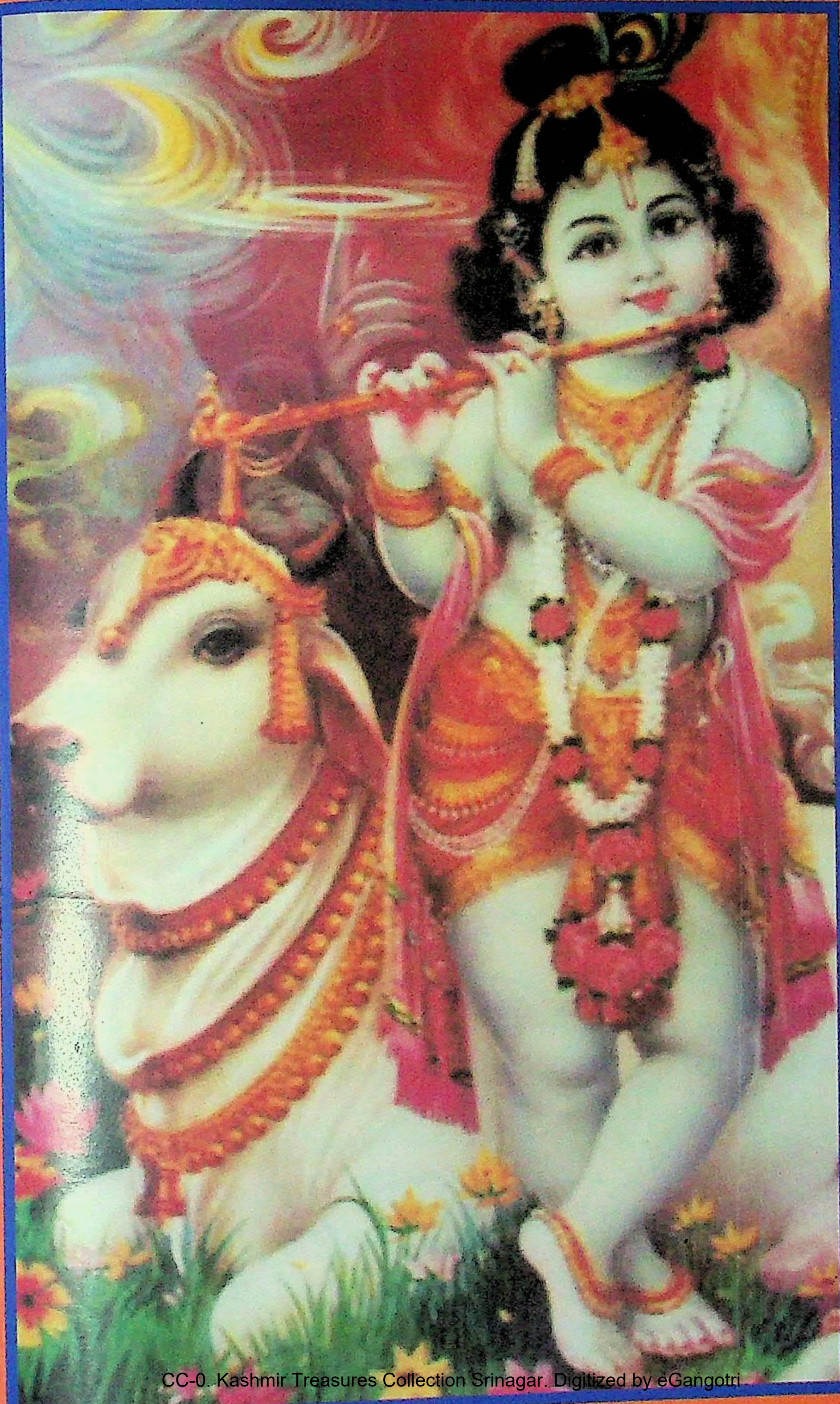
भाषा :– श्रीभगवान् बोले – हे पार्थ! जिस काल में (यह पुरुष) मन में स्थित सभी कामनाओं को त्याग देता है, उस काल में आत्मा से ही आत्मा में संतुष्ट हुआ स्थिर बुद्धि वाला कहा जाता है– ।।५५।।

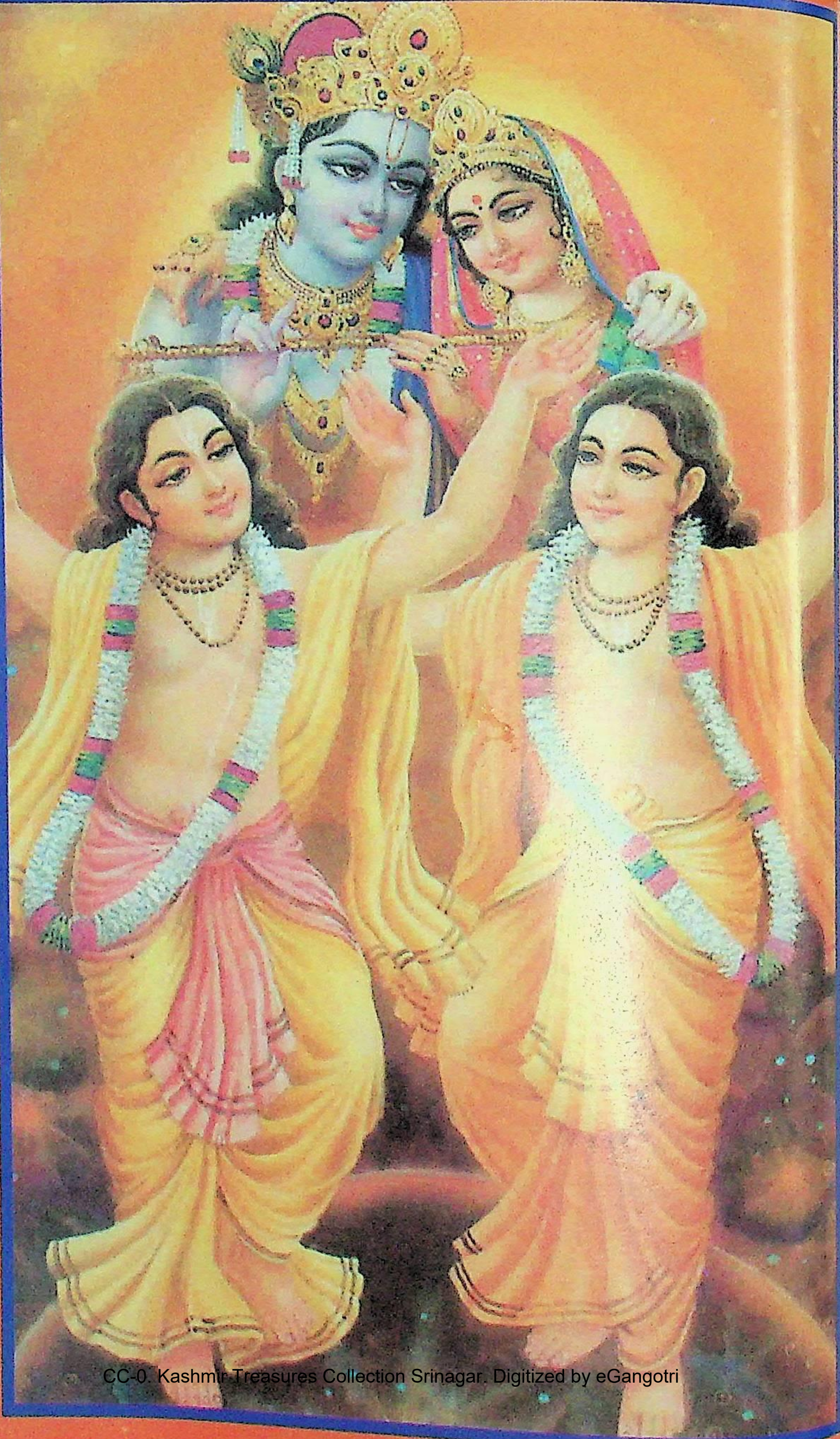
दुःखेष्वनुद्-विग्नमनाः, सुखेषु विगत-स्पृहः।
वीत राग भय क्रोधः, स्थितधी-र्मुनि-रुच्यते।।५६।।

1 2 3 4 5
दुःखेषु, अनुद्विग्नमनाः, सुखेषु, विगतस्पृहः, वीतरागभयक्रोधः,
7 6 8
स्थितधीः, मुनिः, उच्यते।

भाषा :– दुःखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में व्याकुलता नहीं, सुखों की प्राप्ति में कामना-रहित तथा जिसके राग-भय-क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थित प्रज्ञ कहा जाता है– ।।५६।।

यः सर्वत्रा-नभिस्नेह,- स्तत् तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभि-नन्दति न द्वेष्टि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।५७।।





1 2 3 4 5 7 6 8 9

यः, सर्वत्र, अनभिस्नेहः, तत्, तत्, प्राप्य, शुभाशुभम्, न, अभिनन्दति,

10 11 12 13 14

न, द्वेष्टि, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता।

भाषा :– जो सर्वत्र स्नेह रहित हुआ, उस-उस शुभ व अशुभ वस्तु को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है– ।।५७।।

यदा संहरते चायं, कूर्मोऽ ङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रिया–णीन्द्रियार्थेभ्य,– स्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।५८।।

6 10 1 5 2 3 4 7 8

यदा, संहरते, च, अयम्, कूर्मः, अङ्गानि, इव, सर्वशः, इन्द्रियाणि,

9 11 12 13

इन्द्रियार्थेभ्यः, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता।

भाषा :– और कछुआ (अपने) अंगों को जैसे (समेट लेता है, वैसे ही) यह पुरुष जब सब ओर से इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषयों से समेट लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है– ।।५८।।

विषया विनिवर्तन्ते, निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य, परं दृष्ट्वा निवर्तते।।५९।।

3 4 1 2 5 7 8

विषयाः, विनिवर्तन्ते, निराहारस्य, देहिनः, रसवर्जम्, रसः, अपि,

6 9 10 11

अस्य, परम्, दृष्ट्वा, निवर्तते।

भाषा :– इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण न करने वाले पुरुष के भी विषय तो छूट जाते हैं, परन्तु राग (मोह) नहीं छूटता है और इस पुरुष का तो राग भी परमात्मा का साक्षात्कार कर के छूट जाता है– ।।५९।।

यततो ह्यपि कौन्तेय, पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि, हरन्ति प्रसभं मनः॥६०॥

3 2 6 1 5 4 9 8
यततः, हि, अपि, कौन्तेय, पुरुषस्य, विपश्चितः, इन्द्रियाणि, प्रमाथीनि,
11 10 7
हरन्ति, प्रसभम्, मनः।

भाषा :– और– हे अर्जुन! जिससे (कि) यत्न करते हुए बुद्धिमान् पुरुष के भी मन को, यह उन्मत्त (मतवाली) स्वभाव वाली इन्द्रियाँ, बलपूर्वक हर लेती हैं– ॥६०॥

तानि सर्वाणि संयम्य, युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्ये-न्द्रियाणि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥६१॥

1 2 3 4 6 5 10 7 8
तानि, सर्वाणि, संयम्य, युक्तः, आसीत, मत्परः, वशे, हि, यस्य,
9 11 12 13
इन्द्रियाणि, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता।

भाषा :– अतः मनुष्य को चाहिए कि– उन सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके एकाग्र चित्त हो, मेरे परायण होकर ध्यानस्थ होवे, क्योंकि जिस पुरुष की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है– ॥६१॥

ध्यायतो विषयान् पुंसः, संग-स्तेषूप-जायते।
संगात् संजायते कामः, कामात् क्रोधोऽभिजायते॥६२॥

2 1 3 5 4 6 7 9
ध्यायतः, विषयान्, पुंसः, सङ्गः, तेषु, उपजायते, सङ्गात्, सञ्जायते,
8 10 11 12
कामः, कामात्, क्रोधः, अभिजायते।

भाषा :– विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है। आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है तथा कामना में (बाधा पड़ने) से क्रोध उत्पन्न होता है।।६२।।

क्रोधाद् भवति सम्मोहः, सम्मोहात् स्मृति विभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धि नाशात् प्रणश्यति।।६३।।

1 3 2 4 5 6
क्रोधात्, भवति, सम्मोहः, सम्मोहात्, स्मृतिविभ्रमः, स्मृतिभ्रंशात्,
7 8 9
बुद्धिनाशः, बुद्धिनाशात्, प्रणश्यति।

भाषा :– क्रोध से अबिवेक उत्पन्न होता है, अविवेक से स्मरण शक्ति भ्रमित हो जाती है। स्मृति के भ्रमित हो जाने पर बुद्धि (ज्ञान शक्ति) का नाश हो जाता है तथा बुद्धि के नाश होने से वह (पुरुष) अपने कल्याण साधन से पतित हो जाता है– ।।६३।।

राग द्वेष वियुक्तै-स्तु, विषया-निन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यै-र्विधेयात्मा, प्रसाद-मधिगच्छति।।६४।।

3 1 6 5 7 4
रागद्वेषवियुक्तैः, तु, विषयान्, इन्द्रियैः, चरन्, आत्मवश्यैः,
2 8 9
विधेयात्मा, प्रसादम्, अधिगच्छति।।६४।।

भाषा :– परन्तु अपने अधीन किये हुए अन्तःकरण वाला (पुरुष) राग-द्वेष रहित, अपने वश में की हुई इन्द्रियों द्वारा, विषयों को भोगता हुआ, अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है।।६४।।

प्रसादे सर्व दुःखानां, हानि-रस्योपजायते।
प्रसन्न चेतसो ह्याशु, बुद्धिः पर्यव-तिष्ठते।।६५।।

1 3 4 2 5 6 9
प्रसादे, सर्वदुःखानाम्, हानिः, अस्य, उपजायते, प्रसन्नचेतसः, हि,
8 7 10
आशु, बुद्धिः, पर्यवतिष्ठते।

भाषा :– और अन्तःकरण के निर्मल होने पर इसके सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है (तथा उस) प्रसन्नचित्त वाले पुरुष की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर परमात्मा में भली प्रकार स्थिर हो जाती है।।६५।।

नास्ति बुद्धि-रयुक्तस्य, न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्ति,- रशान्तस्य कुतः सुखम्।।६६।।

3 4 2 1 8 5 6 7 12 11
न, अस्ति, बुद्धिः, अयुक्तस्य, न, च, अयुक्तस्य, भावना, न, च,
9 10 13 15 14
अभावयतः, शान्तिः, अशान्तस्य, कुतः, सुखम्।

भाषा :– न जीते हुए मन और इन्द्रियों वाले पुरुष में श्रेष्ठ बुद्धि नहीं होती और उस साधना रहित मनुष्य के (अन्तःकरण में) आस्तिक भाव (आत्मचिन्तन) भी नहीं होता है और भावनाहीन मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती और शान्ति रहित मनुष्य को सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? ।।६६।।

इन्द्रियाणां हि चरतां, यन् मनोऽनु विधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां, वायु र्नाव-मिवाम्भसि।।६७।।

7 1 6 8 10 9 11 12 13
इन्द्रियाणाम्, हि, चरताम्, यत्, मनः, अनु, विधीयते, तत्, अस्य,
15 14 3 4 5 2
हरति, प्रज्ञाम्, वायुः, नावम्, इव, अम्भसि।

भाषा :– क्योंकि जल में वायु नाव को जैसे (हर लेता है वैसे

ही विषयों में) विचरती हुई इन्द्रियों के बीच में जिस (इन्द्रिय) के साथ मन रहता है, वह एक ही (इन्द्रिय) इस (अयुक्त) पुरुष की बुद्धि को हर लेती है– ।।६७।।

तस्माद् यस्य महाबाहो, निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रिया-णीन्द्रियार्थे-भ्य,-स्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।६८।।

1 3 2 7 5 4
तस्मात्, यस्य, महाबाहो, निगृहीतानि, सर्वशः, इन्द्रियाणि,
6 8 9 10
इन्द्रियार्थेभ्यः, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता।

भाषा :– इससे हे महाबाहो! जिस पुरुष की इन्द्रियाँ सब प्रकार इन्द्रियों के विषयों से वश में की हुई होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर होती है।।६८।।

या निशा सर्व भूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुनेः।।६९।।

2 3 1 4 6 5 7 9
या, निशा, सर्वभूतानाम्, तस्याम्, जागर्ति, संयमी, यस्याम्, जाग्रति,
8 12 13 10 11
भूतानि, सा, निशा, पश्यतो, मुनेः।

भाषा :– समस्त भूत प्राणियों के लिए जो रात्रि है उसमें योगी पुरुष जागता है। और जिस सांसारिक सुख की क्षणिक प्राप्त्यर्थ सब भूत प्राणी जागते हैं, तत्त्वज्ञ मुनि के लिए वह रात्रि है।।६९।।

आपूर्यमाण-मचल-प्रतिष्ठं,
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद् वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे,
स शान्ति-माप्नोति न काम कामी।।७०।।

2 3 4 5 6 1
आपूर्यमाणम्, अचलप्रतिष्ठम्, समुद्रम्, आपः, प्रविशन्ति, यद्वत्,
7 10 8 11 9 12 13 14 15
तद्वत्, कामाः, यम्, प्रविशन्ति, सर्वे, सः, शान्तिम्, आप्नोति, न,
16
कामकामी।

भाषा :– जैसे परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र की ओर नाना नदियों के जल (उसको चलायमान न करते हुए ही) समा जाते हैं, वैसे ही जिस (स्थिर बुद्धि) पुरुष के प्रति सम्पूर्ण भोग निर्विकार रूप से समा जाते हैं– वह पुरुष परम शांति को प्राप्त होता है।।७०।।

विहाय कामान् यः सर्वान्, पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः, स शान्ति-मधिगच्छति।।७१।।

5 4 1 3 2 9 8 6
विहाय, कामान्, यः, सर्वान्, पुमान्, चरति, निःस्पृहः, निर्ममः,
7 10 11 12
निरहङ्कारः, सः, शान्तिम्, अधिगच्छति।

भाषा :– जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग कर ममता, अहंकार और कामना रहित विचरता है, वह शान्ति को प्राप्त होता है।।७१।।

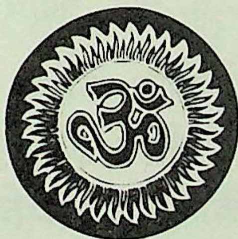
एषा ब्राह्मी-स्थितिः पार्थ, नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्या-मन्तकालेऽपि, ब्रह्म निर्वाण-मृच्छति।।७२।।

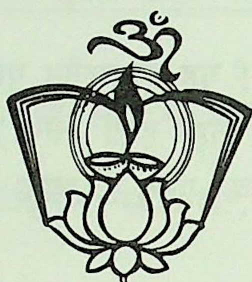
2 3 4 1 7 5 6 8 12
एषा, ब्राह्मी, स्थितिः, पार्थ, न, एनाम्, प्राप्य, विमुह्यति, स्थित्वा,
11 9 10 13 14
अस्याम्, अन्तकाले, अपि, ब्रह्मनिर्वाणम्, ऋच्छति।

भाषा :– हे पार्थ! यह ब्रह्मलीन पुरुष की स्थिति है, इसको प्राप्त होकर वह मोहित नहीं होता (तथा) अन्तकाल में भी इसमें स्थित होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है।।७२।।

ॐ तत्सदितिश्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे
सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु।।२।।

श्लोकाः ७२ गत श्लोकानि ४७ एवमादितः ११९





॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

ज्यायसी चेत् कर्मणस्ते, मता बुद्धि-र्जनार्दन।
तत् किं कर्मणि घोरे मां, नियोजयसि केशव॥१॥

6 2 3 5 7 4 1 8 13
ज्यायसी, चेत्, कर्मणः, ते, मता, बुद्धिः, जनार्दन, तत्, किम्,
12 11 10 14 9
कर्मणि, घोरे, माम्, नियोजयसि, केशव।

भाषा :– हे जनार्दन! यदि कर्म की अपेक्षा आपको ज्ञान श्रेष्ठ मान्य है तो फिर हे केशव! मुझे घोर कर्म में क्यों लगाते हो?॥१॥

व्यामि-श्रेणेव वाक्येन, बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य, येन श्रेयोऽ-हमाप्नुयाम्॥२॥

1 2 3 5 6 7 4 8 9
व्यामिश्रेण, इव, वाक्येन, बुद्धिम्, मोहयसि, इव, मे, तत्, एकम्,
11 10 12 14 13 15
वद, निश्चित्य, येन, श्रेयः, अहम्, आप्नुयाम्।

भाषा :– तथा आप मिले हुए से वचनों से मेरी बुद्धि को मोहित सी कर रहे हैं। (अतः) उस एक बात को निश्चय करके कहिए जिससे मैं कल्याण को प्राप्त होऊँ।।२।।

श्री भगवानुवाच

लोकेऽ-स्मिन् द्विधा निष्ठा, पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञान योगेन सांख्यानां, कर्म योगेन योगिनाम्।।३।।

3 2 4 5 7 8 6 1 10
लोके, अस्मिन्, द्विधा, निष्ठा, पुरा, प्रोक्ता, मया, अनघ, ज्ञानयोगेन,
9 12 11
सांख्यानाम्, कर्मयोगेन, योगिनाम्।

भाषा :– श्री भगवान बोले– हे अनघ (निष्पाप अर्जुन)! इस लोक में दो प्रकार की निष्ठा (साधन की परिपक्व अवस्था) मेरे द्वारा पहले कही गई है। ज्ञानियों की ज्ञान योग से और योगियों की निष्काम कर्मयोग से।।३।।

न कर्मणा-मनारम्भान्, नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च सन्न्य-सनादेव, सिद्धिं समधिगच्छति।।४।।

2 3 4 5 1 6 8 7
न, कर्मणाम्, अनारम्भात्, नैष्कर्म्यम्, पुरुषः, अश्नुते, न, च,
9 10 11 12
सन्न्यसनात्, एव, सिद्धिम्, समधिगच्छति।

भाषा :– मनुष्य न तो कर्मों का आरम्भ किये बिना निष्कर्मता

(योग निष्ठा) को प्राप्त होता है और न कर्मों के केवल त्यागमात्र से सिद्धि (सांख्य निष्ठा) को ही प्राप्त होता है।।४।।

न हि कश्चित् क्षणमपि, जातु तिष्ठत्य-कर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म, सर्वः प्रकृतिजै-र्गुणैः।।५।।

7 1 2 4 5 3 8 6 15
न, हि, कश्चित्, क्षणम्, अपि, जातु, तिष्ठति, अकर्मकृत्, कार्यते,
9 13 14 10 11 12
हि, अवशः, कर्म, सर्वः, प्रकृतिजैः गुणैः।

भाषा :– निःसन्देह कोई भी मनुष्य क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता है क्योंकि सारा मानव समुदाय प्रकृति जनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करता है।।५।।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य, य आस्ते मनसा-स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा, मिथ्याचारः स उच्यते।।६।।

3 4 1 8 6 7 5
कर्मेन्द्रियाणि, संयम्य, यः, आस्ते, मनसा, स्मरन्, इन्द्रियार्थान्,
2 10 9 11
विमूढात्मा, मिथ्याचारः, सः, उच्यते।

भाषा :– जो मूढ़ बुद्धि कर्मेन्द्रियों को रोक कर इन्द्रियों के विषयों को मन से चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी (दम्भी) कहा जाता है।।६।।

यस्त्वि-न्द्रियाणि मनसा, नियम्या-रभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोग,- मसक्तः स विशिष्यते।।७।।

3 1 5 4 6 10 2 8
यः, तु, इन्द्रयाणि, मनसा, नियम्य, आरभते, अर्जुन, कर्मेन्द्रियैः,
9 7 11 12
कर्मयोगम्, असक्तः, सः, विशिष्यते।

भाषा :– और हे अर्जुन! जो मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ कर्मेन्द्रियों से कर्म योग का आचरण करता है, वह श्रेष्ठ है।।७।।

नियतं कुरु कर्म त्वं, कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीर यात्रापि च ते, न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।।८।।

2 4 3 1 7 8 5 6 12
नियतम्, कुरु, कर्म, त्वम्, कर्म, ज्यायः, हि, अकर्मणः, शरीरयात्रा,
13 9 11 14 15 10
अपि, च, ते, न, प्रसिद्ध्येत्, अकर्मणः।

भाषा :– अतः तू शास्त्रोक्त नियत किये हुए स्वधर्मरूप कर्म को कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।।८।।

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र, लोकोऽयं कर्म बन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय, मुक्त संगः समाचर।।९।।

1 2 3 5 4 6 9 10
यज्ञार्थात्, कर्मणः, अन्यत्र, लोकः, अयम्, कर्मबन्धनः, तदर्थम्, कर्म,
7 8 11
कौन्तेय, मुक्तसङ्गः, समाचर।

भाषा :– यज्ञ के निमित्त किये जाने वाले कर्म के सिवाय अन्य कर्म में लगा हुआ ही यह मनुष्य समुदाय कर्मों द्वारा बन्धता है। इसलिए अर्जुन! तू आसक्ति से रहित होकर उस परमेश्वर के निमित्त कर्म का आचरण कर।।९।।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा, पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्व,– मेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक्।।१०।।

3 4 5 2 6 1 7
सहयज्ञाः, प्रजाः, सृष्ट्वा, पुरा, उवाच, प्रजापतिः, अनेन,
8 9 10 12 11
प्रसविष्यध्वम्, एषः, वः, अस्तु, इष्टकामधुक्।

भाषा :– प्रजापति ब्रह्मा ने कल्पादि में यज्ञ सहित प्रजा को रचकर कहा कि इस यज्ञ द्वारा (तुम लोग) वृद्धि को प्राप्त होओ तथा यह यज्ञ तुम लोगों को यथेष्ट कामनाओं को देने वाला होवे।।।१०।।

देवान् भावयता-नेन, ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः, श्रेयः पर-मवा-प्स्यथ।।११।।

2 3 1 4 5 7 6 8 9
देवान्, भावयत, अनेन, ते, देवाः, भावयन्तु, वः, परस्परम्, भावयन्तः,
11 10 . 12
श्रेयः, परम्, अवाप्स्यथ।

भाषा :– तथा तुम लोग–इस (यज्ञ द्वारा) देवताओं को उन्नत करो और वे देवता लोग तुम लोगों को उन्नत करें। इस प्रकार परस्पर उन्नति करते हुए परम कल्याण को प्राप्त होवोगे।।११।।

इष्टान् भोगान् हि वो देवा, दास्यन्ते यज्ञ भाविताः।
तैर्दत्तान-प्रदायैभ्यो, यो भुङ्क्ते-स्तेन एव सः।।१२।।

4 5 12 3 2 6 1 7 8
इष्टान्, भोगान्, हि, वः, देवाः, दास्यन्ते, यज्ञभाविताः, तैः, दत्तान्,
11 10 9 13 16 15 14
अप्रदाय, एभ्यः, यः, भुङ्क्ते, स्तेनः, एव, सः।

भाषा :– तथा यज्ञ द्वारा उन्नत देवता लोग तुम्हारे लिए प्रिय भोगों को देंगे। उनके द्वारा दिये हुए भोगों को जो, इनके लिए बिना दिये ही भोगता है, वह (पुरुष) निश्चय ही चोर है।।१२।।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो, मुच्यन्ते सर्व किल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा, ये पच-न्त्यात्म कारणात्॥१३॥

1 2 4 3 12 9 10
यज्ञशिष्टाशिनः, सन्तः, मुच्यन्ते, सर्वकिल्बिषैः, भुञ्जते, ते, त्वघम्,
6 5 8 7
पापाः, ये, पचन्ति, आत्मकारणात्।

भाषा :– यज्ञ से बचे हुए शेष अन्न को खाने वाले सन्त जन सब पापों से छूट जाते हैं। और जो पापी लोग अपने शरीर के पोषण के लिए ही पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं॥१३॥

अन्नाद् भवन्ति भूतानि, पर्जन्या-दन्न सम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो, यज्ञः कर्म समुद्भवः॥१४॥

2 3 1 5 4 7 8
अन्नात्, भवन्ति, भूतानि, पर्जन्यात्, अन्नसम्भवः, यज्ञात्, भवति,
6 9 10
पर्जन्यः, यज्ञः, कर्मसमुद्भवः।

भाषा :– सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं और अन्न की उत्पत्ति वर्षा से होती है। वर्षा यज्ञ से होती है तथा यज्ञ कर्मों से उत्पन्न होता है॥१४॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि, ब्रह्माक्षर समुद्भवम्।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म, नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥१५॥

1 2 3 4 5 6 7
कर्म, ब्रह्मोद्भवम्, विद्धि, ब्रह्म, अक्षरसमुद्भवम्, तस्मात्, सर्वगतम्,
8 9 10 11
ब्रह्म, नित्यम्, यज्ञे, प्रतिष्ठितम्।

भाषा :– तथा उस कर्म को (तू) वेद से उत्पन्न हुआ जान (और) वेद अविनाशी (परमात्मा) से उत्पन्न हुआ है। इससे सर्वव्यापी ब्रह्म सदा ही यज्ञ में प्रतिष्ठित है।।१५।।

एवं प्रवर्तितं चक्रं, नानु-वर्तयतीह यः।
अघायु-रिन्द्रिया-रामो, मोघं पार्थ स जीवति।।१६।।

4 5 6 7 8 3 2 11
एवम्, प्रवर्तितम्, चक्रम्, न, अनुवर्तयति, इह, यः, अघायुः,
10 12 1 9 13
इन्द्रियारामः, मोघम्, पार्थ, सः, जीवति।

भाषा :– हे अर्जुन! जो पुरुष इस लोक में इस प्रकार चलाये हुए सृष्टिचक्रानुसार नहीं चलता है अर्थात् शास्त्रानुसार कर्म पथ पर नहीं चलता है, वह इन्द्रियों के सुख को भोगने वाला पापायु (पुरुष) व्यर्थ जीता है।।१६।।

यस्त्वात्म-रतिरेव स्या,- दात्म तृप्तश्च मानवः।
आत्म-न्येव च संतुष्ट,- स्तस्य कार्यं न विद्यते।।१७।।

2 1 4 5 12 7 6 3 9
यः, तु, आत्मरतिः, एव, स्यात्, आत्मतृप्तः, च, मानवः, आत्मनि,
10 8 11 13 14 15 16
एव, च, संतुष्टः, तस्य, कार्यम्, न, विद्यते।

भाषा :– परन्तु जो मनुष्य आत्मा ही में प्रीति वाला और आत्मा ही में तृप्त तथा आत्मा में ही सन्तुष्ट हो, उसके लिए कोई कर्तव्य नहीं है।।१७।।

नैव तस्य कृते-नार्थो, नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्व भूतेषु, कश्चि-दर्थ व्यपाश्रयः।।१८।।

6 4 2 3 5 9 7 1 8 15 10
न, एव, तस्य, कृतेन, अर्थः, न, अकृतेन, इह, कश्चन, न, च,
11 12 13 14
अस्य, सर्वभूतेषु, कश्चित्, अर्थव्यपाश्रयः।

भाषा :– इस विश्व में उस पुरुष का कर्म करने से भी कोई प्रयोजन नहीं रहता है और न करने से भी कोई (प्रयोजन) नहीं है; तथा इसका सम्पूर्ण भूतों में कुछ भी स्वार्थ सम्बन्ध नहीं रहता है।।१८।।

तस्मा-दसक्तः सततं, कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म, पर-माप्नोति पूरुषः।।१९।।

1 2 3 4 5 6 8 7
तस्मात्, असक्तः, सततम्, कार्यम्, कर्म, समाचर, असक्तः, हि,
11 10 12 13 9
आचरन्, कर्म, परम्, आप्नोति, पूरुषः।

भाषा :– इससे (तू) अनासक्त हुआ निरन्तर कर्त्तव्यकर्म का सम्यक् आचरण कर। क्योंकि अनासक्त पुरुष कर्म करता हुआ परमात्मा को प्राप्त होता है।।१९।।

कर्मणैव हि संसिद्धि,- मास्थिता जनकादयः।
लोक संग्रह-मेवापि, सम्पश्यन् कर्तु-मर्हसि।।२०।।

2 3 6 4 5 1 7
कर्मणा, एव, हि, संसिद्धिम्, आस्थिताः, जनकादयः, लोकसंग्रहम्,
11 9 8 10 12
एव, अपि, संपश्यन्, कर्तुम्, अर्हसि।

भाषा :– ऐसे ही जनक आदि ज्ञानी जन, अनासक्त कर्म द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए। इसलिए तथा लोक संग्रह को देखते हुए भी, तुम कर्म करने में ही योग्य हो।।२०।।

यद् यदा-चरति श्रेष्ठ,- स्तत् तदेवेतरो जनः।
स यत् प्रमाणं कुरुते, लोक-स्तदनु वर्तते॥२१॥

2 3 4 1 7 8 9 5 6 10 11
यत्, यत्, आचरति, श्रेष्ठः, तत्, तत्, एव, इतरः, जनः, सः, यत्,
12 13 14 15 16
प्रमाणम्, कुरुते, लोकः, तत्, अनुवर्तते।

भाषा :– कारण कि श्रेष्ठ जन जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी उसके अनुसार ही व्यवहार करते हैं। वह जो कुछ भी प्रमाण कर देता है, लोग भी तदनुसार व्यवहार करने लग जाते हैं॥२१॥

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं, त्रिषु लोकेषु किंचन।
नान-वाप्त-मवाप्तव्यं, वर्त एव च कर्मणि॥२२॥

7 2 1 8 6 3 4 5 12 11
न, मे, पार्थ, अस्ति, कर्त्तव्यम्, त्रिषु, लोकेषु, किंचन, न, अनवाप्तम्,
10 15 14 9 13
अवाप्तव्यम्, वर्ते, एव, च, कर्मणि।

भाषा :– हे पार्थ! यद्यपि मुझे इन तीनों लोकों में कुछ भी कर्त्तव्य-कर्म नहीं है तथा कुछ प्राप्त होने योग्य वस्तु अप्राप्य नहीं है, तो भी मैं कर्मरत हूँ॥२२॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं, जातु कर्मण्य-तन्द्रितः।
मम वर्त्मानु-वर्तन्ते, मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥२३॥

2 1 3 7 8 5 6 4 12 13
यदि, हि, अहम्, न, वर्तेयम्, जातु, कर्मणि, अतन्द्रितः, मम, वर्त्म,
14 11 9 10
अनुवर्तन्ते, मनुष्याः, पार्थ, सर्वशः।

भाषा :– क्योंकि यदि मैं सावधान हुआ कदाचित् कर्मों में

प्रवृत्त न होऊं तो हे अर्जुन! सब प्रकार से मनुष्य मेरे व्यवहार के अनुसार आचरण करेंगे।।२३।।

उत्सीदेयु-रिमे लोका, न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्या,- मुपहन्या-मिमाः प्रजाः।।२४।।

8 6 7 4 5 3 1 2 10 9
उत्सीदेयुः, इमे, लोकाः, न, कुर्याम्, कर्म, चेत्, अहम्, संकरस्य, च,
11 12 15 13 14
कर्ता, स्याम्, उपहन्याम्, इमाः, प्रजाः।

भाषा :– यदि मैं कर्म न करूं तो यह सब लोक भ्रष्ट हो जायें और मैं वर्णसंकर का कारक होऊं तथा इस सारी प्रजा को हनन करूं अर्थात् मारने वाला बनूं।।२४।।

सक्ताः कर्मण्य-विद्वांसो, यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद् विद्वां-स्तथा सक्त,- श्चिकीर्षु-र्लोक संग्रहम्।।२५।।

3 2 4 5 6 1 12 9
सक्ताः, कर्मणि, अविद्वांसः, यथा, कुर्वन्ति, भारत, कुर्यात्, विद्वान्,
7 8 11 10
तथा, असक्तः, चिकीर्षुः, लोकसंग्रहम्।

भाषा :– अतः हे अर्जुन! कर्म में आसक्त हुए अज्ञानी जन जैसे कर्म करते हैं वैसे ही अनासक्त हुआ विद्वान् भी लोक संग्रह करना चाहता हुआ कर्म करे।।२५।।

न बुद्धि भेदं जनये,- दज्ञानां कर्म संगिनाम्।
जोषयेत् सर्व कर्माणि, विद्वान् युक्तः समाचरन्।।२६।।

5 4 6 3 2 10
न, बुद्धिभेदम्, जनयेत्, अज्ञानाम्, कर्मसङ्गिनाम्, जोषयेत्,
8 1 7 9
सर्वकर्माणि, विद्वान्, युक्तः, समाचरन्।

भाषा :– ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि कर्मों में आसक्ति वाले अज्ञानियों की बुद्धि में भेद अर्थात् कर्मों में अश्रद्धा उत्पन्न न करे किन्तु स्वयं परमात्मस्वरूप में स्थित हुआ सब कर्मों को करता हुआ (उनसे भी वैसे ही) करावे।।२६।।

प्रकृतेः क्रियमाणानि, गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकार विमूढात्मा, कर्ता-हमिति मन्यते।।२७।।

3 5 4 2 1 6
प्रकृतेः, क्रियमाणानि, गुणैः, कर्माणि, सर्वशः, अहंकारविमूढ़ात्मा,
8 7 9 10
कर्ता, अहम्, इति, मन्यते।

भाषा :– वास्तव में सभी कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं तो भी अहंकार से मोहित पुरुष 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा मान लेता है।।२७।।

तत्त्ववित् तु महाबाहो, गुण कर्म विभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त, इति मत्वा न सज्जते।।२८।।

4 1 2 3 5 6 7
तत्त्ववित्, तु, महाबाहो, गुणकर्मविभागयोः, गुणाः, गुणेषु, वर्तन्ते,
8 9 10 11
इति, मत्वा, न, सज्जते।

भाषा :– परन्तु हे महाबाहो! गुणविभाग (त्रिगुणात्मक– सत्व, रज, तम, माया के कार्यरूप पांच महाभूत– अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाश तथा मन, बुद्धि, अहंकार और दस ज्ञानेन्द्रियां-कर्मेन्द्रियां तथा रस, रूप, गन्ध, शब्द, स्पर्श विषय इन सब के समुदाय का नाम) और कर्म विभाग (इनकी पारस्परिक चेष्टाओं का नाम) के तत्त्व को जानने वाला ज्ञानयोगी सम्पूर्ण गुण ही गुणों में बरत रहे हैं, ऐसा मानकर उनमें आसक्त नहीं होता है।।२८।।

प्रकृते-र्गुण संमूढाः, सज्जन्ते गुण कर्मसु।
तान-कृत्स्न-विदो मन्दान्, कृत्स्न-विन् न विचालयेत्॥२९॥

1 2 4 3 5 6 7
प्रकृतेः, गुणसंमूढाः, सज्जन्ते, गुणकर्मसु, तान्, अकृत्स्नविदः, मन्दान्,
8 9 10
कृत्स्नवित्, न, विचालयेत्।

भाषा :– प्रकृति के गुणों से मोहित पुरुष गुणों और कर्मों में आसक्त होते हैं। उन अच्छी प्रकार न समझने वाले मूर्खों को पूर्णतया जानने वाला ज्ञानी विचलित न करे॥२९॥

मयि सर्वाणि कर्माणि, सन्नयस्या-ध्यातम चेतसा।
निराशी-र्निर्ममो भूत्वा, युध्यस्व विगत ज्वरः॥३०॥

5 3 4 6 1 2 7
मयि, सर्वाणि, कर्माणि, सन्नयस्य, अध्यातम, चेतसा, निराशीः,
8 9 11 10
निर्ममः, भूत्वा, युध्यस्व, विगतज्वरः।

भाषा :– अतः हे अर्जुन! – ध्यान निष्ठ चित्त से सम्पूर्ण कर्मों को मुझ में अर्पण करके आशा एवं ममता रहित होकर तथा सन्ताप रहित होकर युद्ध कर॥३०॥

ये मे मतमिदं नित्य,- मनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽ-नसूयन्तो, मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥३१॥

1 7 9 8 6 10 3 5
ये, मे, मतम्, इदम्, नित्यम्, अनुतिष्ठन्ति, मानवाः, श्रद्धावन्तः,
4 13 11 2 12
अनसूयन्तः, मुच्यन्ते, ते, अपि, कर्मभिः।

भाषा :– और जो कोई भी मनुष्य दोष बुद्धि रहित तथा

श्रद्धायुक्त हो सदा मेरे इस मत का अनुसरण करते हैं, वे भी सम्पूर्ण कर्मों से छूट जाते हैं।।३१।।

ये त्वेत-दभ्यसूयन्तो, नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञान विमूढां-स्तान्, विद्धि नष्टान-चेतसः।।३२।।

2 1 5 3 8 9 6 7 11
ये, तु, एतत्, अभ्यसूयन्तः, न, अनुतिष्ठन्ति, मे, मतम्, सर्वज्ञानविमूढान्,
10 13 12 4
तान्, विद्धि, नष्टान्, अचेतसः।

भाषा :– और जो दोषदृष्टि वाले मूर्ख लोग इस मेरे मतानुसार नहीं चलते हैं, उन सम्पूर्ण ज्ञानों में भ्रमित चित्त वालों को तू कल्याणपथ से भ्रष्ट हुए जान।।३२।।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः, प्रकृते-र्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि, निग्रहः किं करिष्यति।।३३।।

8 9 6 7 4 5 2 3
सदृशम्, चेष्टते, स्वस्याः, प्रकृतेः, ज्ञानवान्, अपि, प्रकृतिम्, यान्ति,
1 10 11 12
भूतानि, निग्रहः, किम्, करिष्यति।

भाषा :– क्योंकि सभी प्राणी अपने स्वभाव वश कर्म करते हैं। ज्ञानवान् भी अपने स्वभावानुसार चेष्टा करता है। फिर इसमें किसी का हठ क्या करेगा?।।३३।।

इन्द्रिय-स्येन्द्रिय-स्यार्थे, राग द्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयो-र्न वश-मागच्छेत्, तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।३४।।

1 2 3 5 4 6 8 7
इन्द्रियस्य, इन्द्रियस्य, अर्थे, रागद्वेषौ, व्यवस्थितौ, तयोः, न, वशम्,
9 12 10 11 13
आगच्छेत्, तौ, हि, अस्य, परिपन्थिनौ।

भाषा :– अतः मनुष्य को चाहिये कि इन्द्रिय-इन्द्रिय के अर्थ में अर्थात् भोगों में स्थित (जो) राग-द्वेष हैं, उन दोनों के वश में नहीं होवे, क्योंकि इसके वे दोनों ही कल्याणमार्ग में विघ्न डालने वाले महान् शत्रु हैं।।३४।।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः, परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः, पर धर्मो भयावहः।।३५।।

5 4 3 2 1 6 7
श्रेयान्, स्वधर्मः, विगुणः, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्, स्वधर्मे, निधनम्,
8 9 10
श्रेयः, परधर्मः, भयावहः।

भाषा :– अच्छी प्रकार आचरण किये हुए दूसरे के धर्म से अपना धर्म मङ्गलमय है। अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारी है और अन्य का धर्म भयदायक है।।३५।।

अर्जुन उवाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं, पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय, बलादिव नियोजितः।।३६।।

2 10 1 3 12 13 4 8 9
अथ, केन, प्रयुक्तः, अयम्, पापम्, चरति, पूरुषः, अनिच्छन्, अपि,
1 5 7 6
वार्ष्णेय, बलात्, इव, नियोजितः।

भाषा :– इस स्थल पर पुनः अर्जुन ने भगवान् से प्रश्न किया– हे कृष्ण! फिर यह पुरुष बरबस लगाये हुए के समान ही न चाहता हुआ भी किस से प्रेरित हुआ पापाचरण करता है?।।३६।।

श्रीभगवानुवाच

काम एष क्रोध एष, रजोगुण समुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा, विद्ध्येन-मिह वैरिणम्।।३७।।

3 2 4 5 1 6 7
कामः, एषः, क्रोधः, एषः, रजोगुणसमुद्भवः, महाशनः, महापाप्मा,
10 9 8 11
विद्धि, एनम्, इह, वैरिणम्।

भाषा :– प्रत्युत्तर में भगवान् बोले– रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है। यह ही बहुत खाने वाला अर्थात् अग्नि-सदृश भोगों से न तृप्त होने वाला तथा बड़ा पापी है, अतः इस काम को ही वैरी जान।।३७।।

धूमेना-व्रियते वह्नि,- र्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेना-वृतो गर्भ,- स्तथा तेनेद-मावृतम्।।३८।।

2 7 3 1 6 5 4 8 9
धूमेन, आव्रियते, वह्निः, यथा, आदर्शः, मलेन, च, यथा, उल्बेन,
11 10 12 13 14 15
आवृतः, गर्भः, तथा, तेन, इदम्, आवृतम्।

भाषा :– जैसे धुएं से आग और मेल से शीशा ढक जाता है; जैसे जेर से गर्भ ढका हुआ है, वैसे ही उस 'काम' के द्वारा यह (ज्ञान) ढका हुआ है।।३८।।

आवृतं ज्ञान-मेतेन, ज्ञानिनो नित्य वैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय, दुष्पूरेणा-नलेन-च।।३९।।

10 9 3 7 8 6 2
आवृतम्, ज्ञानम्, एतेन, ज्ञानिनः, नित्यवैरिणा, कामरूपेण, कौन्तेय,
5 4 1
दुष्पूरेण, अनलेन, च।

भाषा :– और हे कुन्ती नन्दन! इस अग्नि (सदृश) न पूर्ण होने वाले कामरूप, ज्ञानियों के नित्य बैरी से ज्ञान ढका हुआ है।।३९।।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धि,- रस्याधिष्ठान-मुच्यते।
एतै-र्विमोहय-त्येष, ज्ञान-मावृत्य देहिनम्।।४०।।

1 2 3 4 5 6 8
इन्द्रियाणि, मनः, बुद्धिः, अस्य, अधिष्ठानम्, उच्यते, एतैः,
12 7 9 10 11
विमोहयति, एषः, ज्ञानम्, आवृत्य, देहिनम्।

भाषा :– तथा इन्द्रियां, मन और बुद्धि इसके वासस्थान कहे जाते हैं तथा यह काम इन (मन, बुद्धि, इन्द्रियों) द्वारा ही ज्ञान को ढक कर जीवात्मा को मोहित करता है।।४०।।

तस्मात् त्वमिन्द्रिया-ण्यादौ, नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं, ज्ञान विज्ञान नाशनम्।।४१।।

1 3 5 4 6 2 9 11
तस्मात्, त्वम्, इन्द्रियाणि, आदौ, नियम्य, भरतर्षभ, पाप्मानम्, प्रजहि,
10 8 7
हि, एनम्, ज्ञानविज्ञाननाशनम्।

भाषा :– अतः हे अर्जुन! तू पहले इन्द्रियों को वश में करके ज्ञान-विज्ञान नाशक इस (काम) पापी को निश्चयपूर्वक मार।।४१।।

इन्द्रियाणि पराण्याहु,- रिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धि,- र्यो बुद्धेः परतस्तु सः।।४२।।

1 2 3 4 5 6 8 7 9
इन्द्रियाणि, पराणि, आहुः, इन्द्रियेभ्यः, परम्, मनः, मनसः, तु, परा,
10 12 13 14 11 15
बुद्धिः, यः, बुद्धेः, परतः, तु, सः।

भाषा :– इन्द्रियों को स्थूल शरीर से परे अर्थात् श्रेष्ठ, बलवान् और सूक्ष्म कहते हैं, इन इन्द्रियों से परे मन है और मन से परे बुद्धि तथा जो बुद्धि से अत्यन्त परे है वह आत्मा है।।४२।।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा, संस्तभ्या-त्मान-मात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो, काम रूपं दुरासदम्।।४३।।

1 2 3 4 7 6 5 12
एवम्, बुद्धेः, परम्, बुद्ध्वा, संस्तभ्य, आत्मानम्, आत्मना, जहि,
11 8 10 9
शत्रुम्, महाबाहो, कामरूपम्, दुरासदम्।

भाषा :– इस प्रकार बुद्धि से परे अर्थात् सूक्ष्म तथा सक्षम और श्रेष्ठ अपने आत्मा को जानकर (और) बुद्धि द्वारा मन को वश में करके, हे महाबाहो! (अपनी शक्ति को समझकर) इस दुर्जेय कामरूप शत्रु को मार।।४३।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे
कर्म-योगो नाम तृतीयोऽध्यायः श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

श्लोकाः ४३ गत श्लोकानि ११९ एवमादितः १६२





॥ उों नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं, प्रोक्तवान-हमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह, मनु-रिक्ष्वाकवेऽ-ब्रवीत्॥१॥

2 5 4 6 1 3 7
इमम्, विवस्वते, योगम्, प्रोक्तवान्, अहम्, अव्ययम्, विवस्वान्,
8 9 10 11 12
मनवे, प्राह, मनुः, इक्ष्वाकवे, अब्रवीत्।

भाषा :– तदुपरान्त भगवान् कृष्ण बोले, हे अर्जुन! मैंने इस अविनाशी योग को (कल्पादि में) सूर्यदेव से कहा था, सूर्य ने (अपने पुत्र) मनु से कहा और मनु ने (अपने पुत्र) राजा इक्ष्वाकु के प्रति कहा॥१॥

एवं परम्परा प्राप्त,- मिमं राजर्षयो विदुः।
स काले-नेह महता, योगो नष्टः परंतप।।२।।

1 2 3 4 5 7 10 11 9
एवम्, परम्पराप्राप्तम्, इमम्, राजर्षः, विदुः, सः, कालेन, इह, महता,
8 12 6
योगः, नष्टः, परंतप।

भाषा :– इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इसयोग को राजर्षियों ने जाना, किन्तु हे अर्जुन! यह योग बहुत काल से इस भूलोक से लोप हो गया था।।२।।

स एवायं मया तेऽद्य, योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति, रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।३।।

1 2 3 7 8 6 5 9 4 12
सः, एव, अयम्, मया, ते, अद्य, योगः, प्रोक्तः, पुरातनः, भक्तः,
15 11 14 13 16 19 10 17 18
असि, मे, सखा, च, इति, रहस्यम्, हि, एतत्, उत्तमम्।

भाषा :– वह ही यह पुरातन योग अब मैंने तुझ से कहा क्योंकि तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है तथा यह (योग) बहुत उत्तम और रहस्यमय (अति मर्म का विषय) है।।३।।

अर्जुन उवाच

अपरं भवतो जन्म, परं जन्म विवस्वतः।
कथ-मेतद् विजानीयां, त्वमादौ प्रोक्तवा-निति।।४।।

3 1 2 6 5 4 12 7
अपरम्, भवतः, जन्म, परम्, जन्म, विवस्वतः, कथम्, एतत्,
13 9 8 10 11
विजानीयाम्, त्वाम्, आदौ, प्रोक्तवान्, इति।

भाषा :– भगवान् के उक्त वक्तव्य से शङ्कित हो अर्जुन ने समाधानार्थ निम्न प्रश्न किया– अर्जुन बोले (हे कृष्ण!) आपका जन्म तो अब हुआ (किन्तु) सूर्य का जन्म बहुत पुराना है। अतः इस (योग को) कल्पादि में आप ने कहा था– यह (मैं) कैसे जानूं?।।४।।

श्रीभगवानुवाच

बहूनि मे व्यतीतानि, जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि, न त्वं वेत्थ परंतप।।५।।

5 2 7 6 4 3 1 9 14 15
बहूनि, मे, व्यतीतानि, जन्मानि, तव, च, अर्जुन, तानि, अहम्, वेद,
10 12 11 13 8
सर्वाणि, न, त्वम्, वेत्थ, परंतप।

भाषा :– प्रतयुत्तर में भगवान् कृष्ण बोले– हे अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत से जन्म बीत चुके हैं। हे परंतप! उन सब को तू नहीं जानता है और मैं जानता हूँ।।५।।

अजोऽपि सन्न-व्ययात्मा, भूताना-मीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वा-मधिष्ठाय, सम्भवा-म्यात्म-मायया।।६।।

2 8 3 1 5 6 4 7 10
अजः, अपि, सन्, अव्ययात्मा, भूतानाम्, ईश्वरः, अपि, सन्, प्रकृतिम्,
9 11 13 12
स्वाम्, अधिष्ठाय, संभवामि, आत्म-मायया।

भाषा :– (मैं) अविनाशी-अजन्मा होने पर भी (तथा) सब भूत प्राणियों का ईश्वर होने पर भी अपनी प्रकृति को आधीन करके योग माया से प्रकट होता हूँ।।६।।

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानि-र्भवति भारत।
अभ्युत्थान-मधर्मस्य, तदात्मानं सृजा-म्यहम्।।७।।

2 3 10 4 5 8 1 7
यदा, यदा, हि, धर्मस्य, ग्लानिः, भवति, भारत, अभ्युत्थानम्,
6 9 12 13 11
अधर्मस्य, तदा, आत्मानम्, सृजामि, अहम्।

भाषा :– हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् अवतार लेता हूँ।।७।।

परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्था-पनार्थाय, संभवामि युगे युगे।।८।।

2 1 5 3 4 6
परित्राणाय, साधूनाम्, विनाशाय, च, दुष्कृताम्, धर्मसंस्थापनार्थाय,
9 7 8
संभवामि, युगे, युगे।

भाषा :– सज्जनों का उद्धार करने के लिए अर्थात् रक्षा करने के लिए और दुर्जनों का संहार अर्थात् नाश करने के लिए (तथा) धर्मस्थापन करने के लिए युग-युग में अवतरित होता हूँ।।८।।

जन्म कर्म च मे दिव्य,- मेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म, नैति मामेति सोऽर्जुन।।९।।

3 5 4 2 6 7 8 10 9 13
जन्म, कर्म, च, मे, दिव्यम्, एवम्, यः, वेत्ति, तत्त्वतः, त्यक्त्वा,
12 14 15 16 17 18 19 11 1
देहम्, पुनः, जन्म, न, एति, माम्, एति, सः, अर्जुन।

भाषा :– अर्जन! मेरा जन्म-कर्म दिव्य अर्थात् अलौकिक है, इस प्रकार जो पुरुष तत्त्व से जानता है, वह शरीर त्याग कर फिर जन्म को प्राप्त नहीं होता वरन् मुझे ही प्राप्त होता है।।९।।

वीत राग भय क्रोधा, मन्मया मा-मुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञान तपसा, पूता मद्-भाव-मागताः।।१०।।

वीतरागभयक्रोधाः [1], **मन्मयाः** [2], **माम्** [3], **उपाश्रिताः** [4], **बहवः** [5], **ज्ञानतपसा** [6], **पूताः** [7], **मद्भावम्** [8], **आगताः** [9]।

भाषा :– और पहले भी हे अर्जुन! राग, भय और क्रोध से रहित अनन्यभाव से मेरे में स्थिति वाले मेरे शरण हुए, बहुत से पुरुष ज्ञानरूप तप से पवित्र हुए, मेरे स्वरूप को प्राप्त हो चुके हैं।।१०।।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते, तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानु-वर्तन्ते, मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।११।।

ये [2], **यथा** [3], **माम्** [4], **प्रपद्यन्ते** [5], **तान्** [7], **तथा** [8], **एव** [9], **भजामि** [10], **अहम्** [6], **मम** [13], **वर्त्म** [14], **अनुवर्तन्ते** [15], **मनुष्याः** [11], **पार्थ** [1], **सर्वशः** [12]।

भाषा :– हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जैसे भजते हैं, मैं भी उनका उसी प्रकार स्मरण करता हूँ। क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।।११।।

कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं, यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके, सिद्धि-र्भवति कर्मजा।।१२।।

6 4 5 8 1 7 11 12

कांक्षन्तः, कर्मणाम्, सिद्धिम्, यजन्ते, इह, देवताः, क्षिप्रम्, हि,

2 3 10 13 9

मानुषे, लोके, सिद्धिः, भवति, कर्मजा।

भाषा :– इस मर्त्यलोक में कर्मफलाभिलाषी देवताओं को पूजते हैं। (और) उनके कर्मों से उत्पन्न होने वाली सिद्धि भी शीघ्र ही होती है।।१२।।

चातु-र्वर्ण्यं मया सृष्टं, गुण कर्म विभागशः।
तस्य कर्तार-मपि मां, विद्ध्य-कर्तार-मव्ययम्।।१३।।

2 3 4 1 5 6 7

चातुर्वर्ण्यम्, मया, सृष्टम्, गुणकर्मविभागशः, तस्य, कर्तारम्, अपि,

8 11 10 9

माम्, विद्धि, अकर्तारम्, अव्ययम्।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! – गुण और कर्मों के विभाग से चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) मेरे द्वारा रचे गये हैं। उनके कर्ता को भी, मुझ अविनाशी परमेश्वर को (तू) अकर्ता ही जान।।१३।।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति, न मे कर्मफले-स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति, कर्मभि-र्न स बध्यते।।१४।।

7 5 6 8 4 2 1 3 9 11

न, माम्, कर्माणि, लिम्पन्ति, न, मे, कर्मफले, स्पृहा, इति, माम्,

10 12 14 15 13 16

यः, अभिजानाति, कर्मभिः, न, सः, बध्यते।

भाषा :– क्योंकि कर्मों के फल में मेरी इच्छा नहीं है, इसलिए मुझे कर्म लिप्त नहीं करते। इस प्रकार जो मुझे तत्त्व से जानता है, वह भी कर्मों में नहीं बन्धता है।।१४।।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म, पूर्वै-रपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात् त्वं, पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्॥१५॥

4 5 7 6 1 3 2 15 13 14
एवम्, ज्ञात्वा, कृतम्, कर्म, पूर्वैः, अपि, मुमुक्षुभिः, कुरु, कर्म, एव,
8 9 10 11 12
तस्मात्, त्वम्, पूर्वैः, पूर्वतरम्, कृतम्।

भाषा :– पूर्व काल के मोक्षाभिलाषी पुरुषों ने भी इस प्रकार जान कर ही कर्म किये हैं। इसलिए तू भी पूर्वजों द्वारा सदा से किये जाने वाले कर्म ही कर॥१५॥

किं कर्म किम कर्मेति, कवयोऽ प्यत्र मोहिताः।
तत् ते कर्म प्रवक्ष्यामि, यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽ-शुभात्॥१६॥

2 1 4 3 5 7 8 6 9 10
किम्, कर्म, किम्, अकर्म, इति, कवयः, अपि, अत्र, मोहिताः, तत्,
12 11 13 14 15 17 16
ते, कर्म, प्रवक्ष्यामि, यत्, ज्ञात्वा, मोक्ष्यसे, अशुभात्।

भाषा :– परन्तु कर्म क्या है (और) अकर्म क्या है? ऐसे इस विषय में बुद्धिमान् पुरुष भी मोहित हैं अर्थात् भ्रमित हैं। इसलिए मैं वह कर्मतत्त्व तेरे लिए अच्छी प्रकार कहूँगा, जिसको जानकर तू अशुभ (संसार बन्धन) से छूट जायेगा॥१६॥

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं, बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं, गहना कर्मणो गतिः॥१७॥

1 10 2 3 9 7 8 5
कर्मणः, हि, अपि, बोद्धव्यम्, बोद्धव्यम्, च, विकर्मणः, अकर्मणः,
4 6 13 11 12
च, बोद्धव्यम्, गहना, कर्मणः, गतिः।

भाषा :– कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए और अकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए। विकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए, क्योंकि कर्म गति बड़ी गूढ़ है।।१७।।

कर्मण्यकर्म यः पश्ये,- दकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु, स युक्तः कृत्स्न कर्म कृत्।।१८।।

2 3 1 4 7 5 8 6 9 11
कर्मणि, अकर्म, यः, पश्येत्, अकर्मणि, च, कर्म, यः, सः, बुद्धिमान्,
10 12 13 14
मनुष्येषु, सः, युक्तः, कृत्स्नकर्मकृत्।

भाषा :– जो मनुष्य कर्म में अकर्म देखता है और जो अकर्म में कर्म देखता है, वह मनुष्यों में बुद्धिमान् है तथा वह योगी सब कर्मों को करने वाला है।।१८।।

यस्य सर्वे समारम्भाः, काम संकल्प वर्जिताः।
ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणं, तमाहुः पंडितं बुधाः।।१९।।

1 2 3 4 6
यस्य, सर्वे, समारम्भाः, कामसंकल्पवर्जिताः, ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम्,
5 9 8 7
तम्, आहुः, पंडितम्, बुधाः।

भाषा :– जिसके सब शास्त्रसम्मत कर्म कामना और संकल्प रहित हैं, तथा जिसके समस्त 'कर्म' ज्ञान की अग्नि द्वारा भस्म हो गये हैं, उस पुरुष को ज्ञानी जन भी पण्डित कहते हैं।।१९।।

त्यक्त्वा कर्मफला सङ्गं, नित्य तृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभि-प्रवृत्तोऽपि, नैव किंचित् करोति सः।।२०।।

2 1 4 3 5 6
त्यक्त्वा, कर्मफलासङ्गम्, नृत्यतृप्तः, निराश्रयः, कर्मणि, अभिप्रवृत्तः,
7 11 10 9 12 8
अपि, न, एव, किंचित्, करोति, सः।

भाषा :– जो मनुष्य कर्म फल में आसक्ति का त्याग करके सांसारिक आश्रय रहित हो गया है तथा परमानन्द में सदा तृप्त है; वह कर्मों में अच्छी प्रकार बरतता हुआ भी कुछ भी नहीं करता है।।२०।।

निराशी-र्यत-चित्तात्मा, त्यक्त सर्व परिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म, कुर्वन् नाप्नोति किल्बिषम्।।२१।।

3 1 2 5 4 6
निराशीः, यतचित्तात्मा, त्यक्तसर्वपरिग्रहः, शारीरम्, केवलम्, कर्म,
7 9 10 8
कुर्वन्, न, आप्नोति, किल्बिषम्।

भाषा :– जिसका अन्तःकरण और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है तथा जिसने सम्पूर्ण भोगों का परित्याग किया हुआ है– ऐसा आशा रहित पुरुष केवल शरीर सम्बन्धी कर्म करता हुआ भी पाप का भागी नहीं बनता।।२१।।

यदृच्छा लाभ संतुष्टो, द्वन्द्वा-तीतो विमत्सरः।
समः सिद्धाव-सिद्धौ च, कृत्वापि न निबध्यते।।२२।।

1 2 3 7 4
यदृच्छालाभसंतुष्टः, द्वंद्वातीतः, विमत्सरः, समः, सिद्धौ,
6 5 8 9 10 11
असिद्धौ, च, कृत्वा, अपि, न, निबध्यते।

भाषा :– जो बिना इच्छा के स्वतः प्राप्त हुए पदार्थ में सदा संतुष्ट रहता है, जो सुख-दुःखादि द्वन्द्वों से परे है, ईर्ष्या-द्वेष रहित

है, ऐसा सिद्धि असिद्धि में समभाव रखने वाला पुरुष, कर्मों को करते हुए भी नहीं बन्धता है।।२२।।

गत सङ्गस्य मुक्तस्य, ज्ञाना-वस्थित चेतसः।
यज्ञाया चरतः कर्म, समग्रं प्रविलीयते।।२३।।

1 5 2 3 4 7
गतसङ्गस्य, मुक्तस्य, ज्ञानावस्थितचेतसः, यज्ञाय, आचरतः, कर्म,
6 8
समग्रम्, प्रविलीयते।

भाषा :– आसक्तिरहित, ज्ञान में स्थित हुए चित्त वाले, यज्ञ के लिए आचरण करते हुए मुक्त पुरुष के समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं।।२३।।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महवि,- र्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं, ब्रह्म कर्म समाधिना।।२४।।

2 1 4 3 5 6 7 11
ब्रह्म, अर्पणम्, ब्रह्म, हविः, ब्रह्माग्नौ, ब्रह्मणा, हुतम्, ब्रह्म,
12 9 10 8
एव, तेन, गन्तव्यम्, ब्रह्मकर्मसमाधिना।

भाषा :– अर्पण भी ब्रह्म है, हवन द्रव्य भी ब्रह्म है, ब्रह्मरूप अग्नि में ब्रह्मरूप यज्ञ कर्ता के द्वारा जो हवन हुआ है, वह भी ब्रह्म ही है। अतः ब्रह्म कर्म में समाधिस्थ हुए उस पुरुष द्वारा प्राप्त किये जाने वाला फल भी ब्रह्म है।।२४।।

दैव-मेवापरे यज्ञं, योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं, यज्ञेनैवोप-जुह्वति।।२५।।

3 5 1 4 2 6 8 7 11
दैवम्, एव, अपरे, यज्ञम्, योगिनः, पर्युपासते, ब्रह्माग्नौ, अपरे, यज्ञम्,
9 10 12
यज्ञेन, एव, उपजुह्वति।

भाषा :– दूसरे योगीजन देवताओं के पूजन रूप यज्ञ को ही अच्छी प्रकार करते हैं और अन्य योगीजन परमात्मरूप अग्नि में यज्ञ के द्वारा ही यज्ञ को होम करते हैं।।२५।।

श्रोत्रादी-नीन्द्रियाण्यन्ये, संयमाग्निषु जुह्वति।

शब्दादीन् विषयानन्य, इन्द्रियाग्निषु जुह्वति।।२६।।

2 3 1 4 5 7

श्रोत्रादीनि, इन्द्रियाणि, अन्ये, संयमाग्निषु, जुह्वति, शब्दादीन्,

8 6 9 10

विषयान्, अन्ये, इन्द्रियाग्निषु, जुह्वति।

भाषा :– अन्य योगीजन श्रोत्रादिक सम्पूर्ण इन्द्रियों को संयम रूप अग्नि में होम करते हैं तथा अन्य योगीजन शब्दादिक विषयों को इन्द्रिय रूप अग्नि में होम करते हैं।।२६।।

सर्वाणीन्द्रिय-कर्माणि, प्राण कर्माणि चापरे।

आत्म संयम योगाग्नौ, जुह्वति ज्ञान दीपिते।।२७।।

2 3 5 4 1 7

सर्वाणि, इन्द्रियकर्माणि, प्राणकर्माणि, च, अपरे, आत्मसंयमयोगाग्नौ,

8 6

जुह्वति, ज्ञानदीपिते।

भाषा :– अन्य योगी जन समस्त इन्द्रियक्रियाओं को तथा प्राणों के व्यापार को ज्ञान से प्रकाशित आत्म-संयम् योग रूप अग्नि में होम करते हैं।।२७।।

द्रव्य यज्ञा-स्तपो यज्ञा, योग यज्ञा-स्तथापरे।

स्वाध्याय ज्ञान यज्ञाश्च, यतयः संशितव्रताः।।२८।।

2 4 5 3 1 9

द्रव्ययज्ञाः, तपोयज्ञाः, योगयज्ञाः, तथा, अपरे, स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः,

6 8 7

च, यतयः, संशितव्रताः।

भाषा :– कई महापुरुष ईश्वरार्पण बुद्धि से परोपकारार्थ द्रव्यमय यज्ञ करने वाले हैं, कितने ही तपस्या रूप यज्ञ तथा कितने ही अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतों से युक्त यत्नशील महात्मा, अध्ययन–अध्यापन रूप ज्ञान यज्ञकर्ता हैं।।२८।।

अपाने जुह्वति प्राणं, प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापान गती रुद्ध्वा, प्राणायाम परायणाः।।२९।।

1 3 2 5 6 4 7 8
अपाने, जुह्वति, प्राणम्, प्राणे, अपानम्, तथा, अपरे, प्राणापानगती,
9 10
रुद्ध्वा, प्राणायामपरायणाः।

भाषा :– और अन्य योगीजन– अपान वायु में प्राण वायु को होम करते हैं, वैसे ही कोई प्राण वायु में अपान वायु को होम करते हैं। अन्य योगीजन प्राण वायु तथा अपान वायु की गति रोककर प्राणायाम के परायण होते हैं।।२९।।

अपरे नियताहाराः, प्राणान् प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो, यज्ञ क्षपित कल्मषाः।।३०।।

1 2 3 4 5 8 9 7
अपरे, नियताहाराः, प्राणान्, प्राणेषु, जुह्वति, सर्वे, अपि, एते,
10 6
यज्ञविदः, यज्ञक्षपितकल्मषाः।

भाषा :– तथा दूसरे नियमित आहार करने वाले योगीजन प्राणों को प्राणों में होम करते हैं। इस प्रकार यज्ञों द्वारा पापों का नाश करने वाले यह सब ही यज्ञों को जानने वाले हैं।।३०।।

यज्ञ-शिष्टामृत-भुजो, यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्य-यज्ञस्य, कुतोऽन्यः कुरुसत्तम॥३१॥

2 5 4 3 9 7 8 10
यज्ञशिष्टामृतभुजः, यान्ति, ब्रह्म, सनातनम्, न, अयम्, लोकः, अस्ति,
6 12 11 1
अयज्ञस्य, कुतः, अन्यः, कुरुसत्तम।

भाषा :– हे कुरुश्रेष्ठ! यज्ञ से बचे हुए अमृत का भोग करने वाले, सनातन परब्रह्म को प्राप्त होते हैं। तथा यज्ञ न करने वाले को यह मर्त्यलोक भी सुखदायक नहीं, फिर भला परलोक कैसे सुखदायक सिद्ध होगा?॥३१॥

एवं बहुविधा यज्ञा, वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान् विद्धि तान् सर्वा,- नेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे॥३२॥

1 2 3 6 4 5 9 10
एवम्, बहुविधाः, यज्ञाः, विततः, ब्रह्मणः, मुखे, कर्मजान्, विद्धि,
7 8 11 12 13
तान्, सर्वान्, एवम्, ज्ञात्वा, विमोक्ष्यसे।

भाषा :- ऐसे ही बहुत प्रकार के यज्ञ वेदवाणी में विस्तार से कहे गये हैं। उन सब को तू शरीर, मन और इन्द्रियों की क्रिया द्वारा ही उत्पन्न होने वाले जान, इस प्रकार तत्त्व से जानकर निष्काम कर्म योग द्वारा तू संसार बन्धन से मुक्त हो जायेगा॥३२॥

श्रेयान् द्रव्यमयाद् यज्ञा,- ज्ज्ञान यज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ, ज्ञाने परि-समाप्यते॥३३॥

5 2 3 4 1 7 9 8
श्रेयान्, द्रव्यमयात्, यज्ञात्, ज्ञानयज्ञः, परन्तप, सर्वम्, कर्म, अखिलम्,
6 10 11
पार्थ, ज्ञाने, परिसमाप्यते।

भाषा :- हे परंतप! द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ परमश्रेठ है कारण कि समस्त कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं।।३३।।

तद् विद्धि प्रणिपातेन, परि प्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं, ज्ञानिन-स्तत्त्व दर्शिनः।।३४।।

4 5 1 3 2 10 6
तत्, विद्धि, प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन, सेवया, उपदेक्ष्यन्ति, ते,
9 8 7
ज्ञानम्, ज्ञानिनः, तत्त्वदर्शिनः।

भाषा :- उस ज्ञान को तत्त्व को जानने वाले ज्ञानीजन से, भली प्रकार दण्डवत् प्रणाम तथा सेवा और निष्कपट भाव से किये हुए प्रश्न द्वारा, जान। वे तत्त्वदर्शी ज्ञानीजन तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेंगे।।३४।।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोह,- मेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण, द्रक्ष्यस्या-त्मन्यथो मयि।।३५।।

1 2 6 3 5 4 7 8 9
यत्, ज्ञात्वा, न, पुनः, मोहम्, एवम्, यास्यसि, पाण्डव, येन,
12 11 13 10 14 15
भूतानि, अशेषेण, द्रक्ष्यसि, आत्मनि, अथो, मयि।

भाषा :- जिसको जान कर तू फिर इस प्रकार मोह को नहीं प्राप्त होगा और हे अर्जुन! जिस ज्ञान के द्वारा तू पहले अपने में सम्पूर्ण भूतों को देखेगा और तदुपरान्त मुझ सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा में देखेगा।।३५।।

अपि चेदसि पापेभ्यः, सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञान-प्लवेनैव, वृजिनं सन्तरिष्यसि।।३६।।

4 1 6 3 2 5 9
अपि, चेत्, असि, पापेभ्यः, सर्वेभ्यः, पापकृत्तमः, सर्वम्,
7 8 10 11
ज्ञानप्लवेन, एव, वृजिनम्, सन्तरिष्यसि।

भाषा :– यदि तू सब प्राणियों से भी अधिक पापी है तो भी तू ज्ञानरूप नौका द्वारा निश्चित् रूप से सम्पूर्ण पापों से भली प्रकार तर जायेगा।।३६।।

यथैधांसि समिद्धोग्नि,- र्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि, भस्मसात् कुरुते तथा।।३७।।

2 5 3 4 6 7 1 9
यथा, एधांसि, समिद्धः, अग्निः, भस्मसात्, कुरुते, अर्जुन, ज्ञानाग्निः,
10 11 12 8
सर्वकर्माणि, भस्मसात्, कुरुते, तथा।

भाषा :– हे अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईन्धन को भस्ममय कर देता है वैसे ही ज्ञान रूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्म कर डालता है।।३७।।

न हि ज्ञानेन सदृशं, पवित्र-मिह विद्यते।
तत् स्वयं योग संसिद्धः, काले नात्मनि विन्दति।।३८।।

6 5 2 3 4 1 7 8 10
न, हि, ज्ञानेन, सदृशम्, पवित्रम्, इह, विद्यते, तत्, स्वयम्,
11 9 12 13
योगसंसिद्धः, कालेन, आत्मनि, विन्दति।

भाषा :– इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसन्देह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञान को कितने ही काल से कर्मयोग द्वारा शुद्ध अन्तःकरण हुआ पुरुष अपने आप आत्मा में अनुभव करता है।।३८।।

श्रद्धावाँ-ल्लभते ज्ञानं, तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्ति,- मचिरेणाधि गच्छति।।३९॥

3 5 4 2 1 6 7
श्रद्धावान्, लभते, ज्ञानम्, तत्परः, संयतेन्द्रियः, ज्ञानम्, लब्ध्वा,
9 10 8 11
पराम्, शान्तिम्, अचिरेण, अधिगच्छति।

भाषा :– जितेन्द्रिय, साधन परायण तथा श्रद्धालु मनुष्य ज्ञान को प्राप्त है और ज्ञान प्राप्त कर वह अविलम्ब भगवत् प्राप्तिरूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।।३९।।

अज्ञश्चा-श्रद्दधानश्च, संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो, न सुखं संशयात्मनः।।४०॥

1 2 3 4 5 6 8 11 12
अज्ञः, च, अश्रद्धानः, च, संशयात्मा, विनश्यति, न, अयम्, लोकः,
15 13 14 10 9 7
अस्ति, न, परः, न, सुखम्, संशयात्मनः।

भाषा :– विवेकहीन और श्रद्धारहित तथा शंकालु पुरुष परमार्थ से भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे संशययुक्त मनुष्य के लिए न सुख है, न यह लोक और न ही परलोक है।।४०।।

योग संन्यस्त कर्माणं, ज्ञान संछिन्न संशयम्।
आत्म-वन्तं न कर्माणि, निबध्नन्ति धनंजय।।४१॥

2 3 4 6 5
योगसंन्यस्तकर्माणम्, ज्ञानसंछिन्नसंशयम्, आत्मवन्तम्, न, कर्माणि,
7 1
निबध्नन्ति, धनंजय।

भाषा :– और हे धनंजय! जिसने समत्व बुद्धि रूप योग द्वारा सम्पूर्ण कर्म भगवदर्पण कर दिये तथा ज्ञान द्वारा जिसके सब संशय नष्ट हो गये हैं, ऐसे परमात्म परायण पुरुष को, कर्म नहीं बान्धते हैं।।४१।।

तस्मादज्ञान सम्भूतं, हृत्स्थं ज्ञानासि-नात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योग,- मातिष्ठो-त्तिष्ठ भारत।।४२।।

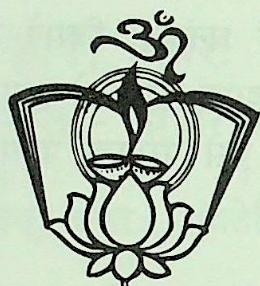
1 5 3 8 6 9 4
तस्मात्, अज्ञानसम्भूतम्, हृत्स्थम्, ज्ञानासिना, आत्मनः, छित्त्वा, एनम्,
7 10 11 12 2
संशयम्, योगम्, आतिष्ठ, उत्तिष्ठ, भारत।

भाषा :– अतः हे भरतवंशी (अर्जुन)! तू हृदय में स्थित इस अज्ञान जनित संशय को ज्ञान रूप तलवार द्वारा, काट कर समत्व रूप कर्मयोग में स्थित हो जा और युद्ध के लिए उठ खड़ा हो जा।।४२।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्-भगवद्-गीता-सूपनिषत्सु ब्रह्विद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे ज्ञानकर्मसंन्यास योगोनाम चतुर्थोऽध्यायः श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु।।४।।

श्लोकाः ४२ गत श्लोकानि १६२ एवमादितः २०४





॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

संन्यासं कर्मणां कृष्ण, पुन-र्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयो-रेकं, तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्॥१॥

संन्नयासम्[3], कर्मणाम्[2], कृष्ण[1], पुनः[5], योगम्[6], च[4], शंससि[7], यत्[10], श्रेयः[12], एतयोः[8], एकम्[9], तत्[13], मे[14], ब्रूहि[15], सुनिश्चितम्[11]।

भाषा :– अर्जुन ने पूछा– हे कृष्ण! आप कर्मों के संन्यास की और फिर कर्म योग की प्रशंसा करते हो। इसलिए इन दोनों में एक जो निश्चित रूप से मङ्गलमय हो, उसको मेरे लिए कहिये? ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

संन्यासः कर्मयोगश्च, निःश्रेयस-करावुभौ।
तयोस्तु कर्म-संन्यासात्, कर्मयोगो विशिष्यते।।२।।

1 3 2 5 4 7 6 8
संन्यासः, कर्मयोगः, च, निःश्रेयसकरौ, उभौ, तयोः, तु, कर्मसंन्यासात्,
9 10
कर्मयोगः, विशिष्यते।

भाषा :– श्री भगवान् बोले– कर्मसंन्यास और कर्मयोग ये दोनों ही परम कल्याणकारी हैं। किन्तु इन दोनों में भी कर्मों के संन्यास से निष्काम कर्मयोग श्रेष्ठ है।।२।।

ज्ञेयः स नित्य संन्यासी, यो न द्वेष्टि न कांक्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो, सुखं बन्धात् प्रमुच्यते।।३।।

10 7 8 9 2 3 4 5 6 12
ज्ञेयः, सः, नित्य, संन्यासी, यः, न, द्वेष्टि, न, कांक्षति, निर्द्वन्द्वः,
11 1 13 14 15
हि, महाबाहो, सुखम्, बन्धात्, प्रमुच्यते।

भाषा :– हे महाबाहो (अर्जुन)! जो पुरुष न किसी से द्वेष रखता है और न किसी की अभिलाषा रखता है, वह कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझने योग्य है क्योंकि राग-द्वेषादि द्वन्द्वों से रहित हुआ पुरुष सुखपूर्वक संसार रूप बन्धन से मुक्त हो जाता है।।३।।

सांख्य योगौ पृथग्बालाः, प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एक-मप्यास्थितः सम्य,- गुभयो-र्विन्दते फलम्।।४।।

1 3 2 4 5 6 7 8
सांख्ययोगौ, पृथक्, बालाः, प्रवदन्ति, न, पण्डिताः, एकम्, अपि,
10 9 11 13 12
आस्थितः, सम्यक्, उभयोः, विन्दते, फलम्।

भाषा :– उपर्युक्त संन्यास और कर्मयोग को मूर्ख लोग अलग-अलग फल वाले कहते हैं न कि पण्डित जन, क्योंकि दोनों में से एक में भी अच्छी प्रकार स्थित हुआ पुरुष दोनों के फलरूप परब्रह्म को प्राप्त होता है।।४।।

यत् सांख्यैः प्राप्यते स्थानं, तद् योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च, यः पश्यति स पश्यति।।५।।

2 1 4 3 7 5 6 8 13
यत्, सांख्यैः, प्राप्यते, स्थानम्, तत्, योगैः, अपि, गम्यते, एकम्,
10 11 12 16 9 14 15 17
सांख्यम्, च, योगम्, च, यः, पश्यति, सः, पश्यति।

भाषा :– ज्ञानयोगियों द्वारा जो परमधाम प्राप्त किया जाता है, कर्मयोग द्वारा भी वही प्राप्य है। अतः जो पुरुष ज्ञान तथा कर्म योग को फलरूप में एक देखता है, वही यथार्थ देखता है।।५।।

सन्न्यासस्तु महाबाहो, दुःख माप्तु-मयोगतः।
योग युक्तो मुनि-र्ब्रह्म, नचिरेणा-धिगच्छति।।६।।

4 1 2 6 5 3 8
सन्न्यासः, तु, महाबाहो, दुःखम्, आप्तुम्, अयोगतः, योगयुक्तः,
7 9 10 11
मुनिः, ब्रह्म, नचिरेण, अधिगच्छति।

भाषा :– परन्तु हे अर्जुन! कर्मयोग बिना संन्यास प्राप्त होना कठिन है और भगवत् स्वरूप को मनन करने वाला कर्मयोगी परब्रह्म को सहज ही प्राप्त हो जाता है।।६।।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा, विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्म-भूतात्मा, कुर्वन्नपि न लिप्यते।।७।।

5 3 1 2 4
योगयुक्तः, विशुद्धात्मा, विजितात्मा, जितेन्द्रियः, सर्वभूतात्मभूतात्मा,
6 7 8 9
कुर्वन्, अपि, न, लिप्यते।

भाषा :– जिसका मन अपने वश में है, जो जितेन्द्रिय एवं शुद्ध अन्तःकरण वाला है और सम्पूर्ण प्राणियों का आत्मरूप परमात्मा ही जिसकी आत्मा है, ऐसा निष्काम कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता है।।७।।

नैव किंचित् करोमीति,
युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ् शृण्वन् स्पृशञ् जिघ्रन्,–
नश्नन् गच्छन्-स्वपञ् श्वसन्।।८।।
प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्,– नुन्मिषन् निमिषन्नपि।
इन्द्रिया–णीन्द्रियार्थेषु, वर्तन्त इति धारयन्।।९।।

26 22 25 27 23 2 24 1 3
न, एव, किंचित्, करोमि, इति, युक्तः, मन्येत, तत्त्ववित्, पश्यन्,
4 5 6 7 8 9 10 11
शृण्वन्, स्पृशन्, जिघ्रन्, अश्नन्, गच्छन्, स्वपन्, श्वसन्, प्रलपन्,
12 13 14 15 16 17 18
विसृजन्, गृह्णन्, उन्मिषन्, निमिषन्, अपि, इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेषु,
19 20 21
वर्तन्ते, इति, धारयन्।

भाषा :– तत्त्व को जानने वाला सांख्य योगी तो देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूंघता हुआ, भोजन करता हुआ, गमन करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ, नेत्र खोलता और बन्द करता हुआ भी, सब

इन्द्रियां अपने-अपने अर्थों में बरत रही हैं, ऐसे समझता हुआ, निःसन्देह ऐसा माने कि मैं कुछ भी नहीं करता हूँ।।८-९।।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि, सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।

लिप्यते न स पापेन, पद्म पत्र-मिवाम्भसा।।१०।।

3 4 2 5 6 7 1 14

ब्रह्मणि, आधाय, कर्माणि, सङ्गम्, त्यक्त्वा, करोति, यः, लिप्यते,

13 8 12 10 11 9

न, सः, पापेन, पद्मपत्रम्, इव, अम्भसा।

भाषा :– जो साधक सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जल से कमल के पत्ते की भान्ति पाप-लिप्त नहीं होता।।१०।।

कायेन मनसा बुद्ध्या, केवलै-रिन्द्रियै-रपि।

योगिनः कर्म कुर्वन्ति, सङ्गं त्यक्त्वात्म-शुद्धये।।११।।

6 4 5 2 3 7 1 11

कायेन, मनसा, बुद्ध्या, केवलैः, इन्द्रियैः, अपि, योगिनः, कर्म,

12 8 9 10

कुर्वन्ति, सङ्गम्, त्यक्त्वा, आत्मशुद्धये।

भाषा :– कर्मयोगी जन केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति त्याग कर अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं।।११।।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा, शान्ति-माप्नोति नैष्ठिकीम्।

अयुक्तः काम कारेण, फले सक्तो निबध्यते।।१२।।

1 2 3 5 6 4 7

युक्तः, कर्मफलम्, त्यक्त्वा, शान्तिम्, आप्नोति, नैष्ठिकीम्, अयुक्तः,

10 8 9 11

कामकारेण, फले, सक्तः, निबध्यते।

भाषा :– निष्काम कर्मयोगी कर्मफल को भगवदर्पण कर भगवत् प्राप्ति रूप शान्ति को प्राप्त होता है तथा सकामी फल में आसक्त हुआ कामना के द्वारा बन्धता है।।१२।।

सर्वकर्माणि मनसा, संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही, नैव कुर्वन् न कारयन्।।१३।।

10 11 12 14 13 1 8 9
सर्वकर्माणि, मनसा, संन्यस्य, आस्ते, सुखम्, वशी, नवद्वारे, पुरे,
2 4 3 5 6 7
देही, न, एव, कुर्वन्, न, कारयन्।

भाषा :– वश में है अन्तःकरण जिसके ऐसा, सांख्य योग को आचरण करने वाला पुरुष निःसन्देह न करता हुआ तथा न करवाता हुआ नवद्वारों वाले शरीर रूप घर में सब कर्मों को मन से त्यागकर सुख पूर्वक परमात्मस्वरूप में स्थिर रहता है।।१३।।

न कर्तृत्वं न कर्माणि, लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्म फल संयोगं, स्वभावस्तु प्रवर्तते।।१४।।

3 4 5 6 2 9 1 7 8
न, कर्तृत्वम्, न, कर्माणि, लोकस्य, सृजति, प्रभुः, न, कर्मफलसंयोगम्,
11 10 12
स्वभावः, तु, प्रवर्तते।

भाषा :– परमात्मा प्राणी जगत् के, न कर्तापन को, न कर्मों को और न ही कर्मों के फल के संयोग को रचता है किन्तु स्वभाव ही बरत रहा है।।१४।।

नादत्ते कस्यचित् पापं, न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञाने-नावृतं ज्ञानं, तेन मुह्यन्ति जन्तवः।।१५।।

2 9 3 4 6 5 8 7 1 10

न, आदत्ते, कस्यचित्, पापम्, न, च, एव, सुकृतम्, विभुः, अज्ञानेन,

12 11 13 15 14

आवृतम्, ज्ञानम्, तेन, मुह्यन्ति, जन्तवः।

भाषा :– सर्वव्यापी परमात्मा, न किसी के पाप कर्म को और न शुभ कर्म को ही ग्रहण करता है किन्तु अज्ञान द्वारा ज्ञान ढका रहने से सब जीव मोहित हो रहे हैं अर्थात् भ्रमजाल में फंस रहे हैं।।१५।।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं, येषां नाशित-मात्मनः।
तेषा-मादित्य-वज्ज्ञानं, प्रकाशयति तत्परम्।।१६।।

6 1 3 5 2 7 4 8

ज्ञानेन, तु, तत्, अज्ञानम्, येषाम्, नाशितम्, आत्मनः, तेषाम्,

10 9 12 11

आदित्यवत्, ज्ञानम्, प्रकाशयति, तत्परम्।

भाषा :– परन्तु जिनका वह अन्तःकरण का अज्ञान, आत्मज्ञान द्वारा नष्ट हो गया है, उनका वह ज्ञान सूर्य के सदृश उस सच्चिदानन्दघन परमात्मा को प्रकाशता है।।१६।।

तद्बुद्धय-स्तदात्मान,- स्तन्निष्ठा-स्तत्परायणाः।
गच्छन्त्य-पुनरावृत्तिं, ज्ञान निर्धूत कल्मषाः।।१७।।

1 2 3 4 7

तद्बुद्धयः, तदात्मानः, तन्निष्ठाः, तत्परायणाः, गच्छन्ति,

6 5

अपुनरावृत्तिम्, ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः।

भाषा :– जिनकी बुद्धि तद्रूप है, मन भी तद्रूप है तथा उस नित्यानन्द परमात्मा में ही जिनकी निरन्तर एकीभाव से स्थिति है, ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञान के द्वारा, पापरहित हुए, अपुनरावृत्ति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होते हैं।।१७।।

विद्या विनय सम्पन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च, पण्डिताः समदर्शिनः॥१८॥

2 3 5 6 7 4 11 8
विद्याविनयसम्पन्ने, ब्राह्मणे, गवि, हस्तिनि, शुनि, च, एव, श्वपाके,
9 1 10
च, पण्डिताः, समदर्शिनः।

भाषा :– ज्ञानी जन, विद्या तथा विनय युक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में भी समभाव से देखने वाले ही होते हैं॥१८॥

इहैव तैर्जितः सर्गो, येषां साम्ये-स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म, तस्माद् ब्रह्मणि ते-स्थिताः॥१९॥

6 7 5 9 8 1 3 4 2 12
इह, एव, तैः, जितः, सर्गः, येषाम्, साम्ये, स्थितम्, मनः, निर्दोषम्,
10 13 11 14 16 15 17
हि, समम्, ब्रह्म, तस्मात्, ब्रह्मणि, ते, स्थिताः।

भाषा :– जिनका मन समत्व भाव में स्थित है उनके द्वारा उस जीवित अवस्था में ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया क्योंकि ब्रह्म निर्दोष और सम है, इस से वे ब्रह्म में ही स्थित हैं॥१९॥

न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य, नोद्विजेत् प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिर बुद्धि-रसम्मूढो, ब्रह्मविद् ब्रह्मणि-स्थितः॥२०॥

3 4 1 2 8 9 7 5 6
न, प्रहृष्येत्, प्रियम्, प्राप्य, न, उद्विजेत्, प्राप्य, च, अप्रियम्,
10 11 12 13 14
स्थिरबुद्धिः, असम्मूढः, ब्रह्मवित्, ब्रह्मणि, स्थितः।

भाषा :– जो पुरुष प्रिय को प्राप्त होकर हर्षित नहीं हो और अप्रिय को प्राप्त होकर व्याकुल नहीं होता, वह स्थिर बुद्धि, संशयरहित, ब्रह्वेता पुरुष, परब्रह्म परमात्मा में एकी भाव से नित्यस्थित है।।२०।।

बाह्य-स्पर्शेष्व-सक्तात्मा, विन्द-त्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोग युक्तात्मा, सुख-मक्षय-मश्नुते।।२१।।

1 2 6 3 4 5 7
बाह्यस्पर्शेषु, असक्तात्मा, विन्दति, आत्मनि, यत्, सुखम्, सः,
8 10 9 11
ब्रह्योगयुक्तात्मा, सुखम्, अक्षयम्, अश्नुते।

भाषा :– तथा सांसारिक भोगों में आसक्ति रहित अन्तःकरण वाला पुरुष, आत्मा में जो भगवद् ध्यान आनन्द है, उसको प्राप्त होता है और वह पुरुष ब्रह्म में एकीभाव से स्थित हुआ, सनातन सुखानुभव करता है।।२१।।

ये हि संस्पर्शजा भोगा, दुःख योनय एव ते।
आद्यन्त-वन्तः कौन्तेय, न तेषु रमते बुधः।।२२।।

1 5 2 3 6 7 4 8
ये, हि, संस्पर्शजाः, भोगाः, दुःखयोनयः, एव, ते, आद्यन्तवन्तः,
9 12 11 13 10
कौन्तेय, न, तेषु, रमते, बुधः।

भाषा :– और ये जो इन्द्रिय एवं विषयों के संयोग से उत्पन्न सब भोग हैं, वे निःसन्देह दुःख के ही कारण हैं तथा आदि-अन्त वाले हैं। अतः हे अर्जुन! विवेकी जन उनमें नहीं रमता है।।२२।।

शक्नोती-हैव यः सोढुं, प्राक् शरीर विमोक्षणात्।
काम क्रोधोद्भवं वेगं, स युक्तः स सुखी नरः।।२३।।

8 11 4 1 7 3 2

शक्नोति, इह, एव, यः, सोढुम्, प्राक्, शरीरविमोक्षणात्,

5 6 9 12 13 14 10

कामक्रोधोद्भवम्, वेगम्, सः, युक्तः, सः, सुखी, नरः।

भाषा :– जो मनुष्य शरीर त्याग से पूर्व ही काम-क्रोध से उत्पन्न वेग को सहन करने में समर्थ है, वह मनुष्य इस लोक में योगी और सुखी है।।२३।।

योऽन्तः-सुखोऽन्तरा-राम,- स्तथान्त-र्ज्योति-रेव सः।

स योगी ब्रह्म निर्वाणं, ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।।२४।।

1 2 4 5 7 3 6 8

यः, अन्तःसुखः, अन्तरारामः, तथा, अन्तर्ज्योतिः, एव, यः, सः,

10 11 9 12

योगी, ब्रह्मनिर्वाणम्, ब्रह्मभूतः, अधिगच्छति।

भाषा :– तथा जो पुरुष निश्चित् रूप से अन्तरात्मा में ही सुख वाला है, आत्म शान्ति वाला तथा आत्मज्ञानी है, वह परमात्मास्वरूप हुआ योगी शान्त ब्रह्म को प्राप्त होता है।।२४।।

लभन्ते ब्रह्म निर्वाण,- मृषयः क्षीण कल्मषाः।

छिन्न द्वैधा यतात्मानः, सर्वभूत हिते रताः।।२५।।

8 7 6 1 2

लभन्ते, ब्रह्मनिर्वाणम्, ऋषयः, क्षीणकल्मषाः, छिन्नद्वैधाः,

5 3 4

यतात्मानः, सर्वभूतहिते, रताः।

भाषा :– निष्पाप, द्विधारहित, सब भूत प्राणियों के हित में संलग्न, भगवद्-ध्यान में एकाग्रचित् हुए– ऐसे ऋषि लोग, शान्त परब्रह्म को प्राप्त होते हैं।।२५।।

काम क्रोध वियुक्तानां, यतीनां यत चेतसाम्।
अभितो ब्रह्म निर्वाणं, वर्तते विदितात्मनाम्।।२६।।

1 4 2 5
कामक्रोधवियुक्तानाम्, यतीनाम्, यतचेतसाम्, अभितः,
6 7 3
ब्रह्मनिर्वाणम्, वर्तते, विदितात्मनाम्।

भाषा :– तथा काम क्रोध रहित, मनस्वी, आत्मज्ञानी, ज्ञानी पुरुषों के लिए, सब ओर से, परब्रह्म परमात्मा ही प्राप्त होता है।।२६।।

स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यां,- श्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा, नासाभ्यन्तर चारिणौ।।२७।।

यतेन्द्रिय मनो बुद्धि,- र्मुनिर्मोक्ष परायणः।
विगतेच्छा भय क्रोधो, यः सदा मुक्त एव सः।।२८।।

2 5 3 1 7 6 4 9 8
स्पर्शान्, कृत्वा, बहिः, बाह्यान्, चक्षुः, च, एव, अन्तरे, भ्रुवोः,
11 12 13 10 14
प्राणापानौ, समौ, कृत्वा, नासाभ्यन्तरचारिणौ, यतेन्द्रियमनोबुद्धिः,
17 16 18 19 15 21 22
मुनिः, मोक्षपरायणः, विगत्, इच्छाभयक्रोधः, यः, सदा, मुक्तः,
23 20
एव, सः।

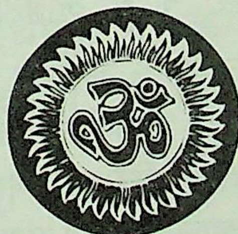
भाषा :– बाहर के विषय भोगों को बाहर ही त्याग कर, नेत्रों को भृकुटी के मध्य स्थिर करके, नासिका में विचरने वाले प्राण तथा अपान वायु को सम करके, इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि को वश में करके, जो मोक्षाभिलाषी मुनि– इच्छा, भय तथा क्रोध से रहित है, वह सदैव मुक्त है।।२७-२८।।

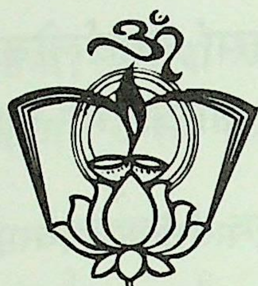
भोक्तारं यज्ञ तपसां, सर्वलोक महेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां, ज्ञात्वा मां शान्ति-मृच्छति॥२९॥

3 2 4 6 5
भोक्तारम्, यज्ञतपसाम्, सर्वलोकमहेश्वरम्, सुहृदम्, सर्वभूतानाम्,
7 1 8 9
ज्ञात्वा, माम्, शान्तिम्, ऋच्छति।

भाषा :– मेरा भक्त, मुझ को सब यज्ञ और तपों को भोगने वाला, समस्त लोकों के ईश्वरों का भी ईश्वर तथा समस्त भूत प्राणियों का निःस्वार्थ प्रेमी, ऐसा तत्त्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है॥२९॥

ओं तत्सदिति श्रीमद्भगवद् गीता-
सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे
कर्म-संन्यास योगो नाम पञ्चमोऽध्यायः श्रीकृष्णार्पणमस्तु॥५॥
श्लोकाः २९ गतश्लोकानि २०४ एवमादितः २३३





॥ ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

अनाश्रितः कर्म फलं, कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च, न निरग्नि-र्न चाक्रियः॥१॥

3 2 4 5 6 1 7 8
अनाश्रितः, कर्मफलम्, कार्यम्, कर्म, करोति, यः, सः, संन्यासी,
9 10 11 13 12 16 14 15
च, योगी, च, न, निरग्निः, न, च, अक्रियः।

भाषा :– श्रीभगवान् बोले– जो पुरुष कर्म के फल का आश्रय न लेकर (निष्काम भाव से) करने योग्य कर्म करता है,वह संन्यासी और योगी है। परञ्च केवल अग्नि का त्याग करने वाला योगी नहीं तथा केवल क्रियाओं को त्यागने वाला भी संन्यासी या योगी नहीं है॥१॥

यं संन्यास-मिति प्राहु,- र्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसंन्यस्त संकल्पो, योगी भवति कश्चन॥२॥

2 3 4 5 7 6 8 1 13 9
यम्, संन्यासम्, इति, प्राहु:, योगम्, तम्, विद्धि, पाण्डव, न, हि,
10 12 14 11
असंन्यस्तसंकल्प:, योगी, भवति, कश्चन।

भाषा :– अत: हे अर्जुन! जिसको संन्यास, ऐसा कहते हैं उसी को तू योग जान, क्योंकि संकल्पों का त्याग न करने वाला, कोई भी पुरुष योगी नहीं होता॥२॥

आरुरुक्षो-र्मुने-र्योगं, कर्म कारण-मुच्यते।
योगा-रूढस्य तस्यैव, शम: कारण-मुच्यते॥३॥

2 3 1 4 5 6 8 7
आरुरुक्षो:, मुने:, योगम्, कर्म, कारणम्, उच्यते, योगारूढस्य, तस्य,
10 9 11 12
एव, शम: कारणम्, उच्यते।

भाषा :– योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले मननशील (मुनि) के लिए, योग की प्राप्ति में, निष्काम कर्म करना ही कारण कहा है और फिर योगारूढ़ हो जाने पर, उसके लिए जो सर्व संकल्पों का अभाव है, वह ही कल्याण में हेतु कहा जाता है॥३॥

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु, न कर्म-स्वनु-षज्जते।
सर्व संकल्प संन्यासी, योगारूढ-स्तदोच्यते॥४॥

1 7 2 3 5 6 4 9
यदा, हि, न, इन्द्रियार्थेषु, न, कर्मसु, अनुषज्जते, सर्वसंकल्पसंन्यासी,
10 8 11
योगारूढ:, तदा, उच्यते।

भाषा :– जिस काल में, न तो इन्द्रियों के भोगों में और न कर्मों में ही आसक्त होता है, उस काल में सर्वसंकल्प त्यागी मनुष्य, योगारूढ़ कहा जाता है।।४।।

उद्धरे-दात्मना-त्मानं, नात्मान-मवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु,- रात्मैव रिपुरात्मनः।।५।।

3 1 2 5 4 6 8
उद्धरेत्, आत्मना, आत्मानम्, न, आत्मानम्, अवसादयेत्, आत्मा,
9 7 10 11 12 13 15 14
एव, हि, आत्मनः, बन्धुः, आत्मा, एव, रिपुः, आत्मनः।

भाषा :– अपने द्वारा अपना उद्धार करे और अपने को अधोगति में न डाले; क्यों कि यह मनुष्य आप ही अपना मित्र और आप ही अपना शत्रु है।।५।।

बन्धु-रात्मा-त्मन-स्तस्य, येना-त्मैवा-त्मना जितः।
अना-त्मनस्तु शत्रुत्वे, वर्तेता-त्मैव शत्रुवत्।।६।।

5 3 2 1 6 8 4 7 9
बन्धुः, आत्मा, आत्मनः, तस्य, येन, आत्मा, एव, आत्मना, जितः,
11 10 15 16 12 13 14
अनात्मनः, तु, शत्रुत्वे, वर्तेत, आत्मा, एव, शत्रुवत्।

भाषा :– उस जीवात्मा का तो वह आप ही मित्र है, जिस जीवात्मा द्वारा मन तथा इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है। जिसके द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है, उसका वह आप ही शत्रु के सदृश शत्रुता में बर्तता है।।६।।

जितात्मनः प्रशान्तस्य, परमात्मा समाहितः।
शीतोष्ण सुख दुःखेषु, तथा मानाप-मानयोः।।७।।

5 4 6 7 1

जितात्मनः, प्रशान्तस्य, परमात्मा, समाहितः, शीतोष्णसुखदुःखेषु,

2 3

तथा, मानापमानयोः।

भाषा :– सर्दी-गर्मी, सुख़-दुःख़ तथा मान-अपमान में जिसके अन्तःकरण की वृत्तियां भली भान्ति शान्त हैं, ऐसे स्वाधीन आत्मा वाले पुरुष के ज्ञान में (सच्चिदानन्दघ्न) परमात्मा सम्यक् प्रकार से स्थित है।।७।।

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा, कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी, सम लोष्टाश्म काञ्चनः।।८।।

1 2 3 6 7 8

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा, कूटस्थः, विजितेन्द्रियः, युक्त, इति, उच्यते,

5 4

योगी, समलोष्टाश्मकाञ्चनः।

भाषा :– जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है, जिसकी स्थिति निर्विकार है, जो जितेन्द्रिय है तथा जिसके लिए मिट्टी, पत्थर और सोना समान हैं, वह योगी भगवत्प्राप्त है, ऐसा कहा जाता है।।८।।

सुहृन् मित्रा-र्युदासीन, मध्यस्थ द्वेष्य बन्धुषु।
साधु-ष्वपि च पापेषु, सम बुद्धि-र्विशिष्यते।।९।।

1 2 3 4 5 6 7 8 11

सुहृत्, मित्र, अरि, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य, बन्धुषु, साधुषु, अपि,

9 10 12 13

च, पापेषु, समबुद्धिः, विशिष्यते।

भाषा :– और जो मनुष्य सुहृद् (सब का हित करने वाला), मित्र, शत्रु, उदासीन (निष्पक्ष), मध्यस्थ (दोनों और भलाई चाहने वाला), द्वेषी (ईर्ष्या रखने वाला) और बन्धुगणों में तथा सज्जनों

और पापियों में भी समदृष्टि किंवा समभाव वाला है वह अति श्रेष्ठ है।।९।।

योगी युञ्जीत सतत,- मात्मानं रहसि-स्थितः।
एकाकी यत चित्तात्मा, निराशीर-परिग्रहः।।१०।।

योगी, युञ्जीत, सततम्, आत्मानम्, रहसि, स्थितः, एकाकी, यतचित्तात्मा, निराशीः, अपरिग्रहः।

भाषा :– अतः उचित है– मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में रखने वाला, आशारहित और संग्रह रहित योगी, अकेला ही एकान्त स्थान में स्थित होकर, आत्मा को निरन्तर परमात्मा के ध्यान में लगावे।।१०।।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य,- स्थिर-मासन-मात्मनः।
नात्यु-च्छ्रितं नाति नीचं, चैला-जिन कुशोत्तरम्।।११।।

शुचौ, देशे, प्रतिष्ठाप्य, स्थिरम्, आसनम्, आत्मनः, न, अत्युच्छ्रितम्, न, अतिनीचम्, चैलाजिनकुशोत्तरम्।

भाषा :– शुद्ध भूमि में उपरोपरि कुशा, अजिन (मृगछाला) और चैल (वस्त्र) जिसके ऐसे, अपने आसन को न अति ऊंचा न अति नीचा, स्थिर स्थापित करके।।११।।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा, यत चित्तेन्द्रिय क्रियः।
उप-विश्यासने युञ्ज्याद, योग-मात्म विशुद्धये।।१२।।

1 5 4 6 7 3 2
तत्र, एकाग्रम्, मनः, कृत्वा, यतचित्तेन्द्रियक्रियः, उपविष्य, आसने,
10 9 8
युञ्ज्यात्, योगम्, आत्मविशुद्धये।

भाषा :– उस आसन पर बैठ कर-चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में करके तथा एकाग्र मन हो, अन्तःकरण की शुद्धि के लिए, योग का अभ्यास करे॥१२॥

समं काय शिरो ग्रीवं, धारयन् नचलं-स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं, दिशश्चा-नवलोकयन्॥१३॥

2 1 5 4 6 9
समम्, कायशिरोग्रीवम्, धारयन्, अचलम्, स्थिरः, सम्प्रेक्ष्य,
8 7 10 3 11
नासिकाग्रम्, स्वम्, दिशः, च, अनवलोकयन्।

भाषा :– विधि इस प्रकार है– शरीर, सिर तथा गर्दन को समान स्थिति में लाकर और अचल धारण करके, दृढ़ होकर, अपनी नाक के अग्रभाग को देखकर तथा अन्य दिशाओं को न देखता हुआ– ॥१३॥

प्रशान्तात्मा विगत भी,- र्ब्रह्मचारि व्रते-स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो, युक्त आसीत मत्परः॥१४॥

4 3 1 2 6 7 8
प्रशान्तात्मा, विगतभीः, ब्रह्मचारिव्रते, स्थितः, मनः, संयम्य, मच्चित्तः,
5 10 9
युक्तः आसीत, मत्परः।

भाषा :– ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित, निर्भय हो, भली भान्ति शान्त अन्तःकरण वाला, सावधान हो, मन को वश में करके, मुझ में चित्त वाला और मेरे परायण होकर स्थित हो जावे॥१४॥

युञ्जन्-नेवं सदात्मानं, योगी नियत-मानसः।
शान्तिं निर्वाण परमां, मत् संस्था-मधिगच्छति॥१५॥

4 1 3 2 6 5 9
युञ्जन्, एवम्, सदा, आत्मानम्, योगी, नियतमानसः, शान्तिम्,
8 7 10
निर्वाणपरमाम्, मत्संस्थाम्, अधिगच्छति।

भाषा :– इस प्रकार आत्मा को निरन्तर परमेश्वर स्वरूप में लगाता हुआ, स्वाधीन मन वाला योगी, मुझ में रहने वाली परमानन्द की पराकाष्ठा रूप, निर्मल शान्ति को प्राप्त करता है॥१५॥

ना-त्यश्न-तस्तु योगोऽस्ति, न चैकान्त-मनश्नतः।
न चाति स्वप्न-शीलस्य, जाग्रतो नैव चार्जुन॥१६॥

3 5 6 4 2 7 9 8 10 11
न, अति, अश्नतः, तु, योगः, अस्ति, न, च, एकान्तम्, अनश्नतः,
13 12 14 15 18 17 19 16 1
न, च, अति, स्वप्नशीलस्य, जाग्रतः, न, एव, च, अर्जुन।

भाषा :– और एक विशेष बात है– हे अर्जुन! यह योग न तो अधिक खाने वाले का सिद्ध होता है और न बिल्कुल न खाने वाले का तथा न अति सोने वाले का और न अत्यन्त जागने वाले का ही सिद्ध होता है॥१६॥

युक्ताहार विहारस्य, युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नाव-बोधस्य, योगो भवति दुःखहा॥१७॥

1 3 2 4 5
युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य, कर्मसु, युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगः,
7 6
भवति, दुःखहा।

भाषा :– किन्तु यथा योग्य आहार–विहार करने वाले का, कर्मों में यथा योग्य चेष्टा करने वाले का तथा यथोचित सोने और जागने वाले का, यह योगाभ्यास, दुःखों को नाश करने वाला सिद्ध होता है।।१७।।

यदा विनियतं चित्त,- मात्मन्येवाव-तिष्ठते।

निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो, युक्त इत्युच्यते तदा।।१८।।

3 1 2 4 5 6 9

यदा, विनियतम्, चित्तम्, आत्मनि, एव, अवतिष्ठते, निःस्पृहः,

8 10 11 12 7

सर्वकामेभ्यः, युक्तः, इति, उच्यते, तदा।

भाषा :– उक्त योगाभ्यास से– अत्यन्त वश में किया हुआ चित्त, जिस समय परमात्मा में भली भान्ति स्थित हो जाता है, उस काल में सम्पूर्ण कामनाओं से विरक्त हुआ पुरुष, योग युक्त ऐसा कहलाता है।।१८।।

यथा दीपो निवातस्थो, नेङ्गते सोपमा-स्मृता।

योगिनो यत चित्तस्य, युञ्जतो योग-मात्मनः।।१९।।

1 3 2 4 5 6 7 13 11

यथा, दीपः, निवातस्थः, न, इङ्गते, सा, उपमा, स्मृता, योगिनः,

12 10 9 8

यतचित्तस्य, युञ्जतः, योगम्, आत्मनः।

भाषा :– जैसे वायु रहित स्थान में रखा हुआ दीपक चलायमान नहीं होता है, वैसी ही उपमा, परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की कही गई है।।१९।।

यत्रोपरमंते चित्तं, निरुद्धं योग सेवया।

यत्र चैवात्मना-त्मानं, पश्यन् नात्मनि तुष्यति।।२०।।

1 5 4 3 2 7 6 12 8

यत्र, उपरमते, चित्तम्, निरुद्धम्, योगसेवया, यत्र, च, एव, आत्मना,

9 10 11 13

आत्मानम्, पश्यन्, आत्मनि, तुष्यति।

भाषा :– जिस स्थिति में योगाभ्यास से निरुद्ध हुआ चित्त उपराम हो जाता है तथा जिस अवस्था में सूक्ष्म बुद्धि द्वारा परमात्मा को देखते हुए परमात्मा में ही सन्तुष्ट रहता है– ।।२०।।

सुख-मात्यन्तिकं यत्तद्, बुद्धि ग्राह्य-मतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं,- स्थित-श्चलति तत्त्वतः।।२१।।

5 4 3 6 2 1 8

सुखम्, आत्यन्तिकम्, यत्, तत्, बुद्धिग्राह्यम्, अतीन्द्रियम्, वेत्ति,

7 13 9 14 11 10 15 12

यत्र, न, च, एव, अयम्, स्थितः, चलति, तत्त्वतः।

भाषा :– तथा इन्द्रियातीत, केवल बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य, जो अनन्त आनन्द है,उसको जिस अवस्था में अनुभव करता है और जिस अवस्था में स्थित हुआ यह योगी परमात्म-स्वरूप से नहीं चलायमान होता है– ।।२१।।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं, मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिं-स्थितो न दुःखेन, गुरुणापि विचाल्यते।।२२।।

1 2 9 5 6 8 7 4 3 10

यम्, लब्ध्वा, च, अपरम्, लाभम्, मन्यते, न, अधिकम्, ततः, यस्मिन्,

11 15 13 12 14 16

स्थितः, न, दुःखेन, गुरुणा, अपि, विचाल्यते।

भाषा :– और फिर उस परमात्मा-प्राप्ति रूप लाभ को प्राप्त कर, उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और भगवत्-प्राप्ति

रूप जिस अवस्था में स्थित योगी बड़े भारी दुःख से भी व्याकुल नहीं होता है।।२२।।

तं विद्याद् दुःख संयोग,- वियोगं योग संज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो, योगोऽ-निर्विण्ण चेतसा।।२३।।

3 4 1 2 5 8
तम्, विद्यात्, दुःखसंयोगवियोगम्, योगसंज्ञितम्, सः, निश्चयेन,
9 6 7
योक्तव्यः, योगः, अनिर्विण्णचेतसा।

भाषा :– और जो– दुःखरूप संसार के संयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिए। वह योग न उक्ताये हुए अर्थात् धैर्ययुक्त तथा उत्साहयुक्त चित्त से निश्चपूर्वक करना चाहिए।।२३।।

संकल्प प्रभवान् कामां,- स्त्यक्त्वा सर्वा-नशेषतः।
मनसै-वेन्द्रिय ग्रामं, विनियम्य समन्ततः।।२४।।

1 3 5 2 4 6 9
संकल्पप्रभवान्, कामान्, त्यक्त्वा, सर्वान्, अशेषतः, मनसा, एव,
7 10 8
इन्द्रियग्रामम्, विनियम्य, समन्ततः।

भाषा :– संकल्प से उत्पन्न होने वाली सब कामनाओं को पूर्णतया त्याग कर और मन के द्वारा इन्द्रिय-समूह को सभी ओर से भली प्रकार रोक कर– ।।२४।।

शनैः शनै-रुपरमेद्, बुद्ध्या धृति गृहीतया।
आत्म संस्थं मनः कृत्वा, न किंचि-दपि चिन्तयेत्।।२५।।

1 2 3 5 4 7 6
शनैः, शनैः, उपरमेत्, बुद्ध्या, धृतिगृहीतया, आत्मसंस्थम्, मनः,
8 11 9 10 12
कृत्वा, न, किंचित्, अपि, चिन्तयेत्।

भाषा :– धीरे-धीरे क्रमशः अभ्यास करता हुआ उपराम को प्राप्त होवे तथा धैर्ययुक्त बुद्धि द्वारा मन को परमात्मा में स्थिर करके तथा उसके सिवा कुछ भी चिंतन न करे।।२५।।

यतो यतो निश्चरति, मन-श्चंचल-मस्थिरम्।
तत-स्ततो नियम्यैत,- दात्मन्येव वशं नयेत्।।२६।।

5 6 7 4 3 2 8 9 10
यतः, यतः, निश्चरति, मनः, चंचलम्, अस्थिरम्, ततः, ततः, नियम्य,
1 11 12 13 14
एतत्, आत्मनि, एव, वशम्, नयेत्।

भाषा :– यह स्थिर न रहने वाला और चंचल मन जिस-जिस शब्दादि विषय के निमित्त से संसार में विचरता है, उस-उस विषय से रोक कर इसे बार-बार परमात्मा में ही लगावे।।२६।।

प्रशान्त मनसं ह्येनं, योगिनं सुख-मुत्तमम्।
उपैति शान्त रजसं, ब्रह्मभूत-मकल्मषम्।।२७।।

2 1 5 7 9 8 10
प्रशान्तमनसम्, हि, एनम्, योगिनम्, सुखम्, उत्तमम्, उपैति,
4 6 3
शान्तरजसम्, ब्रह्मभूतम्, अकल्मषम्।

भाषा :– क्योंकि जिसका मन अच्छी प्रकार शान्त है तथा जो निष्पाप है, जिसका रजोगुण शान्त हो गया है, ऐसे इस परब्रह्म के साथ एकात्म भाव हुए योगी को परमानन्द की प्राप्ति होती है।।२७।।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं, योगी विगत कल्मषः।
सुखेन ब्रह्म संस्पर्श,- मत्यन्तं सुख-मश्नुते।।२८।।

6 3 4 5 2 1 7
युञ्जन्, एवम्, सदा, आत्मानम्, योगी, विगतकल्मषः, सुखेन,
8 9 10 11
ब्रह्मसंस्पर्शम्, अत्यन्तम्, सुखम्, अश्नुते।

भाषा :– तथा वह– निष्पाप योगी, इस प्रकार निरन्तर आत्मा को परमात्मा में लगाता हुआ सुख पूर्वक परब्रह्म की प्राप्ति रूप असीम आनन्द को अनुभव करता है।।२८।।

सर्व भूतस्थ-मात्मानं, सर्व भूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा, सर्वत्र समदर्शनः।।२९।।

5 4 7 6 8 9
सर्वभूतस्थम्, आत्मानम्, सर्वभूतानि, च, आत्मनि, ईक्षते,
1 2 3
योगयुक्तात्मा, सर्वत्र, समदर्शनः।

भाषा :– और फिर वह साधक-सर्वव्यापी अनन्त चेतन में एकीभाव से स्थितिरूप योग से युक्त हुए आत्मा वाला तथा सब में समदर्शी होकर, आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में स्थित और सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में देखता है।।२९।।

यो मां पश्यति सर्वत्र, सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि, स च मे न प्रणश्यति।।३०।।

1 3 4 2 6 5 7 8 9 10
यः, माम्, पश्यति, सर्वत्र, सर्वम्, च, मयि, पश्यति, तस्य, अहम्,
11 12 14 13 15 16 17
न, प्रणश्यामि, सः, च, मे, न, प्रणश्यति।

भाषा :– जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में मुझ (वासुदेव) को ही व्यापक देखता है और समस्त भूतों को मुझ में देखता है, उसके लिए मैं अदृश्य नहीं और वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता है।।३०।।

सर्व भूत-स्थितं यो मां, भजत्येक-त्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि, स योगी मयि वर्तते।।३१।।

4 1 5 6 2 3 9
सर्वभूतस्थितम्, यः, माम्, भजति, एकत्वम्, आस्थितः, सर्वथा,
10 11 7 8 12 13
वर्तमानः, अपि, सः, योगी, मयि, वर्तते।

भाषा :– जो पुरुष एकीभाव से स्थित होकर सम्पूर्ण भूतों में मुझ वासुदेव को भजता है, वह योगी सब प्रकार से स्थित हुआ भी मुझ में ही स्थित है।।३१।।

आत्मौपम्येन सर्वत्र, समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं, स योगी परमो मतः।।३२।।

3 4 5 6 2 1 8 7 9
आत्मौपम्येन, सर्वत्र, समम्, पश्यति, यः, अर्जुन, सुखम्, वा, यदि,
10 11 12 13 14 15
वा, दुःखम्, सः, योगी, परमः, मतः।

भाषा :– हे अर्जुन! जो योगी अपने समान ही सम्पूर्ण भूतों में समभाव से देखता है और सुख अथवा दुःख को भी सब में सम देखता है, वह योगी परमश्रेष्ठ माना गया है।।३२।।

अर्जुन उवाच

योऽयं योग-स्त्वया प्रोक्तः, साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि, चञ्चलत्वात् स्थितिं-स्थिराम्।।३३।।

2 3 4 5 7 6 1 8 9
यः, अयम्, योगः, त्वया, प्रोक्तः, साम्येन, मधुसूदन, एतस्य, अहम्,
13 14 10 11 12
न, पश्यामि, चञ्चलत्वात्, स्थितिम्, स्थिराम्।

भाषा :– अर्जुन बोले– हे मधुसूदन! जो यह योग आपने समभाव से कहा है, मन के चंचल होने से मैं इसकी नित्यस्थिति को नहीं देखता हूँ।।३३।।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण, प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम्।।३४।।

4 1 3 2 5 7 6 8 10
चञ्चलम्, हि, मनः, कृष्ण, प्रमाथि, बलवत्, दृढम्, तस्य, अहम्,
9 14 11 12 13
निग्रहम्, मन्ये, वायोः, इव, सुदुष्करम्।

भाषा :– क्योंकि हे कृष्ण! यह मन बड़ा चंचल, मतवाला, दृढ़ और बलवान है। इसलिए उसका वश में करना मैं वायु को रोकने की भान्ति अति कठिन मानता हूँ।।३४।।

श्रीभगवानुवाच

असंशयं महाबाहो, मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते।।३५।।

2 1 3 5 4 8 6 7
असंशयम्, महाबाहो, मनः, दुर्निग्रहम्, चलम्, अभ्यासेन, तु, कौन्तेय,
10 9 11
वैराग्येण, च, गृह्यते।

भाषा :– श्री भगवान् बोले – हे महाबाहो! निःसन्देह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है, परन्तु हे अर्जुन! यह अभ्यास अर्थात् निरन्तर यत्न करने से तथा वैराग्य से वश में होता है।।३५।।

असंयतात्मना योगो, दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता, शक्योऽ-वाप्तु-मुपायतः।।३६।।

1 2 3 10 11 12 5 4 6
असंयतात्मना, योगः, दुष्प्राप, इति, मे, मतिः, वश्यात्मना, तु, यतता,
9 8 7
शक्यः, अवाप्तुम्, उपायतः।

भाषा :– क्योंकि मन को वश में न करने वाले पुरुष द्वारा योग अप्राप्य है तथा वश में किए हुए मन वाले प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साधन करने से प्राप्त होना सहज है, ऐसा मेरा मत है।।३६।।

अर्जुन उवाच

अयतिः श्रद्धयोपेतो, योगा-च्चलित मानसः।
अप्राप्य योग संसिद्धिं, कां गतिं कृष्ण गच्छति।।३७।।

4 5 6 2 3 8
अयतिः, श्रद्धया, उपेतः, योगात्, चलितमानसः, अप्राप्य,
7 9 10 1 11
योगसंसिद्धिम्, काम्, गतिम्, कृष्ण, गच्छति।

भाषा :– इस पर अर्जुन बोला– हे कृष्ण! योग से विचलित मन वाला तथा शिथिल यत्न वाला, श्रद्धालु पुरुष योग की सिद्धि अर्थात् भगवत् साक्षात्कार न होने पर किस गति को प्राप्त होता है? ।।३७।।

कच्चिन् नोभय विभ्रष्ट,- श्छिन्नाभ्र-मिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो, विमूढो ब्रह्मणः पथि।।३८।।

2 10 9 7 8 11 6
कच्चित्, न, उभयविभ्रष्टः, छिन्नाभ्रम्, इव, नश्यति, अप्रतिष्ठः,
1 5 3 4
महाबाहो, विमूढः, ब्रह्मणः, पथि।

भाषा :– तथा हे महाबाहो! क्या भगवत्प्राप्ति के मार्ग में मोहित हुआ निराश्रित पुरुष छिन्न-भिन्न बादल की भान्ति दोनों ओर से पतित हुआ नष्ट तो नहीं हो जाता है?॥३८॥

एतन्मे संशयं कृष्ण, छेत्तु-मर्हस्य-शेषतः।
त्वदन्यः संशय-स्यास्य, छेत्ता न ह्युप-पद्यते॥३९॥

3 2 4 1 6 7 5 9 10
एतत्, मे, संशयम्, कृष्ण, छेत्तुम्, अर्हसि, अशेषतः, त्वत्, अन्यः,
12 11 13 14 8 15
संशयस्य, अस्य, छेत्ता, न, हि, उपपद्यते।

भाषा :– हे कृष्ण! मेरे इस संशय को पूर्णतया मिटाने के लिए आप ही समर्थ हैं क्योंकि आपके सिवा दूसरा इस शंका को मिटाने वाला मिलना असम्भव है।॥३९॥

श्रीभगवानुवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र, विनाश-स्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत् कश्चिद्, दुर्गतिं तात गच्छति॥४०॥

1 3 7 4 5 6 8 2 9 15 10
पार्थ, न, एव, इह, न, अमुत्र, विनाशः, तस्य, विद्यते, न, हि,
13 12 14 11 16
कल्याणकृत्, कश्चित्, दुर्गतिम्, तात, गच्छति।

भाषा :– भगवान् बोले– हे अर्जुन! उस पुरुष का न इस लोक में और न ही परलोक में विनाश होता है। क्योंकि हे प्रिय! कोई भी शुभकर्म करने वाला दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है।॥४०॥

प्राप्य पुण्यकृतां लोका,- नुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे, योग भ्रष्टोऽ-भिजायते॥४१॥

4 2 3 7 5 6 8
प्राप्य, पुण्यकृताम्, लोकान्, उषित्वा, शाश्वतीः, समाः, शुचीनाम्,
9 10 1 11
श्रीमताम्, गेहे, योगभ्रष्टः, अभिजायते।

भाषा :– किन्तु योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानों के लोकों को प्राप्त हो कर तथा उनमें बहुत वर्षों तक वास करके सदाचारी तथा श्री सम्पन्न पुरुषों के घर में वास करता है।।४१।।

अथवा योगिना-मेव, कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं, लोके जन्म यदीदृशम्।।४२।।

1 3 4 5 6 2 9 10 13
अथवा, योगिनाम्, एव, कुले, भवति, धीमताम्, एतत्, हि, दुर्लभतरम्,
11 10 8 7
लोके, जन्म, यत्, ईदृशम्।

भाषा :– अथवा ज्ञानवान योगियों के कुल में जन्म लेता है। परन्तु इस प्रकार का जो यह जन्म है सो संसार में निःसन्देह अति दुर्लभ है।।४२।।

तत्र तं बुद्धि संयोगं, लभते पौर्व देहिकम्।
यतते च ततो भूयः, संसिद्धौ कुरु-नन्दन।।४३।।

1 2 4 5 3 11 6 8 9
तत्र, तम्, बुद्धिसंयोगम्, लभते, पौर्वदेहिकम्, यतते, च, ततः, भूयः,
10 7
संसिद्धौ, कुरुनन्दन।

भाषा :– वहां उस पहले शरीर में समत्व बुद्धि योग के संस्कारों को अनायास ही प्राप्त हो जाता है; और हे अर्जुन! उसके प्रभाव से फिर भगवत्प्राप्ति निमित्त यत्न करने में प्रवृत्त हो जाता है।।४३।।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव, ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासु-रपि योगस्य, शब्द ब्रह्मातिवर्तते॥४४॥

5 4 6 8 7 2 3 1 10
पूर्वाभ्यासेन, तेन, एव, ह्रियते, हि, अवशः, अपि, सः, जिज्ञासुः,
11 9 12 13
अपि, योगस्य, शब्दब्रह्म, अतिवर्तते।

भाषा :– और वह (श्रीमानों के घर में जन्म लेने वाला योग भ्रष्ट पुरुष) पराधीन हुआ भी पूर्वाभ्यास से ही निःसन्देह भगवान् की ओर आकर्षित किया जाता है तथा (समत्व बुद्धि) योग का जिज्ञासु भी वेदोक्त सकाम कर्म-फल को उल्लंघन कर जाता है॥४४॥

प्रयत्नाद् यतमानस्तु, योगी संशुद्ध किल्बिषः।
अनेक जन्म संसिद्ध,- स्ततो याति परां गतिम्॥४५॥

3 4 2 5 6 1
प्रयत्नात्, यतमानः, तु, योगी, संशुद्धकिल्बिषः, अनेकजन्मसंसिद्धः,
7 10 8 9
ततः, याति, पराम्, गतिम्।

भाषा :– परन्तु अनेक जन्मों के संस्कार बल से सिद्धि प्राप्त हुआ तथा प्रयत्न पूर्वक अभ्यास करने वाला योगी सम्पूर्ण पापों से शुद्ध होकर तथा उस साधन के फल स्वरूप परमगति को प्राप्त होता है॥४५॥

तपस्विभ्योऽ-धिको योगी,
ज्ञानिभ्योऽ-पि मतोऽ-धिकः।
कर्मिभ्य-श्चाधिको योगी,
तस्माद् योगी भवार्जुन॥४६॥

2 3 1 5 6 8 7
तपस्विभ्यः, अधिकः, योगी, ज्ञानिभ्यः, अपि, मतः, अधिकः,
9 4 11 10 12 14 15 13
कर्मिभ्यः, च, अधिकः, योगी, तस्मात्, योगी, भव, अर्जुन।

भाषा :– योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, शास्त्र ज्ञान वालों से श्रेष्ठ माना गया है। सकाम-कर्मियों से भी योगी अधिक श्रेष्ठ है, इससे हे अर्जुन! तू योगी बन।।४६।।

योगिना-मपि सर्वेषां, मद्गतेना-न्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां, स मे युक्ततमो मतः।।४७।।

2 3 1 6 7 5 9
योगिनाम्, अपि, सर्वेषाम्, मद्गतेन, अन्तरात्मना, श्रद्धावान्, भजते,
4 8 10 11 12 13
यः, माम्, सः, मे, युक्ततमः, मतः।

भाषा :– सभी योगियों में भी जो श्रद्धावान् योगी मेरे में लगे हुए, अन्तरात्मा से मुझ को निरन्तर स्मरण करता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।।४७।।

ओं तत्सदिति श्रीमद् भगवद् गीता-
सूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुन संवादे आत्मसंयम-योगो नाम षष्ठोऽध्यायः
श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु।।६।।
श्लोकाः ४७ गत श्लोकानि २३३ एवमादितः २८०





॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्त मनाः पार्थ, योगं युञ्जन् मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां, यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु॥१॥

2 3 1 5 6 4 10
मयि, आसक्तमनाः, पार्थ, योगम्, युञ्जन्, मदाश्रयः, असंशयम्,
8 9 7 11 12 13
समग्रम्, माम्, यथा, ज्ञास्यसि, तत्, शृणु।

भाषा :– श्री भगवान् बाले– हे पार्थ! मुझ में अनन्य प्रेमसे आसक्त चित्त वाला तथा अनन्यभाव से मेरे परायण होकर योग में लगा हुआ तू, जिस प्रकार से सम्पूर्ण गुणों से युक्त, सब के आत्मरूप मुझ को संशय रहित जानेगा, उसको सुन॥१॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञान,- मिदं वक्ष्याम्य-शेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्, ज्ञातव्य-मवशिष्यते॥२॥

5 2 1 4 3 7 6 8 9
ज्ञानम्, ते, अहम्, सविज्ञानम्, इदम्, वक्ष्यामि, अशेषतः, यत्, ज्ञात्वा,
14 10 11 12 13 15
न, इह, भूयः, अन्यत्, ज्ञातव्यम्, अवशिष्यते।

भाषा :– मैं तेरे लिए इस विज्ञान सहित तत्त्व ज्ञान को सम्पूर्णता से कहूँगा, जिसको जानकर संसार में फिर और कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रहता है॥२॥

मनुष्याणां सहस्रेषु, कश्चिद् यतति सिद्धये।
यतता-मपि सिद्धानां, कश्चिन् मां वेत्ति तत्त्वतः॥३॥

2 1 3 5 4 6 8
मनुष्याणाम्, सहस्रेषु, कश्चित्, यतति, सिद्धये, यतताम्, अपि,
7 9 10 12 11
सिद्धानां, कश्चित्, माम्, वेत्ति, तत्त्वतः।

भाषा :– हज़ारों मनुष्यों में कोई ही मनुष्य मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करता है और उन यत्न करने वाले योगियों में भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझे यथार्थ रूप से जानता है॥३॥

भूमिरापोऽ-नलो वायुः, खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे, भिन्ना प्रकृति-रष्टधा॥४॥

1 2 3 4 5 6 7 10 8 9
भूमिः, आपः, अनलः, वायुः, खम्, मनः, बुद्धिः, एव, च, अहंकारः,
11 12 15 14 16 13
इति, इयम्, मे, भिन्ना, प्रकृतिः, अष्टधा।

भाषा :– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार भी– ऐसे यह आठ प्रकार से विभक्त हुई मेरी प्रकृति है।।४।।

अपरेय-मितस्त्व-न्यां, प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो, ययेदं धार्यते जगत्।।५।।

3 1 5 2 6 10 11 7 9
अपरा, इयम्, इतः, तु, अन्याम्, प्रकृतिम्, विद्धि, मे, पराम्,
8 4 12 13 15 14
जीवभूताम्, महाबाहो, यया, इदम्, धार्यते, जगत्।

भाषा :– यह (आठ प्रकार के भेदों वाली) तो अपरा अर्थात् मेरी जड़ प्रकृति है और हे अर्जुन! इससे दूसरी को जीवरूप परा अर्थात् चेतन प्रकृति जान, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है।।५।।

एतद् योनीनि भूतानि, सर्वाणी-त्युप-धारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः, प्रभवः प्रलयस्तथा।।६।।

4 5 3 1 2 6 7
एतद्योनीनि, भूतानि, सर्वाणि, इति, उपधारय, अहम्, कृत्स्नस्य,
8 9 11 10
जगतः, प्रभवः, प्रलयः, तथा।

भाषा :– ऐसा समझ कि सम्पूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियों से ही उत्पत्ति वाले हैं तथा मैं सम्पूर्ण जगत् का उत्पत्ति और प्रलय रूप हूँ अर्थात् सम्पूर्ण विश्व का मूल कारण हूँ।।६।।

मत्तः परतरं नान्यत्, किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्व-मिदं प्रोतं, सूत्रे मणिगणा इव।।७।।

2 3 6 5 4 7 1 13 9
मत्तः, परतरम्, न, अन्यत्, किंचित्, अस्ति, धनंजय, मयि, सर्वम्,
8 14 10 11 12
इदम्, प्रोतम्, सूत्रे, मणिगणाः, इव।

भाषा :– हे अर्जुन! मुझ से भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्र में मणियों के सदृश मेरे में गुंथा हुआ है।।७।।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय, प्रभा-स्मि शशि सूर्ययोः।
प्रणवः सर्व वेदेषु, शब्दः खे पौरुषं नृषु।।८।।

4 3 2 1 6 7 5 9
रसः, अहम्, अप्सु, कौन्तेय, प्रभा, अस्मि, शशिसूर्ययोः, प्रणवः,
8 11 10 13 12
सर्ववेदेषु, शब्दः, खे, पौरुषम्, नृषु।

भाषा :– हे अर्जुन! जल में मैं रस हूँ, चन्द्र सूर्य में प्रकाश हूँ सब वेदों में ओङ्कार हूँ, आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व हूँ।।८।।

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च, तेज-श्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्व भूतेषु, तप-श्चास्मि तप-स्विषु।।९।।

2 3 1 4 6 8 7 5 10
पुण्यः, गन्धः, पृथिव्याम्, च, तेजः, च, अस्मि, विभावसौ, जीवनम्,
9 13 11 14 12
सर्वभूतेषु, तपः, च, अस्मि, तपस्विषु।

भाषा :– तथा पृथ्वी में गन्ध और अग्नि में तेज हूँ तथा सब भूतों में जीवन हूँ और तपस्वियों में तप हूँ।।९।।

बीजं मां सर्वभूतानां, विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धि-र्बुद्धिमता-मस्मि, तेज-स्तेजस्विना-महम्॥१०॥

4 5 2 6 1 3 9
बीजम्, माम्, सर्वभूतानाम्, विद्धि, पार्थ, सनातनम्, बुद्धिः,
8 12 11 10 7
बुद्धिमताम्, अस्मि, तेजः, तेजस्विनाम्, अहम्।

भाषा :– हे पार्थ! तू सब भूतों का (शाश्वत्) बीज मुझे ही जान। मैं बुद्धिमानों की बुद्धि तथा तेजस्वियों का तेज हूँ।।१०।।

बलं बलवतां चाहं, काम राग विवर्जितम्।
धर्मा-विरुद्धो भूतेषु, कामोऽ-स्मि भरतर्षभ॥११॥

5 3 6 2 4 8
बलम्, बलवताम्, च, अहम्, कामरागविवर्जितम्, धर्माविरुद्धः,
7 9 10 1
भूतेषु, कामः, अस्मि, भरतर्षभ।

भाषा :– हे भरतश्रेष्ठ! मैं बलवानों का आसक्ति एवं कामनाओं रहित बल हूँ तथा सब भूत प्राणियों में धर्मानुकूल अर्थात् शास्त्रसम्मत काम हूँ।।११।।

ये चैव सात्त्विका भावा, राजसा-स्तामसा-श्च ये।
मत्त एवेति तान् विद्धि, न त्वहं तेषु ते मयि॥१२॥

3 1 2 4 5 8 9 6 7 11
ये, च, एव, सात्त्विकाः, भावाः, राजसाः, तामसाः, च, ये, मत्तः,
12 13 10 14 20 15 17 16 18 19
एव, इति, तान्, विद्धि, न, तु, अहम्, तेषु, ते, मयि।

भाषा :– तथा और भी जो सत्त्वगुण से उत्पन्न होने वाले भाव हैं और जो रजोगुण तथा तमोगुण से उत्पन्न होने वाले भाव हैं, उन सब

को तू "मेरे से ही होने वाले भाव हैं" ऐसा जान। परन्तु वास्तव में उनमें मैं और वे मेरे में नहीं हैं।।१२।।

त्रिभि-र्गुण-मयै-र्भावै,- रेभिः सर्व-मिदं जगत्।
मोहितं नाभि-जानाति, मामेभ्यः पर-मव्ययम्।।१३।।

3 1 4 2 6 5 7 8 13
त्रिभिः, गुणमयैः, भावैः, एभिः, सर्वम्, इदम्, जगत्, मोहितम्, न,
14 11 9 10 12
अभिजानाति, माम्, एभ्यः, परम्, अव्ययम्।

भाषा :– गुणों के कार्य रूप इन तीनों (सात्त्विक, राजस और तामस) प्रकार के भावों से यह सब संसार मोहित हो रहा है, इसलिए इन तीनों गुणों से परे गुणातीत मुझ अविनाशी को तत्त्व से नहीं जानता।।१३।।

दैवी ह्येषा गुणमयी, मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते, माया-मेतां तरन्ति ते।।१४।।

3 1 2 4 5 6 7 9 10 8 11
दैवी, हि, एषा, गुणमयी, मम, माया, दुरत्यया, माम्, एव, ये, प्रपद्यन्ते,
14 13 15 12
मायाम्, एताम्, तरन्ति, ते।

भाषा :– क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अद्भुत त्रिगुणात्मक मेरी योग माया बड़ी दुस्तर है; परन्तु जो पुरुष मेरे को ही निरन्तर भजते हैं, वे इस माया को पार कर जाते हैं अर्थात् भवसागर से तर जाते हैं।।१४।।

न मां दुष्कृतिनो मूढाः, प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययाप-हृत ज्ञाना, आसुरं भाव-माश्रिताः।।१५।।

11 10 8 9 12 7 1 2
न, माम्, दुष्कृतिनः, मूढाः, प्रपद्यन्ते, नराधमाः, मायया, अपहृत,
3 4 5 6
ज्ञानाः, आसुरम्, भावम्, आश्रिताः।

भाषा :– किन्तु माया द्वारा हरे हुऐ ज्ञान वाले, आसुरी स्वभाव को धारण किये हुए नीच मनुष्य और दूषित कर्म करने वाले मूर्ख लोग मेरे को नहीं भजते हैं।।१५।।

चतुर्विधा भजन्ते मां, जनाः सुकृतिनोऽ-र्जुन।
आर्तो जिज्ञासु-रर्थार्थी, ज्ञानी च भरतर्षभ।।१६।।

10 12 11 9 3 2 5 6
चतुर्विधाः, भजन्ते, माम्, जनाः, सुकृतिनः, अर्जुन, आर्तः, जिज्ञासुः,
4 8 7 1
अर्थार्थी, ज्ञानी, च, भरतर्षभ।

भाषा :– हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्म करने वाले, सांसारिक सुख भोगार्थ धन की कामना वाले, संकट निवारणार्थ भजने वाले, मुझको यथार्थ रूप से जानने की इच्छा वाले तथा ज्ञानी जन ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मझे भजते हैं।।१६।।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त, एकभक्ति-र्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽ-त्यर्थ,- महं स च मम प्रियः।।१७।।

1 4 2 3 5 14 6
तेषाम्, ज्ञानी, नित्ययुक्तः, एकभक्तिः, विशिष्यते, प्रियः, हि,
7 9 8 12 11 13 10
ज्ञानिनः, अत्यर्थम्, अहम्, सः, च, मम, प्रियः।

भाषा :– उनमें नित्य मेरे में एकीभाव से स्थित हुआ, अनन्य प्रेम भक्ति वाला, ज्ञानी भक्त अत्युत्तम है, क्योंकि मुझको तत्त्व से

जानने वाले ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह मुझे अत्यन्त प्रिय है।।१७।।

उदाराः सर्व एवैते, ज्ञानी त्वा-त्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा, मामेवा-नुत्तमां गतिम्।।१८।।

4 2 3 1 6 5 7 8 9 10 18
उदाराः, सर्वे, एव, एते, ज्ञानी, तु, आत्मा, एव, मे, मतम्, आस्थितः,
12 11 13 10 17 14 15
सः, हि, युक्तात्मा, माम्, एव, अनुत्तमाम्, गतिम्।

भाषा :– यद्यपि ये सब उदार हैं परन्तु ज्ञानी मेरा स्वरूप ही है। ऐसा मेरा मत है। क्योंकि वह स्थिर बुद्धि ज्ञानी भक्त अत्युत्तम गति स्वरूप मेरे में ही अच्छी प्रकार स्थित है।।१८।।

बहूनां जन्मना-मन्ते, ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्व-मिति, स महात्मा सुदुर्लभः।।१९।।

1 2 3 4 8 9 6
बहूनां, जन्मनाम्, अन्ते, ज्ञानवान्, माम्, प्रपद्यते, वासुदेवः,
5 7 10 11 12
सर्वम्, इति, सः, महात्मा, सुदुर्लभः।

भाषा :– बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में तत्त्व ज्ञान को प्राप्त हुआ ज्ञानी पुरुष सब कुछ वासुदेव ही है, इस प्रकार मुझ को भजता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है।।१९।।

कामै-स्तैस्तै-र्हृतज्ञानाः, प्रपद्यन्तेऽन्य-देवताः।
तं तं नियम-मास्थाय, प्रकृत्या नियताः स्वया।।२०।।

6 4 5 7 13 12 8 9
कामैः, तैः, तैः, हृतज्ञानाः, प्रपद्यन्ते, अन्यदेवताः, तम्, तम्,
10 11 2 3 1
नियमम्, आस्थाय, प्रकृत्या, नियताः, स्वया।

भाषा :– परन्तु विषयासक्त पुरुष अपने स्वभाव से प्रेरित हुए तथा उन-उन भोगों की कामना द्वारा ज्ञान से भ्रष्ट हुए, उस-उस नियम को धारण करके अन्य देवताओं को भजते हैं अर्थात् पूजते हैं।।२०।।

यो यो यां यां तनुं भक्तः, श्रद्धया-र्चितु-मिच्छति।

तस्य तस्या-चलां श्रद्धां, तामेव विद-धाम्यहम्।।२१।।

1 2 4 5 6 3 7 8 9
यः, यः, याम्, याम्, तनुम्, भक्तः, श्रद्धया, अर्चितुम्, इच्छति,
10 11 16 12 14 15 17 13
तस्य, तस्य, अचलाम्, श्रद्धाम्, ताम्, एव, विदधामि, अहम्।

भाषा :– किन्तु फिर भी– जो जो सकामी भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस-उस भक्त की श्रद्धा को मैं उसी देवता के प्रति स्थिर करता हूँ।।२१।।

स तया श्रद्धया युक्त,- स्तस्या-राधन-मीहते।

लभते च ततः कामान्, मयैव विहितान् हि तान्।।२२।।

1 2 3 4 5 6 7 16 8
सः, तया, श्रद्धया, युक्तः, तस्य, आराधनम्, ईहते, लभते, च,
9 14 10 11 12 15 13
ततः, कामान्, मया, एव, विहितान्, हि, तान्।

भाषा :– तथा वह पुरुष उस श्रद्धा से युक्त होकर उस देवता का पूजन करता है और उस देवता से मेरे द्वारा ही विधान किये हुए उन इष्ट भोगों को निःसन्देह प्राप्त करता है।।२२।।

अन्त-वत्तु फलं तेषां, तद् भव-त्यल्प मेधसाम्।

देवान् देवयजो यान्ति, मद् भक्ता यान्ति मामपि।।२३।।

6 1 5 2 4 7 3 9
अन्तवत्, तु, फलम्, तेषाम्, तत्, भवति, अल्पमेधसाम्, देवान्,
8 10 11 14 12 13
देवयजः, यान्ति, मद्भक्ताः, यान्ति, माम्, अपि।

भाषा :– परन्तु उन अल्पबुद्धि वालों का वह फल नाशवान् है तथा देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मुझे प्राप्त होते हैं।।२३।।

अव्यक्तं व्यक्ति-मापन्नं, मन्यन्ते माम-बुद्धयः।
परं भाव-मजानन्तो, ममा-व्यय-मनुत्तमम्।।२४।।

8 10 11 12 9 1 5
अव्यक्तम्, व्यक्तिम्, आपन्नम्, मन्यन्ते, माम्, अबुद्धयः, परम्,
6 7 2 4 3
भावम्, अजानन्तः, मम्, अव्ययम्, अनुत्तमम्।

भाषा :– बुद्धिहीन जन मेरे अत्युत्तम, अविनाशी, परम भाव को न जानते हुए, मुझ अव्यक्त (मन-इन्द्रियों से परे) परब्रह्म को मनुष्य भाव को प्राप्त हुआ मानते हैं।।२४।।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य, योग माया समावृतः।
मूढोऽयं ना-भिजानाति, लोको मामज-मव्ययम्।।२५।।

5 2 4 3 1 7 6 12
न, अहम्, प्रकाशः, सर्वस्य, योगमायासमावृतः, मूढः, अयम्, न,
13 8 9 10 11
अभिजानाति, लोकः, माम्, अजम्, अव्ययम्।

भाषा :– अपनी योग माया से छिपा हुआ मैं सब के प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ। अतः अज्ञानी मनुष्य मुझ अजन्मा और अविनाशी परमात्मा को नहीं जानता है।।२५।।

वेदाहं सम-तीतानि, वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि, मां तु वेद न कश्चन॥२६॥

9 8 2 4 3 1 6
वेद, अहम्, समतीतानि, वर्तमानानि, च, अर्जुन, भविष्याणि,
5 7 11 10 14 13 12
च, भूतानि, माम्, तु, वेद, न, कश्चन।

भाषा :– हे अर्जुन! पूर्व में व्यतीत हुए और वर्तमान् में दृश्य तथा आगे होने वाले सब भूतों को जानता हूँ परन्तु मुझे कोई भी (सिवाय ब्रह्मज्ञानी के) नहीं जानता है॥२६॥

इच्छा द्वेष समुत्थेन, द्वन्द्व मोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं, सर्गे यान्ति परन्तप॥२७॥

4 5 1 6 7
इच्छाद्वेषसमुत्थेन, द्वन्द्वमोहेन, भारत, सर्वभूतानि, सम्मोहम्,
3 8 2
सर्गे, यान्ति, परन्तप।

भाषा :– हे भरतवंशी, परंतप (अर्जुन)! संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न हुए, सुख-दुःखादि द्वन्द्व रूप मोह से सम्पूर्ण प्राणी अति अज्ञान को प्राप्त हो रहे हैं॥२७॥

येषां त्वन्त गतं पापं, जनानां पुण्य कर्मणाम्।
ते द्वन्द्व मोह निर्मुक्ता, भजन्ते मां दृढव्रताः॥२८॥

3 1 6 5 4 2 7
येषाम्, तु, अन्तगतम्, पापम्, जनानाम्, पुण्यकर्मणाम्, ते,
8 11 10 9
द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः, भजन्ते, माम्, दृढव्रताः।

भाषा :– परन्तु पुण्यकर्मा तथा जिनका पाप नष्ट हो गया है वे

राग द्वेषादि द्वन्द्व रूप मोह से मुक्त हुए तथा दृढ़ निश्चयी पुरुष मेरे को भजते हैं।।२८।।

जरा मरण मोक्षाय, मा-माश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्न,- मध्यात्मं कर्म चाखिलम्।।२९।।

4 2 3 5 1 6 8 7 14
जरामरणमोक्षाय, माम्, आश्रित्य, यतन्ति, ये, ते, ब्रह्म, तत्, विदुः,
10 11 13 9 12
कृत्स्नम्, अध्यात्मम्, कर्म, च, अखिलम्।

भाषा :– जो मेरी शरण होकरजरा (बुढ़ापा) और मरण (मृत्यु) से छूटने के लिए यत्न करते हैं। वे उस ब्रह्म को तथा सम्पूर्ण अध्यात्म को और सम्पूर्ण कर्म को जानते हैं।।२९।।

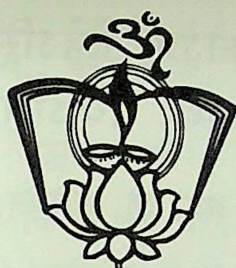
साधि भूताधि दैवं मां, साधि यज्ञं च ये विदुः।
प्रयाण कालेऽपि च मां, ते विदु-र्युक्त चेतसः।।३०।।

2 5 4 3 1 6 9
साधिभूताधिदैवम्, माम्, साधियज्ञम्, च, ये, विदुः, प्रयाणकाले,
10 12 11 7 13 8
अपि, च, माम्, ते, विदुः, युक्तचेतसः।

भाषा :– जो पुरुष अधिभूत, अधिदैव तथा अधियज्ञ सहित (सब का आत्मरूप) मुझ वासुदेव को जानते हैं, वे युक्त चित्त वाले पुरुष अन्तकाल में भी मुझको ही जानते हैं अर्थात् मुझे प्राप्त होते हैं।।३०।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्-भगवद्-गीता-सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुन संवादे ज्ञानविज्ञान-योगो नाम सप्तमोऽध्यायः श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु।।७।।

श्लोकाः ३० गतश्लोकानि २८० एवमादितः ३१०



॥ ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

किं तद् ब्रह्म किमध्यात्मं, किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्त,- मधिदैवं किमुच्यते॥१॥

4 2 3 6 5 8 7 1
किम्, तत्, ब्रह्म, किम्, अध्यात्मम्, किम्, कर्म, पुरुषोत्तम,
10 9 11 12 13 14 15
अधिभूतम्, च, किम्, प्रोक्तम्, अधिदैवम्, किम्, उच्यते।

भाषा :– अर्जुन ने कहा– हे पुरुषोत्तम! वह ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत नाम से क्या कहा गया है और अधिदैव किस को कहते हैं? ॥१॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र, देहेऽस्मिन् मधुसूदन।
प्रयाण-काले च कथं, ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः।।२।।

3 7 4 2 6 5 1 10
अधियज्ञः, कथम्, कः, अत्र, देहे, अस्मिन्, मधुसूदन, प्रयाणकाले,
8 11 12 13 9
च, कथम्, ज्ञेयः, असि, नियतात्मभिः।

भाषा :– तथा हे मधुसूदन! यहां अधियज्ञ कौन है? और वह इस शरीर में कैसे है? तथा युक्त चित्त वाले पुरुषों द्वारा अन्तकाल में आप किस प्रकार जानने में आते हैं?।।२।।

श्रीभगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं, स्वभावोऽ-ध्यात्म-मुच्यते।
भूत-भावोद्‌-भवकरो, विसर्गः कर्म संज्ञितः।।३।।

2 3 1 4 5 6 7
अक्षरम्, ब्रह्म, परमम्, स्वभावः, अध्यात्मम्, उच्यते, भूतभावः,
8 9 10
उद्भवकरः, विसर्गः, कर्मसंज्ञितः।

भाषा :– परम अक्षर (अविनाशी परमात्मा) तो 'ब्रह्म' है, अपना स्वरूप अर्थात् जीवात्मा 'अध्यात्म' नाम से कहा जाता है। भूतों के भाव को उत्पन्न करने वाले तथा शास्त्रविहित यज्ञदानादि के निमित्त जो द्रव्यादि का त्याग है उसे 'कर्म' की संज्ञा दी जाती है।।३।।

अधिभूतं क्षरो भावः, पुरुष-श्चाधि दैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र, देहे देहभृतां वर।।४।।

3 1 2 5 4 6 13
अधिभूतम्, क्षरः, भावः, पुरुषः, च, अधिदैवतम्, अधियज्ञः,
11 12 9 10 7 8
अहम्, एव, अत्र, देहे, देहभृताम्, वर।

भाषा :– उत्पत्ति-विनाश धर्म वाले सब पदार्थ 'अधिभूत' हैं तथा पुरुष (अक्षर ब्रह्म) 'अधिदैव' है। हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन! इस शरीर में मैं वासुदेव ही 'अधियज्ञ' हूँ।।४।।

अन्तकाले च मामेव, स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं, याति ना-स्त्यत्र संशयः।।५।।

3 1 4 5 6 8 7 2 9
अन्तकाले, च, माम्, एव, स्मरन्, मुक्त्वा, कलेवरम्, यः, प्रयाति,
10 11 12 15 16 13 14
सः, मद्भावम्, याति, न, अस्ति, अत्र, संशयः।

भाषा :– तथा जो पुरुष अन्तिम समय में मेरा ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागता है, वह मेरे सायुज्य को प्राप्त होता है। इसमें तनिक संदेह नहीं।।५।।

यं यं वापि स्मरन् भावं, त्यज-त्यन्ते कलेवरम्।
तं तमे-वैति कौन्तेय, सदा तद्भाव भावितः।।६।।

3 4 8 6 5 7 10 2 9 11
यम्, यम्, वा, अपि, स्मरन्, भावम्, त्यजति, अन्ते, कलेवरम्, तम्,
12 13 14 1 15 16
तम्, एव, एति, कौन्तेय, सदा, तद्भावभावितः।

भाषा :– कारण कि हे अर्जुन! मनुष्य अन्तकाल में जिस-जिस भी भाव का चिन्तन करता हुआ शरीर त्यागता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है, क्योंकि वह सदा उसी भाव से भावित होता है अर्थात् उसी भाव को प्राप्त करता है।।६।।

तस्मात् सर्वेषु कालेषु, मामनु-स्मर युध्य च।
मय्यर्पित मनो बुद्धि,- र्मामे-वैष्यस्य-संशयम्॥७॥

1 2 3 4 5 7 6 8
तस्मात्, सर्वेषु, कालेषु, माम्, अनुस्मर, युध्य, च, मयि,
9 11 12 13 10
अर्पितमनोबुद्धिः, माम्, एव, एष्यसि, असंशयम्।

भाषा :– अतः हे अर्जुन! तू हर समय निरन्त मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मेरे में अर्पण किये मन-बुद्धि से युक्त हुआ तू निःसन्देह मेरे को ही प्राप्त होगा॥७॥

अभ्यास योग-युक्तेन, चेतसा नान्य-गामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं, याति पार्थानु-चिन्तयन्॥८॥

2 4 3 6 8 7
अभ्यासयोगयुक्तेन, चेतसा, नान्यगामिना, परमम्, पुरुषम्, दिव्यम्,
9 1 5
याति, पार्थ, अनुचिन्तयन्।

भाषा :– हे पार्थ! अभ्यास योग से युक्त हो, दूसरी ओर न जाने वाले चित्त से, निरन्तर चिन्तन करता हुआ मनुष्य परम दिव्य पुरुष अर्थात् परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होता है॥८॥

कविं पुराण-मनुशासितार-
मणो-रणीयांस-मनु-स्मरेद् यः।
सर्वस्य धातार-मचिन्त्य रूप-
मादित्य वर्णं तमसः परस्तात्॥९॥

2 3 4 5 6 13
कविम्, पुराणम्, अनुशासितारम्, अणोः, अणीयांसम्, अनुस्मरेत्,
1 7 8 9 10 11 12
यः, सर्वस्य, धातारम्, अचिन्त्यरूपम्, आदित्यवर्णम्, तमसः, परस्तात्।

भाषा :– इससे जो पुरुष सर्वज्ञ, सनातन, सर्वनियन्ता, सूक्ष्मातिसूक्ष्म्, सब का धारण-पोषण करने वाला, अचिन्त्यस्वरूप, सूर्यसमान प्रकाशस्वरूप, अविद्या से परे, सच्चिदानन्द का स्मरण करता है– ॥९॥

प्रयाणकाले मनसाऽ-चलेन,-
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवो-र्मध्ये प्राण-मावेश्य सम्यक्,
स तं परं पुरुष-मुपैति दिव्यम्॥१०॥

4 13 12 2 3 5 11
प्रयाणकाले, मनसा, अचलेन, भक्त्या, युक्तः, योगबलेन, च,
18 6 7 8 10 9 1 14 16 17
एव, भ्रुवोः, मध्ये, प्राणम्, आवेश्य, सम्यक्, सः, तम्, परम्, पुरुषम्,
19 15
उपैति, दिव्यम्।

भाषा :– वह भक्ति युक्त पुरुष अन्तकाल में भी, योग शक्ति द्वारा, भृकुटी के मध्य में प्राणों का भली प्रकार स्थापन कर और स्थिर मन से, उस दिव्य स्वरूप परमपुरुष (परमात्मा) को ही प्राप्त होता है॥१०॥

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति,
विशन्ति यद् यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति,
तत् ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥११॥

2 3 1 4 8 7 6 5
यत्, अक्षरम्, वेदविदः, वदन्ति, विशन्ति, यत्, यतयः, वीतरागाः,
9 10 11 12 13 15 14 16 17
यत्, इच्छन्तः, ब्रह्मचर्यम्, चरन्ति, तत्, ते, पदम्, संग्रहेण, प्रवक्ष्ये।

भाषा :– वेदवेता जिस (सच्चिदानन्द घन स्वरूप परमपद) को अविनाशी कहते हैं, अनासक्त, यत्नशील महापुरुष जिसमें प्रवेश करते हैं तथा जिस पद के इच्छुक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उस परमपद को मैं तेरे लिए संक्षेप से कहता हूँ।।११।।

सर्व द्वाराणि संयम्य, मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्या-धायात्मनः प्राण,- मास्थितो योग धारणाम्।।१२।।

1 2 3 4 5 6 9 10
सर्वद्वाराणि, संयम्य, मनः, हृदि, निरुध्य, च, मूर्ध्नि, आधाय
7 8 12 11
आत्मनः, प्राणम्, आस्थितः, योगधारणाम्।

भाषा :– सब इन्द्रियों के द्वारों को रोक कर, मन को हृद्देश में स्थिर कर के तथा अपने प्राण को मस्तक में स्थापन करके, योग धारणा में स्थिर होकर– ।।१२।।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म, व्याहरन् मा-मनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं, स याति परमां गतिम्।।१३।।

2 3 4 5 6 7 8 1 11
ओम्, इति, एकाक्षरम्, ब्रह्म, व्याहरन्, माम्, अनुस्मरन्, यः, प्रयाति,
10 9 12 15 13 14
त्यजन्, देहम्, सः, याति, परमाम्, गतिम्।

भाषा :– जो (पुरुष) 'ॐ' इस एक अक्षर रूप ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मेरे को चिंतन करता

हुआ शरीर त्याग कर जाता है, वह पुरुष परमगति (मोक्ष) का भागी बनता है।।१३।।

अनन्य चेताः सततं, यो मां स्मरति नित्यशः।

तस्याहं सुलभः पार्थ, नित्य युक्तस्य योगिनः।।१४।।

3 5 2 6 7 4 8 11

अनन्यचेताः, सततम्, यः, माम्, स्मरति, नित्यशः, तस्य, अहम्,

12 1 9 10

सुलभः, पार्थ, नित्ययुक्तस्य, योगिनः।

भाषा :– और हे पार्थ! जो पुरुष अनन्य मन से स्थित हुआ सदा ही निरन्तर मेरे को स्मरण करता है, उस निरन्तर मेरे में युक्त हुए योगी के लिए मैं सहज में ही प्राप्त हो जाता हूँ।।१४।।

मामुपेत्य पुनर्जन्म, दुःखालय-मशाश्वतम्।

नाप्नुवन्ति महात्मानः, संसिद्धिं परमां गताः।।१५।।

5 6 9 7 8 10 11

माम्, उपेत्य, पुनर्जन्म, दुःखालयम्, अशाश्वतम्, न, आप्नुवन्ति,

4 2 1 3

महात्मानः, संसिद्धिम्, परमाम्, गताः।

भाषा :– परम सिद्धि को प्राप्त हुए महात्मा जन, मेरे को प्राप्त होकर दुःख के स्थान रूप, क्षण भङ्गुर, पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते हैं।।१५।।

आब्रह्म-भुवना-ल्लोकाः, पुनरा-वर्तिनोऽर्जुन।

मामुपेत्य तु कौन्तेय, पुनर्जन्म न विद्यते।।१६।।

2 3 4 6 7 8 5

आब्रह्मभुवनात्, लोकाः, पुनरावर्तिनः, अर्जुन, माम्, उपेत्य, तु,

1 9 10 11

कौन्तेय, पुनर्जन्म, न, विद्यते।

भाषा :– हे कुन्ती नन्दन! ब्रह्मलोक पर्यन्त समस्त लोक (समयावधि के बन्धन में बन्धे होने के कारण अनित्य हैं) पुनरावर्ती स्वभाव वाले हैं। किन्तु हे अर्जुन! मेरे को प्राप्त पुरुष का पुनर्जन्म नहीं होता है।।१६।।

सहस्त्रयुग पर्यन्त,- महर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युग सहस्त्रान्तां, तेऽहोरात्र-विदो जनाः।।१७।।

4 3 2 1 7 5 6
सहस्त्रयुगपर्यन्तम्, अहः, यत्, ब्रह्मणः, विदुः, रात्रिम्, युगसहस्त्रान्ताम्,
8 10 9
ते, अहोरात्रविदः, जनाः।

भाषा :– ब्रह्मा का जो एक दिन है उसका एक हज़ार चतुर्युगी तक अवधि वाला और रात्रि को भी एक हज़ार चतुर्युगी अवधिवाली जो पुरुष तत्त्व से जानते हैं, वे योगी जन दिवारात्रविद हैं अर्थात् कालतत्त्व के जानने वाले हैं।।१७।।

अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः, प्रभवन्त्यह-रागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते, तत्रैवा-व्यक्त संज्ञके।।१८।।

4 2 1 5 3 6
अव्यक्तात्, व्यक्तयः, सर्वाः, प्रभवन्ति, अहरागमे, रात्र्यागमे,
11 7 10 8 9
प्रलीयन्ते, तत्र, एव, अव्यक्त, संज्ञके।

भाषा :– सम्पूर्ण (चराचर) प्राणी उपर्युक्त ब्रह्मा के दिन के प्रवेशकाल में अव्यक्त अर्थात् ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर से उत्पन्न होते हैं और रात्रि के प्रवेश काल में उस अव्यक्त नामधारी ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर में ही लीन हो जाते हैं।।१८।।

भूतग्रामः स एवायं, भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ, प्रभवत्यह-रागमे॥१९॥

4 1 2 3 5 6 9 8
भूतग्रामः, सः, एव, अयम्, भूत्वा, भूत्वा, प्रलीयते, रात्र्यागमे,
7 12 11 10
अवशः, पार्थ, प्रभवति, अहरागमे।

भाषा :– तथा वह भी यह भूत समुदाय उत्पन्न होकर प्रकृति के वश में हुआ रात्रि के प्रवेशकाल में लीन हो जाता है और दिन के प्रवेश में पुनः उत्पन्न होता है। इस प्रकार हे अर्जुन! ब्रह्मा की आयु के सौ वर्ष पूर्ण होने से अपने लोक सहित ब्रह्मा भी उपराम को प्राप्त हो जाता है तथा इस से सर्वलोकों की अनित्यता सिद्ध हो जाती है॥१९॥

परस्तस्मात् तु भावोऽन्योऽ,-
व्यक्तोऽ-व्यक्तात् सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु,
नश्यत्सु न विनश्यति॥२०॥

4 2 1 9 5 8 3 7
परः, तस्मात्, तु, भावः, अन्यः, अव्यक्तः, अव्यक्तात्, सनातनः,
6 10 11 12 13 14 15
यः, सः, सर्वेषु, भूतेषु, नश्यत्सु, न, विनश्यति।

भाषा :– परन्तु उस अव्यक्त से भी अति परे दूसरा अर्थात् विलक्षण जो सनातन अव्यक्त भाव है, वह पूर्ण ब्रह्म परमात्मा सब भूतों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता है॥२०॥

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्त,- स्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते, तद्धाम परमं मम॥२१॥

1 2 3 4 5 8 6 7 9
अव्यक्तः, अक्षरः, इति, उक्तः, तम्, आहुः, परमाम्, गतिम्, यम्,
10 11 12 13 16 15 14
प्राप्य, न, निवर्तन्ते, तत्, धाम, परमम्, मम।

भाषा :– जो अव्यक्त 'अक्षर' इस नाम से कहा जाता है, उस ही 'अक्षर' नामक अव्यक्त भाव को परमगति अर्थात् मोक्षस्थान कहते हैं; तथा जिस सनातन अव्यक्त भाव को प्राप्त होकर मनुष्य की पुनरावृत्ति नहीं होती, वह मेरा परम धाम है॥२१॥

पुरुषः स परः पार्थ, भक्त्या लभ्य-स्त्वनन्यया।
यस्यान्तः-स्थानि भूतानि, येन सर्वमिदं ततम्॥२२॥

12 10 11 2 14 15 1 13 3
पुरुषः, सः, परः, पार्थ, भक्त्या, लभ्यः, तु, अनन्यया, यस्य,
4 5 6 8 7 9
अन्तःस्थानि, भूतानि, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्।

भाषा :– और हे अर्जुन! जिस परमात्मा के अन्तर्गत सब भूत हैं और जिस परब्रह्म परमात्मा से यह सब जगत् परिपूर्ण है, वह सनातन, अव्यक्त परम पुरुष अनन्य भक्ति से ही प्राप्त होने योग्य है॥२२॥

यत्रकाले त्वनावृत्ति,- मावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं, वक्ष्यामि भरतर्षभ॥२३॥

3 4 1 7 9 8 10 6 5
यत्र, काले, तु, अनावृत्तिम्, आवृत्तिम्, च, एव, योगिनः, प्रयाताः,
11 12 13 14 2
यान्ति, तम्, कालम्, वक्ष्यामि, भरतर्षभ।

भाषा :– तथा हे भरतश्रेष्ठ! जिस काल (मार्ग) में शरीर त्याग कर गये हुए योगी जन अनावृत्ति (पीछे न आने वाली गति) को और आवृत्ति (पीछे आने वाली गति) को भी प्राप्त होते हैं, उस काल अर्थात् मार्ग को तुम से कहूँगा।।२३।।

अग्नि-र्ज्योतिरहः शुक्लः, षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति, ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः।।२४।।

2 1 3 4 5 6 7 8
अग्निः, ज्योतिः, अहः, शुक्लः, षण्मासाः, उत्तरायणम्, तत्र, प्रयाताः,
12 11 9 10
गच्छन्ति, ब्रह्म, ब्रह्मविदः, जनाः।

भाषा :– जिस मार्ग में ज्योतिर्मय अग्नि देवता है और दिन का सूर्यदेव है तथा शुक्ल पक्ष का देवता और उत्तरायण के छः महीनों का देवता है, उस मार्ग में मरकर गये हुए ब्रह्मवेता निष्काम योगी जन उपर्युक्त देवताओं द्वारा क्रम से ले जाये जाकर परब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं।।२४।।

धूमो रात्रि-स्तथा कृष्णः, षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योति,- र्योगी प्राप्य निवर्तते।।२५।।

1 2 3 4 5 6 7 9
धूमः, रात्रिः, तथा, कृष्णः, षण्मासाः, दक्षिणायनम्, तत्र, चान्द्रमसम्,
10 8 11 12
ज्योतिः, योगी, प्राप्य, निवर्तते।

भाषा :– तथा जिस मार्ग में धूम्रदेवता, रात्रि देवता तथा कृष्णपक्ष का देवता और दक्षिणायन के छः महीने का देवता है, उस मार्ग में मर कर गए हुए (सकाम) योगी जन उपर्युक्त देवताओं द्वारा

क्रम से ले जाये जा कर चन्द्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर (स्वर्गादि में अपने शुभ कर्मों का फल भोगकर) पुनः वापिस आता है।।२५।।

शुक्ल कृष्णे गती ह्येते, जगतः शाश्वते मते।
एकया या-त्यनावृत्ति,- मन्यया वर्तते पुनः।।२६।।

4 5 1 3 2 6 7 8
शुक्लकृष्णे, गती, हि, एते, जगतः, शाश्वते, मते, एकया,
10 9 11 13 12
याति, अनावृत्तिम्, अन्यया, आवर्तते, पुनः।

भाषा :– क्योंकि जगत् के ये दो प्रकार हैं– शुक्ल और कृष्ण अर्थात् देवयान और पितृयान मार्ग सनातन माने गये हैं। इनमें एक के द्वारा गया हुआ (निष्काम कर्मयोगी) अनावृत्ति को प्राप्त होता है और दूसरे के द्वारा गया हुआ (सकाम कर्मयोगी) आवृत्ति अर्थात् जन्म-मृत्यु के चक्कर को प्राप्त होता है।।२६।।

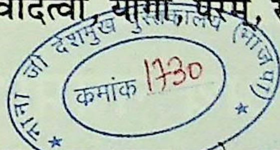
नैते सृती पार्थ जानन्, योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात् सर्वेषु कालेषु, योग युक्तो भवार्जुन।।२७।।

7 2 3 1 4 6 8 5 9 11
न, एते, सृती, पार्थ, जानन्, योगी, मुह्यति, कश्चन, तस्मात्, सर्वेषु,
12 13 14 10
कालेषु, योगयुक्तः, भव, अर्जुन।

भाषा :– हे पार्थ! इस प्रकार इन दोनों मार्गों को तत्त्व से जानते हुए कोई भी योगी मोहित नहीं होता। अतः हे अर्जुन! तू सब काल में समत्व बुद्धिरूप योग से युक्त हो अर्थात् मेरी प्राप्ति के लिए निरन्तर साधना करने वाला हो।।२७।।

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव,
दानेषु यत् पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा,
योगी परं स्थान-मुपैति चाद्यम्॥२८॥

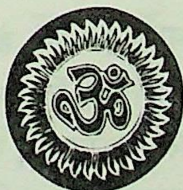
4 6 7 5 14 8 9 10 11
वेदेषु, यज्ञेषु, तपःसु, च, एव, दानेषु, यत्, पुण्यफलम्, प्रदिष्टम्,
15 12 13 2 3 1 18 19 20
अत्येति, तत्, सर्वम्, इदम्, विदित्वा, योगी, परम्, स्थानम्, उपैति,
16 17
च, आद्यम्।

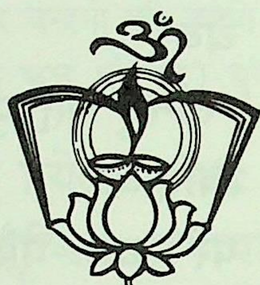


भाषा :– तथा योगी पुरुष इस रहस्य को तत्त्व से जान कर वेदाध्ययन में तथा यज्ञ, तप और दान आदि के करने में जो पुण्यफल कहा है, उस सब को निःसन्देह उल्लंघन कर जाता है और शाश्वत (सनातन) परम पद को प्राप्त होता है॥२८॥

ओं तत्सदिति श्रीमद् भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे
अक्षर-ब्रह्म-योगो नामाष्टमोऽध्यायः श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु॥॥

श्लोकाः २८ गताङ्कः ३१० एवमादितः ३३८





॥ ओं नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथ नवमोऽध्याय:

श्रीभगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं, प्रवक्ष्या-म्यन-सूयवे।
ज्ञानं विज्ञान सहितं, यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽ-शुभात्॥१॥

3 8 1 4 7 2 6 5
इदम्, तु, ते, गुह्यतमम्, प्रवक्ष्यामि, अनसूयवे, ज्ञानम्, विज्ञानसहितम्,
9 10 12 11
यत्, ज्ञात्वा, मोक्ष्यसे, अशुभात्।

भाषा :– श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन! तुझ दृष्टिदोष रहित भक्त के लिए इस परम गोपनीय विज्ञानयुक्त ज्ञान को कहूँगा, कि जिसे जानकर तू दुःख स्वरूप संसार से छूट जायेगा।।१।।

राजविद्या राजगुह्यं, पवित्र-मिद-मुत्तमम्।
प्रत्यक्षाव-गमं धर्म्यं, सुसुखं कर्तु-मव्ययम्।।२।।

2 3 4 1 5 6
राजविद्या, राजगुह्यम्, पवित्रम्, इदम्, उत्तमम्, प्रत्यक्षावगमम्,
7 9 8 10
धर्म्यम्, सुसुखम्, कर्तुम्, अव्ययम्।

भाषा :- यह उपर्युक्त विज्ञानयुक्त ज्ञान, सब विद्याओं का राजा, सब गोपनीयों का राजा, परम पवित्र, अत्युत्तम, प्रत्यक्ष फलदायी तथा धर्मयुक्त साधन करने को परम सुखप्रद, सहज एवं अविनाशी है।।२।।

अश्रद्दधानाः पुरुषा, धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते, मृत्यु संसार वर्त्मनि।।३।।

4 5 3 2 1 7 6
अश्रद्दधानाः, पुरुषाः, धर्मस्य, अस्य, परंतप, अप्राप्य, माम्,
9 8
निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि।

भाषा :- हे अर्जुन! इस उपर्युक्त तत्त्व ज्ञान रूप धर्म में श्रद्धाहीन पुरुष मुझ को न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसार चक्र में भ्रमण करते हैं।।३।।

मया ततमिदं सर्वं, जग-दव्यक्त मूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि, न चाहं तेष्व-वस्थितः।।४।।

1 6 3 4 5 2 9
मया, ततम्, इदम्, सर्वम्, जगत्, अव्यक्तमूर्तिना, मत्स्थानि,
8 12 7 10 11 13
सर्वभूतानि, न, च, अहम्, तेषु, अवस्थितः।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! मुझ निराकार ब्रह्म से यह सब जगत् (जल से बर्फ के समान) परिपूर्ण है तथा सब चराचर प्राणी मेरे अन्तर्गत संकल्प के आधार पर स्थित हैं; किंतु वास्तव में मैं उनमें स्थित नहीं हूँ।।४।।

न च मत्स्थानि भूतानि, पश्य मे योग-मैश्वरम्।
भूतभृन् न च भूतस्थो, ममात्मा भूतभावनः।।५।।

4 1 3 2 8 5 6 7 9
न, च, मत्स्थानि, भूतानि, पश्य, मे, योगम्, ऐश्वरम्, भूतभृत्,
15 11 14 12 13 10
न, च, भूतस्थः, मम्, आत्मा, भूतभावनः।

भाषा :– और वे सब भूत मेरे में स्थित नहीं हैं किन्तु मेरी योगमाया और प्रभाव को देख कि भूतों का धारण पोषण करने वाला तथा भूतों को उत्पन्न करने वाला भी मेरा आत्मा वास्तव में भूतों में स्थित नहीं।।५।।

यथाकाश-स्थितो नित्यं, वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि, मत्स्थानी-त्युपधारय।।६।।

1 6 5 4 2 3 7
यथा, आकाशस्थितः, नित्यम्, वायुः, सर्वत्रगः, महान्, तथा,
8 9 10 11 12
सर्वाणि, भूतानि, मत्स्थानि, इति, उपधारय।

भाषा :– उपर्युक्त रहस्य का स्पष्टीकरण करते हुए भगवान् कहते हैं– जैसे सर्वत्र विचरने वाला वायु सदैव आकाश में ही स्थित है वैसे ही मेरे संकल्पजनित सम्पूर्ण भूत मेरे में स्थित हैं– ऐसा जान।।६।।

सर्वभूतानि कौन्तेय, प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि, कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।७।।

3 1 5 6 4 2
सर्वभूतानि, कौन्तेय, प्रकृतिम्, यान्ति, मामिकाम्, कल्पक्षये,
10 8 7 11 9
पुनः, तानि, कल्पादौ, विसृजामि, अहम्।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! कल्पान्त में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं तथा कल्प के प्रारम्भ में उनको मैं फिर रचता हूँ।।७।।

प्रकृतिं स्वा-मवष्टभ्य, विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राम-मिमं कृत्स्न,- मवशं प्रकृते-र्वशात्।।८।।

2 1 3 12 10 11 9 7
प्रकृतिम्, स्वाम्, अवष्टभ्य, विसृजामि, पुनः, पुनः, भूतग्रामम्, इमम्,
8 6 4 5
कृत्स्नम्, अवशम्, प्रकृतेः, वशात्।

भाषा :– अपनी प्रकृति को स्वीकार कर के स्वभाव के बल से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण भूत समुदाय को बारम्बार उनके कर्मानुसार रचता हूँ।।८।।

न च मां तानि कर्माणि, निबध्नन्ति धनंजय।
उदासी-नवदासीन,- मसक्तं तेषु कर्मसु।।९।।

11 5 8 9 10 12 1 6
न, च, माम्, तानि, कर्माणि, निबध्नन्ति, धनंजय, उदासीनवत्,
7 4 2 3
आसीनम्, असक्तम्, तेषु, कर्मसु।

भाषा :– हे धनंजय! उन कर्मों में अनासक्त और उदासीन के सदृश स्थित हुए मुझ परमात्मा को वे कर्म नहीं बान्धते हैं।।९।।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः, सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय, जगद् विपरिवर्तते।।१०।।

2 3 4 6 5 8 7 1
मया, अध्यक्षेण, प्रकृतिः, सूयते, सचराचरम्, हेतुना, अनेन, कौन्तेय,
9 10
जगत्, विपरिवर्तते।

भाषा :– तथा हे कुन्तीनन्दन! मुझ अधिष्ठाता के सकाश से प्रकृति चराचर सहित सर्व जगत् को रचती है और इस हेतु से ही यह संसार चक्र घूम रहा है।।१०।।

अवजानन्ति मां मूढा, मानुषीं तनु-माश्रितम्।
परं भाव-मजानन्तो, मम भूत-महेश्वरम्।।११।।

11 10 6 7 8 9 3
अवजानन्ति, माम्, मूढाः, मानुषीम्, तनुम्, आश्रितम्, परम्,
4 5 2 1
भावम्, अजानन्तः, मम, भूतमहेश्वरम्।

भाषा :– इतना तथा ऐसा होने पर भी सम्पूर्ण भूतों के नियन्ता मेरे परम भाव को न जानने वाले, विवेकहीन लोग, मानवरूपधारी मुझ परमात्मा को तुछ समझते हैं।।११।।

मोघाशा मोघकर्माणो, मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसी-मासुरीं चैव, प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः।।१२।।

1 2 3 4 5 7
मोघाशाः, मोघकर्माणः, मोघज्ञानाः, विचेतसः, राक्षसीम्, आसुरीम्,
6 10 9 8 11
च, एव, प्रकृतिम्, मोहिनीम्, श्रिताः।

भाषा :– व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म और व्यर्थ ज्ञान वाले अज्ञानी जन, राक्षसी और आसुरी जैसी मोहित करने वाली प्रकृति को ही धारण किये हुए हैं।।१२।।

महात्मानस्तु मां पार्थ, दैवीं प्रकृति-माश्रिताः।
भजन्त्य-नन्य मनसो, ज्ञात्वा भूतादि-मव्ययम्।।१३।।

6 1 7 2 3 4 5 12
महात्मानः, तु, माम्, पार्थ, दैवीम्, प्रकृतिम्, आश्रिताः, भजन्ति,
11 10 8 9
अनन्यमनसः, ज्ञात्वा, भूतादिम्, अव्ययम्।

भाषा :– किन्तु हे पार्थ! दैवी प्रकृति आश्रित महात्माजन मुझे सब भूतों का आदिकारण और अविनाशी 'अक्षर' स्वरूप जानकर अनन्य मन से भजते हैं।।१३।।

सततं कीर्तयन्तो मां, यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्य-न्तश्च मां भक्त्या, नित्य युक्ता उपासते।।१४।।

2 3 7 5 4 1 8 6
सततम्, कीर्तयन्तः, माम्, यतन्तः, च, दृढव्रताः, नमस्यन्तः, च,
11 10 9 12
माम्, भक्त्या, नित्ययुक्ताः, उपासते।

भाषा :– तथा वे दृढ़ संकल्प वाले भक्तजन, निरन्तर मेरे नामगुण का कीर्तन करते हुए तथा मेरी प्राप्त्यर्थ यत्न करते हुए और मुझे बारम्बार प्रणाम करते हुए, मेरे ध्यान में लीन, अनन्य भक्ति भाव से, मेरी उपासना करते हैं।।१४।।

ज्ञान यज्ञेन चाप्यन्ये, यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन, बहुधा विश्वतोमुखम्।।१५।।

3 8 10 6 4 1 11 5
ज्ञानयज्ञेन, च, अपि, अन्ये, यजन्तः, माम्, उपासते, एकत्वेन,
7 9 2
पृथक्त्वेन, बहुधा, विश्वतोमुखम्।

भाषा :– उनमें कोई तो मुझ विराट् स्वरूप भगवान् को ज्ञानयज्ञ द्वारा पूजन करते हुए एकत्व भाव से (वासुदेवोजगत्सर्वं) पूजते हैं तथा अन्य दूसरे भावों से (स्वामी-सेवक, भक्त-भगवान्) और कोई बहुत प्रकार से पूजते हैं।।१५।।

अहं क्रतुरहं यज्ञः, स्वधा-हम-हमौषधम्।
मन्त्रोऽहम-हमेवाज्य,- मह-मग्नि-रहं हुतम्।।१६।।

2 1 4 3 5 6 8 7 9
अहम्, क्रतुः, अहम्, यज्ञः, स्वधा, अहम्, अहम्, औषधम्, मन्त्रः,
10 12 17 11 14 13 16 15
अहम्, अहम्, एव, आज्यम्, अहम्, अग्निः, अहम्, हुतम्।

भाषा :– क्रतु (श्रोत) मैं हूँ, यज्ञ (पंचमहायज्ञादि स्मार्त कर्म) मैं हूँ, स्वधा (पित्रों के निमित्त दिया जाने वाला अन्न-जलादि कर्म) मैं हूँ, सर्वोषधी मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, घृत में हूँ, अग्नि मैं हूँ और हवनरूप क्रिया भी मैं ही हूँ।।१६।।

पिता-हमस्य जगतो, माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्र-मोंकार, ऋक्साम यजुरेव च।।१७।।

4 14 1 2 5 3 6 8 9
पिता, अहम्, अस्य, जगतः, माता, धाता, पितामहः, वेद्यम्, पवित्रम्,
10 11 12 13 15 7
ओंकारः, ऋक्, साम, यजुः, एव, च।

भाषा :– इस सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाला, पिता, माता, पितामह और जानने योग्य पवित्र ओंकार तथा ऋग्वेद, साम और यजुर्वेद मैं ही हूँ।।१७।।

गति-र्भर्ता प्रभुः साक्षी, निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं, निधानं बीज-मव्ययम्॥१८॥

1 2 3 4 5 6 7 8
गतिः, भर्ता, प्रभुः, साक्षी, निवासः, शरणम्, सुहृत्, प्रभवः,
9 10 11 13 12
प्रलयः, स्थानम्, निधानम्, बीजम्, अव्ययम्।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! प्राप्त होने योग्य, भरणपोषण करने वाला, सब का स्वामी, शुभाशुभद्रष्टा, सब का वास स्थान, सब का आश्रय, सबका हितैषी, उत्पत्ति तथा प्रलयरूप, सर्वाधार, निधान (सब को आत्मसात करने वाला) और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ॥१८॥

तपा-म्यह-महं वर्षं, निगृह्णा-म्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च, सद-सच्चा-हमर्जुन॥१९॥

2 1 9 3 4 6 5 10
तपामि, अहम्, अहम्, वर्षम्, निगृह्णामि, उत्सृजामि, च, अमृतम्,
7 17 12 11 13 15 14 16 8
च, एव, मृत्युः, च, सत्, असत्, च, अहम्, अर्जुन॥१९॥

भाषा :– और मैं ही सूर्यरूप से तपता हूँ, वर्षा का आकर्षण करता हूँ और वर्षता हूँ तथा हे अर्जुन! मैं ही अमृत और मृत्यु हूँ, सत् और असत् भी मैं ही हूँ॥१९॥

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा,
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्य-मासाद्य सुरेन्द्र लोक,-
मश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्॥२०॥

1 4 2 3 5 6 7
त्रैविद्याः, माम्, सोमपाः, पूतपापाः, यज्ञैः, इष्ट्वा, स्वर्गतिम्,
8 9 10 12 11 16 14
प्रार्थयन्ते, ते, पुण्यम्, आसाद्य, सुरेन्द्रलोकम्, अश्नन्ति, दिव्यान्
13 15
दिवि, देवभोगान्।

भाषा :– परन्तु जो– त्रिवेद विधानोक्त सकाम कर्मों को करने वाले, सोमपान करने वाले, पापों से पवित्र हुए पुरुष, मुझ को यज्ञों द्वारा पूज कर स्वर्ग की कामना करते हैं, वे पुरुष अपने पुण्य-फल स्वरूप इन्द्रलोक को प्राप्त होकर स्वर्ग में अलौकिक देव भोगों को भोगते हैं।।२०।।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं,
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयी धर्म-मनुप्रपन्ना,
गतागतं कामकामा लभन्ते।।२१।।

1 2 5 4 3 7 6 8
ते, तम्, भुक्त्वा, स्वर्गलोकम्, विशालम्, क्षीणे, पुण्ये, मर्त्यलोकम्,
9 10 11 12 14 13
विशन्ति, एवम्, त्रयीधर्मम्, अनुप्रपन्ना, गतागतम्, कामकामाः,
15
लभन्ते।

भाषा :– और वे उस विशाल स्वर्ग लोक को भोग कर, पुण्य लाभ क्षीण होने पर पुनः मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार स्वर्ग प्राप्ति के साधनरूप तीनों वेदों में कहे हुए सकाम कर्मयोग के शरण हुए भोगों की लालसा वाले पुरुष बारम्बार जन्म मृत्यु के चक्र में फंसते हैं।।२१।।

अनन्या-श्चिन्तयन्तो मां, ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्या-भियुक्तानां, योग क्षेमं वहाम्यहम्।।२२।।

2 5 4 1 3 6 7

अनन्याः, चिन्तयन्तः, माम्, ये, जनाः, पर्युपासते, तेषाम्,

8 9 11 10

नित्याभियुक्तानाम्, योगक्षेमम्, वहामि, अहम्।

भाषा :– तथा जो अनन्य प्रेमी भक्तजन, मुझ परमेश्वर का नित्य चिन्तन करते हुए (निष्काम भाव से) भजते हैं, उन निरन्तर चिन्तन करने वाले पुरुषों का कल्याण मङ्गल मैं स्वयं उपलब्ध कराता हूँ।।२२।।

येऽप्यन्य-देवता भक्ता, यजन्ते श्रद्धयान्विताः।

तेऽपि मामेव कौन्तेय, यजन्त्यविधि-पूर्वकम्।।२३।।

5 2 7 6 8 3 4 9

ये, अपि, अन्यदेवताः, भक्ताः, यजन्ते, श्रद्धया, अन्विताः, ते,

10 11 12 1 13 14

अपि, माम्, एव, कौन्तेय, यजन्ति, अविधिपूर्वकम्।

भाषा :– और हे अर्जुन! यद्यपि श्रद्धायुक्त जो सकामी भक्तजन दूसरे देवों को पूजते हैं, वे भी मुझ को ही पूजते हैं, किन्तु उनका वह पूजन विधान अविधि पूर्वक अर्थात् अज्ञान परक है।।२३।।

अहं हि सर्वयज्ञानां, भोक्ता च प्रभुरेव च।

न तु मा-मभिजानन्ति, तत्त्वेनात-श्च्यवन्ति ते।।२४।।

7 1 2 3 4 5 8 6 13 9 11

अहम्, हि, सर्वयज्ञानाम्, भोक्ता, च, प्रभुः, एव, च, न, तु, माम्,

14 12 15 16 10

अभिजानन्ति, तत्त्वेन, अतः, च्यवन्ति, ते।

भाषा :– क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूँ, परन्तु वे मुझ (परब्रह्म परमेश्वर) को तत्व से नहीं जानते हैं, इसी कारण पतित होते हैं अर्थात् पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं।।२४।।

यान्ति देवव्रता देवान्,
पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या,
यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।२५।।

3 1 2 5 6 4 8 9
यान्ति, देवव्रताः, देवान्, पितॄन्, यान्ति, पितृव्रताः, भूतानि, यान्ति,
7 13 10 12 11
भूतेज्याः, यान्ति, मद्याजिनः, अपि, माम्।

भाषा :– देवपूजक देवों को प्राप्त होते हैं, पितृ-पूजक पितरों को प्राप्त होते हैं। भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मुझे ही प्राप्त होते हैं। अतः उनका पुनर्जन्म नहीं होता है।।२५।।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं, यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृत,- मश्नामि प्रयतात्मनः।।२६।।

1 2 3 4 5 6 7 8 11
पत्रम्, पुष्पम्, फलम्, तोयम्, यः मे, भक्त्या, प्रयच्छति, तत्,
12 10 13 9
अहम्, भक्त्युपहृतम्, अश्नामि, प्रयतात्मनः।

भाषा :– पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) में अन्तिम मोक्षपद प्राप्ति जीवन का चरम एवं परम लक्ष्य है और वासुदेव की भक्ति से यह पद निश्चित् रूप से सुलभ है। भक्त वत्सल भगवान् अपने पूजन की सुगमता बताते हुए अर्जुन से कहते हैं– पत्र, पुष्प, फल, जल इत्यादि जो कोई भक्त मेरे निमित्त श्रद्धा तथा प्रेम

से अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि निष्काम कर्मयोगी का अर्पण किया हुआ वह पत्र, पुष्पादि मैं सगुणरूप से प्रकट होकर प्रेम पूर्वक खाता हूँ।।२६।।

यत् करोषि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय, तत् कुरुष्व मदर्पणम्।।२७।।

2 3 4 5 6 7 9 8 10
यत्, करोषि, यत्, अश्नासि, यत्, जुहोषि, ददासि, यत्, यत्,
11 1 12 14 13
तपस्यसि, कौन्तेय, तत्, कुरुष्व, मदर्पणम्।

भाषा :– अतएव निष्काम कर्मयोग का पालन करते हुए– हे अर्जुन! तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ होम करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ स्वधर्माचरणरूप तप करता है, वह सब मेरे अर्पण करता जा।।२७।।

शुभाशुभ-फलैरेवं, मोक्ष्यसे कर्म-बन्धनैः।
संन्यास योग युक्तात्मा, विमुक्तो मा-मुपैष्यसि।।२८।।

3 1 5 4 2
शुभाशुभफलैः, एवम्, मोक्ष्यसे, कर्मबन्धनैः, संन्यासयोगयुक्तात्मा,
6 7 8
विमुक्तः, माम्, उपैष्यसि।

भाषा :– इस प्रकार समस्त कर्मों को मेरे अर्पण करने रूप संन्यासयोग से युक्त हुआ, तू शुभाशुभ फलरूप, कर्म बन्धन से मुक्त हुआ मुझे प्राप्त होगा।।२८।।

समोऽहं सर्वभूतेषु, न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या, मयि ते तेषु चाप्यहम्।।२९।।

3 1 2 4 5 6 7 8 9 11
समः, अहम्, सर्वभूतेषु, न, मे, द्वेष्यः, अस्ति, न, प्रियः, ये,
14 10 12 13 16 15 20 17 19 18
भजन्ति, तु, माम्, भक्त्या, मयि, ते, तेषु, च, अपि, अहम्।

भाषा :– यद्यपि मैं सब भूतों में समत्वभाव से व्यापक हूँ, न कोई मेरा शत्रु है और न मित्र है, परन्तु जो भक्त मुझको प्रेम से भजते हैं, वह मुझ में और मैं उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।।२९।।

अपि चेत् सुदुराचारो, भजते मा-मनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः, सम्यग् व्यवसितो हि सः।।३०।।

3 1 2 6 5 4 8 9
अपि, चेत्, सुदुराचारः, भजते, माम्, अनन्यभाक्, साधुः, एव,
7 10 13 14 11 12
सः, मन्तव्यः, सम्यक्, व्यवसितः, हि, सः।

भाषा :– यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त हुआ मेरे को प्रायाश्चित् भावना से निरन्तर भजता है, वह सज्जन ही मानने योग्य है क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है अर्थात् उसने भली प्रकार निश्चय कर लिया है कि भगवन्नाम स्मरण के समान प्रायाश्चित् का अन्य कोई साधन नहीं है।।३०।।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा, शश्व-च्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि, न मे भक्तः प्रणश्यति।।३१।।

1 3 2 4 5 6 7
क्षिप्रम्, भवति, धर्मात्मा, शश्वत्, शान्तिम्, निगच्छति, कौन्तेय,
8 9 12 10 11 13
प्रति, जानीहि, न, मे, भक्तः, प्रणश्यति।

भाषा :– अतः परिणाम स्वरूप– वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन

जाता है और सत्यसनातन शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।।३१।।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य,
येऽपि स्युः पाप योनयः।
स्त्रियो वैश्या-स्तथा शूद्रा,-
स्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।३२।।

13 1 2 14 2 8 10 7 3
माम्, हि, पार्थ, व्यपाश्रित्य, ये, अपि, स्युः, पापयोनयः, स्त्रियः,
4 6 5 11 12 17 15 16
वैश्याः, तथा, शूद्राः, ते, अपि, यान्ति, पराम्, गतिम्।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि-चाण्डालादि भी जो कोई हों वे भी मेरी शरण होकर परमगति को प्राप्त होते हैं।।३२।।

किं पुन-र्ब्राह्मणाः पुण्या, भक्ता राजर्षयस्थता।
अनित्य-मसुखं लोक,- मिमं प्राप्य भजस्व माम्।।३३।।

2 1 4 3 7 6 5 9
किम्, पुनः, ब्राह्मणाः, पुण्याः, भक्ताः, राजर्षयः, तथा, अनित्यम्,
8 11 10 12 14 13
असुखम्, लोकम्, इमम्, प्राप्य, भजस्व, माम्।

भाषा :– फिर इसमें कहना ही क्या है, जो पुण्यशील ब्राह्मण तथा राजर्षि भक्त जन मेरे आश्रित हो परमगति को प्राप्त होते हैं। अतः तू सुखरहित, क्षणभङ्गुर, इस मनुष्य देह को प्राप्त होकर, निरन्तर मेरा ही भजन कर।।३३।।

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामे-वैष्यसि युक्त्वेव,- मात्मानं मत् परायणः॥३४॥

1 2 3 4 5 6 11 12
मन्मना, भव, मद्भक्तः, मद्याजी, माम्, नमस्कुरु, माम्, एव,
13 10 7 9 8
ऐष्यसि, युक्त्वा, एवम्, आत्मानम्, मत्परायणः।

भाषा :– अतएव हे अर्जुन! तू मुझ में मन वाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजनार्चन करने वाला हो, मुझ को प्रणाम कर। इस प्रकार मेरी शरण में हुआ तू आत्मा को मुझ में नियुक्त करके मेरे परायण होकर मुझ को ही प्राप्त होगा॥३४॥

ॐ तत्सदिति-श्रीमद्भगवद्गीतासूप-निषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु॥९॥

श्लोकाः ३४ गतश्लोकानि ३३८ एवमादितः ३७२









॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

भूय एव महाबाहो, शृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय, वक्ष्यामि हितकाम्यया॥१॥

2 3 1 7 4 5 6 8 10 9
भूयः, एव, महाबाहो, शृणु, मे, परमम्, वचः, यत्, ते, अहम्,
11 13 12
प्रीयमाणाय, वक्ष्यामि, हितकाम्यया।

भाषा :– श्रीभगवान् बोले– हे महाबाहो (अर्जुन)! फिर भी मेरे परम रहस्य एवं प्रभावयुक्त वचन को सुन, जो कि मैं तुझ अत्यन्त प्रेम रखने वाले के हित की इच्छा से कहूँगा॥१॥

न मे विदुः सुरगणाः, प्रभवं न महर्षयः।
अहमादि-र्हि देवानां, महर्षीणां च सर्वशः॥२॥

3 1 7 4 2 5 6 9 14 8
न, मे, विदुः, सुरगणाः, प्रभवम्, न, महर्षयः, अहम्, आदिः, हि,
11 13 12 10
देवानाम्, महर्षीणाम्, च, सर्वशः।

भाषा :– मेरी उत्पत्ति को अर्थात् विभूति सहित लीला से अवतरित होने को, न देवता लोग और न ही महर्षिगण ही जानते हैं, क्योंकि मैं सब प्रकार से देवताओं और महर्षियों का भी आदि कारण हूँ॥२॥

यो मा-मज-मनादिं च, वेत्ति लोक महेश्वरम्।
असम्मूढः स मर्त्येषु, सर्व पापैः प्रमुच्यते॥३॥

1 2 3 4 5 7 6 10
यः, माम्, अजम्, अनादिम्, च, वेत्ति, लोकमहेश्वरम्, असंमूढः,
8 9 11 12
सः, मर्त्येषु, सर्वपापैः, प्रमुच्यते।

भाषा :– जो मुझको अजन्मा, अनादि और लोकों का महान् ईश्वर (तत्त्व से) जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान् पुरुष सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है॥३॥

बुद्धि-र्ज्ञान-मसम्मोहः, क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भवोऽभावो, भयं चाभय-मेव च॥४॥

1 2 3 4 5 6 7 8
बुद्धिः, ज्ञानम्, असंमोहः, क्षमा, सत्यम्, दमः, शमः, सुखम्,
9 10 12 13 11 15 16 14
दुःखम्, भवः, अभावः, भयम्, च, अभयम्, एव, च।

भाषा :– निश्चय करने की शक्ति, यथार्थज्ञान, विवेक, क्षमा, सत्य, इन्द्रिय निग्रह, मन को वश करना तथा सुख, दुःख, उत्पत्ति, प्रलय, भय और अभय भी...।।४।।

अहिंसा समता तुष्टि,- स्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां, मत्त एव पृथग्विधाः।।५।।

1 2 3 4 5 6 7 14 11
अहिंसा, समता, तुष्टिः, तपः, दानम्, यशः, अयशः, भवन्ति, भावाः,
8 12 13 9 10
भूतानाम्, मत्तः, एव, पृथक्, विधाः।

भाषा :– तथा– अहिंसा, समभाव, सन्तोष, तप, दान, यश-अपयश, ऐसे ये प्राणियों के नाना प्रकार के भाव मुझ से ही होते हैं।।५।।

महर्षयः सप्त पूर्वे, चत्वारो मनव-स्तथा।
मद्भावा मानसा जाता, येषां लोक इमाः प्रजाः।।६।।

2 1 4 3 6 5 7 8
महर्षयः, सप्त, पूर्वे, चत्वरः, मनवः, तथा, मद्भावाः, मानसाः,
10 11 12 13 14
जाताः, येषाम्, लोक, इमाः, प्रजाः।

भाषा :– तथा– सात महर्षिगण और चार उनसे भी पूर्व में होने वाले चार (सनकादि) और स्वयंभू आदि चौदह मनु ये मुझ में भाव वाले, सबके सब मेरे संकल्प से उत्पन्न हुए हैं, जिनकी संसार में यह सम्पूर्ण प्रजा है।।६।।

एतां विभूतिं योगं च, मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन, युज्यते नात्र संशयः।।७।।

2 4 6 5 3 1 8 7 9
एताम्, विभूतिम्, योगम्, च, मम, यः, वेत्ति, तत्त्वतः, सः,
10 11 12 15 13 14
अविकम्पेन, योगेन, युज्यते, न, अत्र, संशयः।

भाषा :– तथा जो पुरुष इस मेरी परमैश्वर्य रूप विभूति को और योगशक्ति को तत्त्व से जानता है, वह निश्चल ध्यान योग द्वारा मेरे में ही एकीभाव से स्थित होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।।७।।

अहं सर्वस्य प्रभवो, मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां, बुधा भाव समन्विताः।।८।।

1 2 3 4 5 6 7 8 12
अहम्, सर्वस्य, प्रभवः, मत्तः, सर्वम्, प्रवर्तते, इति, मत्वा, भजन्ते,
11 10 9
माम्, बुधाः, भावसमन्विताः।

भाषा :– मैं (वासुदेव) ही सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति का कारण हूँ और मुझसे ही सब जगत् चेष्टा करता है। इस प्रकार तत्त्व से समझ कर श्रद्धा-भक्तियुक्त बुद्धिमान् भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरन्तर भजते हैं।।८।।

मच्चित्ता मद्गत प्राणा, बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं, तुष्यन्ति च रमन्ति च।।९।।

1 2 5 4 8 6
मच्चित्ताः, मद्गतप्राणाः, बोधयन्तः, परस्परम्, कथयन्तः, च,
7 3 10 9 12 11
माम्, नित्यम्, तुष्यन्ति, च, रमन्ति, च।

भाषा :– और वे भक्तजन मुझ में निरन्तर मन लगाने वाले तथा मेरे में ही प्राणों को अर्पण करने वाले सदा ही मेरी भक्ति की चर्चा

के द्वारा आपस में मेरे प्रभाव को जानते हुए तथा गुण और प्रभाव सहित मेरा कथन करते हुए ही सन्तुष्ट होते हैं और मुझ में ही रमते हैं।।९।।

तेषां सतत युक्तानां, भजतां प्रीति पूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं, येन मा-मुपयान्ति ते।।१०।।

1 2 4 3 7 6
तेषाम्, सततयुक्तानाम्, भजताम्, प्रीतिपूर्वकम्, ददामि, बुद्धियोगम्,
5 8 10 11 9
तम्, येन, माम्, उपयान्ति, ते।

भाषा :– तथा उन निरन्तर मेरे ध्यान में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तजनों को मैं वह तत्त्वज्ञान रूप योग देता हूँ जिससे वे मुझे ही प्राप्त होते हैं।।१०।।

तेषा-मेवानु-कम्पार्थ,- मह-मज्ञानजं तमः।
नाशया-म्यात्म भावस्थो, ज्ञान दीपेन भास्वता।।११।।

1 3 2 4 6 7 10
तेषाम्, एव, अनुकम्पार्थम्, अहम्, अज्ञानजम्, तमः, नाशयामि,
5 9 8
आत्मभावस्थः, ज्ञानदीपेन, भास्वता।

भाषा :– तथा उन पर कृपा करने के लिए ही मैं स्वयं उनके अन्तःकरण में स्थित हो, अज्ञान से उत्पन्न हुए अन्धकार को प्रकाशमय तत्त्वज्ञान रूप दीपक द्वारा नष्ट कर देता हूँ।।११।।

अर्जुन उवाच

परं ब्रह्म परं धाम, पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्य,- मादिदेव-मजं विभुम्।।१२।।

आहु-स्त्वा-मृषयः सर्वे, देवर्षि-र्नारद-स्तथा।
असितो देवलो व्यासः, स्वयं चैव ब्रवीषि मे॥१३॥

2 3 4 5 7 6 1 3 11
परम्, ब्रह्म, परम्, धाम, परवित्रम्, परमम्, भवान्, पुरुषम्, शाश्वतम्,
12 14 15 16 17 8 10 9
दिव्यम्, आदिदेवम्, अजम्, विभुम्, आहुः, त्वाम्, ऋषयः, सर्वे,
19 20 18 21 22 23 25 24 26
देवर्षिः, नारदः, तथा, असितः, देवलः, व्यासः, स्वयम्, च, एव,
28 27
ब्रवीषि, मे।

भाषा :– इन पूर्व वर्णित तत्त्व ज्ञान की बातों को श्रवण कर अर्जुन बोले– आप परम ब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र हैं, क्योंकि आपको सब ऋषिगण सनातन, दिव्य पुरुष, आदि देव, अजन्मा तथा सर्वव्यापी कहते हैं। वैसे ही देवर्षि नारद, असित और देवल ऋषि, महर्षि व्यास तथा स्वयं आप भी मेरे प्रति कहते हैं॥१२-१३॥

सर्वमेत-दृतं मन्ये, यन् मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन् व्यक्तिं, विदु-र्देवा न दानवाः॥१४॥

6 5 7 8 2 3 4 1 12 15 10
सर्वम्, एतत्, ऋतम्, मन्ये, यत्, माम्, वदसि, केशव, न, हि, ते,
9 11 17 13 14 16
भगवन्, व्यक्तिम्, विदुः, देवाः, न, दानवाः।

भाषा :– हे केशव! जो कुछ भी आप मेरे प्रति कहते हैं, इस सब को मैं सत्य मानता हूँ। हे भगवन्! आपके लीलामय स्वरूप को न ही देवगण और न ही असुरगण जानते हैं॥१४॥

स्वय-मेवा-त्मना-त्मानं, वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूत भावन भूतेश, देव देव जगत्पते॥१५॥

7 8 9 10 11 6 5 1
स्वयम्, एव, अत्मना, आत्मानम्, वेत्थ, त्वम्, पुरुषोत्तम, भूतभावन,
2 3 4
भूतेश, देवदेव, जगत्पते।

भाषा :– हे भूतों को उत्पन्न करने वाले! हे भूतेश्वर! हे देवादिदेव! हे जगदीश्वर! हे पुरुषोत्तम्! आप स्वयं ही अपने से अपने को जानते हो।।१५।।

वक्तुमर्ह-स्यशेषेण,
दिव्या ह्यात्म विभूतयः।
याभि-र्विभूतिभि-र्लोका,-
निमां-स्त्वं व्याप्य तिष्ठसि।।१६।।

6 7 5 3 2 4 8
वक्तुम्, अर्हसि, अशेषेण, दिव्याः, हि, आत्मविभूतयः, याभिः,
9 11 10 1 12 13
विभूतिभिः, लोकान, इमान्, त्वम्, व्याप्य, तिष्ठसि।

भाषा :– अतः आप ही उन अपनी विभूतियों को सम्पूर्णतया कहने में समर्थ हैं, जिन विभूतियों के द्वारा इन सब लोकों को व्याप्त कर स्थित हैं।।१६।।

कथं विद्यामहं योगिं,- स्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु, चिन्त्योऽसि भगवन् मया।।१७।।

3 7 2 1 6 4 5 10
कथम्, विद्याम्, अहम्, योगिन्, त्वाम्, सदा, परिचिन्तयन्, केषु,
11 8 12 14 15 9 13
केषु, च, भावेषु, चिन्त्यः, असि, भगवन्, मया।

भाषा :– हे योगीराज! मैं किस प्रकार निरन्तर चिन्तन करता

हुआ आप को जानूँ? और हे भगवन्! आप किन-किन भावों में मेरे द्वारा चिन्तन करने योग्य हैं?।।१७।।

विस्तरेणा-त्मनो योगं, विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्ति-र्हि, शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्।।१८।।

7 2 3 5 4 1 6 8
विस्तरेण, आत्मनः, योगम्, विभूतिम्, च, जनार्दन, भूयः, कथय,
13 9 11 14 15 12 10
तृप्तिः, हि, शृण्वतः, न, अस्ति, मे, अमृतम्।

भाषा :– हे जनार्दन! अपनी योगशक्ति और विभूति को फिर भी विस्तारपूर्वक कहिए, क्योंकि आपके अमृतमय वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती अर्थात् सुनने की लालसा बनी ही रहती है।।१८।।

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि, दिव्या ह्यात्म विभूतयः।
प्राधान्यतः कुरु श्रेष्ठ, ना-स्त्यन्तो विस्तरस्य मे।।१९।।

2 3 7 4 8 5 6
हन्त, ते, कथयिष्यामि, दिव्याः, हि, आत्मविभूतयः, प्राधान्यतः,
1 12 13 11 10 9
कुरुश्रेष्ठ, न, अस्ति, अन्तः, विस्तरस्य, मे।

भाषा :– श्रीभगवान् बोले – हे कुरुरेष्ठ! अब मैं तेरे लिएअपनी दिव्यविभूतियों को प्रधानता से कहूँगा, क्योंकि मेरे विस्तार का अन्त नहीं है।।१९।।

अह-मात्मा गुडाकेश, सर्व भूता-शयस्थितः।
अह-मादिश्च मध्यं च, भूताना-मन्त एव च।।२०।।

2 4 1 3 12 7 9
अहम्, आत्मा, गुडाकेश, सर्वभूताशयस्थितः, अहम्, आदिः, च,
8 5 6 10 13 11
मध्यम्, च, भूतानाम्, अन्तः, एव, च।

भाषा :– हे निद्राजयी (अर्जुन)! मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सब का आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ।।२०।।

आदित्याना-महं विष्णु,- र्ज्योतिषां रवि-रंशुमान्।
मरीचि-र्मरुता-मस्मि, नक्षत्राणा-महं शशी।।२१।।

2 1 3 4 6 5 9
आदित्यानाम्, अहम्, विष्णुः, ज्योतिषाम्, रविः, अंशुमान्, मरीचिः,
8 12 10 7 11
मरुताम्, अस्मि, नक्षत्राणाम्, अहम्, शशी।

भाषा :– मैं अदिति पुत्र-द्वादश आदित्यों में विष्णुः, ज्योतियों में किरणों वाला सूर्यदेव, उन्चास वायुदेवताओं में मरीचि तथा नक्षत्राधिपति चन्द्रमा हूँ।।२१।।

वेदानां सामवेदोऽस्मि, देवाना-मस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मन-श्चास्मि, भूताना-मस्मि चेतना।।२२।।

1 2 3 4 6 5 8
वेदानाम्, सामवेदः, अस्मि, देवानाम्, अस्मि, वासवः, इन्द्रियाणाम्,
9 7 10 11 13 12
मनः, च, अस्मि, भूतानाम्, अस्मि, चेतना।

भाषा :– तथा वेदों में सामवेद हूँ, देवों में इन्द्र हूँ और इन्द्रियों में मन हूँ तथा भूत प्राणियों की चेतना अर्थात् जीवन शक्ति हूँ।।२२।।

रुद्राणां शंकर-श्चास्मि, वित्तेशो यक्ष रक्षसाम्।
वसूनां पावक-श्चास्मि, मेरुः शिखरिणा-महम्॥२३॥

1 2 4 3 6 5 9
रुद्राणाम्, शंकरः, च, अस्मि, वित्तेशः, यक्षरक्षसाम्, वसूनाम्,
10 7 11 13 12 8
पावकः, च, अस्मि, मेरुः, शिखरिणाम्, अहम्।

भाषा :– एकादशरुद्रों में शंकर हूँ और यक्ष तथा राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर हूँ तथा मैं आठ वसुओं में अग्नि हूँ, शिखर वाले पर्वतों में सुमेरु पर्वत हूँ॥२३॥

पुरोधसां च मुख्यं मां, विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीना-महं स्कन्दः, सरसा-मस्मि सागरः॥२४॥

1 6 2 4 5 7 3 9
पुरोधसाम्, च, मुख्यम्, माम्, विद्धि, पार्थ, बृहस्पतिम्, सेनानीनाम्,
8 10 11 13 12
अहम्, स्कन्दः, सरसाम्, अस्मि, सागरः।

भाषा :– तू पुरोहितों में मुख्या 'बृहस्पति' मुझ को जान और हे अर्जुन! मैं सेनापतियों में स्वामी कार्तिकेय और जलाशयों में सागर हूँ॥२४॥

महर्षीणां भृगु-रहं, गिरा-मस्म्येक-मक्षरम्।
यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि, स्थावराणां हिमालयः॥२५॥

2 3 1 4 7 5 6 8
महर्षीणाम्, भृगुः, अहम्, गिराम्, अस्मि, एकम्, अक्षरम्, यज्ञानाम्,
9 12 10 11
जपयज्ञः, अस्मि, स्थावराणाम्, हिमालयः।

भाषा :– मैं महर्षियों में भृगु, वाणी व वचनों में एक अक्षर (ओंकार) हूँ। यज्ञों में जपयज्ञ तथा अचलों (स्थिर रहने वालों) में हिमालय हूँ।।२५।।

अश्वत्थः सर्व वृक्षाणां, देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः, सिद्धानां कपिलो मुनिः।।२६।।

2 1 4 3 5 6
अश्वत्थः, सर्ववृक्षाणाम्, देवर्षीणाम्, च, नारदः, गन्धर्वाणाम्,
7 8 9 10
चित्ररथः, सिद्धानाम्, कपिलः, मुनिः।

भाषा :– सब वृक्षों में पीपल और देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ तथा सिद्धों में कपिल मुनि हूँ।।२६।।

उच्चैःश्रवस-मश्वानां, विद्धि माम-मृतोद्भवम्।
ऐरावतं गजेन्द्राणां, नराणां च नराधिपम्।।२७।।

3 1 10 9 2 5
उच्चैःश्रवसम्, अश्वानाम्, विद्धि, माम्, अमृतोद्भवम्, ऐरावतम्,
4 7 6 8
गजेन्द्राणाम्, नराणाम्, च, नराधिपम्।

भाषा :– घोड़ों में अमृत के साथ उत्पन्न होने वाला उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, गजराजों में ऐरावत नामक हाथी और मनुष्यों में राजा मुझ को ही जान।।२७।।

आयुधाना-महं वज्रं, धेनुना-मस्मि कामधुक्।
प्रजन-श्चास्मि कन्दर्पः, सर्पाणा-मस्मि वासुकिः।।२८।।

2 1 3 4 6 5 8 7
आयुधानाम्, अहम्, वज्रम्, धेनुनाम्, अस्मि, कामधुक्, प्रजनः, च,
10 9 11 13 12
अस्मि, कन्दर्पः, सर्पाणाम्, अस्मि, वासुकिः।

भाषा :– मैं शस्त्रों में वज्र, गायों में कामधेनु गाय हूँ। शास्त्रोक्तसन्तान की उत्पत्ति का हेतु कामदेव हूँ तथा सर्पों में सर्पराज वासुकि हूँ।।२८।।

अनन्त-श्चास्मि नागानां, वरुणो यादसा-महम्।
पितॄणाम-र्यमा चास्मि, यमः संयमता-महम्।।२९।।

3 4 7 2 6 5 1 9
अनन्तः, च, अस्मि, नागानाम्, वरुणः, यादसाम्, अहम्, पितॄणाम्,
10 8 14 12 11 13
अर्यमा, च, अस्मि, यमः, संयमताम्, अहम्।

भाषा :– मैं ही नागों में 'शेषनाग' और जलचरों में उनका स्वामी 'वरुण' हूँ। तथा पितरों में अर्यमा नाम पित्रेश्वर और शासन करने वालों में यमराज हूँ।।२९।।

प्रह्लाद-श्चास्मि दैत्यानां, कालः कलयता-महम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं, वैनतेयश्च पक्षिणाम्।।३०।।

3 4 7 2 6 5 1
प्रह्लादः, च, अस्मि, दैत्यानाम्, कालः, कलयताम्, अहम्,
9 8 10 14 13 11 12
मृगाणाम्, च, मृगेन्द्रः, अहम्, वैनतेयः, च, पक्षिणाम्।

भाषा :– मैं दैत्यों में प्रह्लाद और गणना करने वालों में समय हूँ। और पशुओं में मृगराज (सिंह) तथा पक्षियों में पक्षीराज गरुड़ हूँ।।३०।।

पवनः पवता-मस्मि, रामः शस्त्रभृता-महम्।
झषाणां मकर-श्चास्मि, स्त्रोतसा-मस्मि जाह्नवी।।३१।।

3 2 4 6 5 1 8
पवनः, पवताम्, अस्मि, रामः, शस्त्रभृताम्, अहम्, झषाणाम्,
9 7 10 11 13 12
मकरः, च, अस्मि, स्त्रोतसाम्, अस्मि, जाह्नवी।

भाषा :– मैं पावन करने वालों में पवनदेव हूँ; शस्त्रधारियों में राम, मच्छलियों में मगरमच्छ तथा नदियों में गंगा हूँ।।३१।।

सर्गाणा-मादिर-न्तश्च, मध्यं चैवा-हमर्जुन।

अध्यात्म विद्या विद्यानां, वादः प्रवदतामहम्।।३२।।

1 2 3 4 5 6 8 7 9

सर्गाणाम्, आदिः, अन्तः, च, मध्यम्, च, एव, अहम्, अर्जुन,

11 10 13 12 14

अध्यात्मविद्या, विद्यानाम्, वादः, प्रवदताम्, अहम्।

भाषा :– सृष्टियों का आदि,अन्त और मध्य मैं ही हूँ। हे अर्जुन! विद्याओं में ब्रह्मविद्या, परस्पर विवाद करने वालों में तत्त्व निर्णय के लिए किया जाने वाला विचार-विमर्श मैं ही हूँ।।३२।।

अक्षराणा-मकारोऽस्मि, द्वन्द्वः सामासिकस्य च।

अह-मेवा-क्षयः कालो, धाताहं विश्वतोमुखः।।३३।।

2 3 7 6 5 4 1

अक्षराणाम्, अकारः, अस्मि, द्वन्द्वः, सामासिकस्य, च, अहम्,

13 8 9 11 12 10

एव, अक्षयः, कालः, धाता, अहम्, विश्वतोमुखः।

भाषा :– मैं अक्षरों में 'अकार' और समासों में 'द्वन्द्व समास' हूँ। अक्षय काल अर्थात् महाकाल और विराट् स्वरूप सब को धारण पोषण करने वाला मैं ही हूँ।।३३।।

मृत्युः सर्व-हरश्चाह,- मुद्भवश्च भविष्यताम्।

कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां, स्मृति-र्मेधा धृतिः क्षमा।।३४।।

3 2 4 1 6 7 5 9

मृत्युः, सर्वहरः, च, अहम्, उद्भवः, च, भविष्यताम्, कीर्तिः,

10 11 15 8 12 13 14 16

श्रीः, वाक्, च, नारीणाम्, स्मृतिः, मेधा, धृतिः, क्षमा।

भाषा :– मैं सर्वनाशक मृत्यु और आगे होने वालों की उत्पत्ति का कारण हूँ। स्त्रियों में यश, धन, वाणी, स्मृति, बुद्धिकौशल, धैर्य तथा क्षमाभाव हूँ।।३४।।

बृहत्साम तथा साम्नां, गायत्री छन्दसा-महम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽह,- मृतूनां कुसुमाकरः।।३५।।

4 1 3 6 5 2 7
बृहत्साम, तथा, साम्नाम्, गायत्री, छन्दसाम्, अहम्, मासानाम्,
8 11 9 10
मार्गशीर्षः, अहम्, ऋतूनाम्, कुसुमाकरः।

भाषा :– तथा मैं गायन करने योग्य श्रुतियों में सामवेद का मन्त्र, छन्दों में चौबीसाक्षरी गायत्री छन्द, मासों में मार्गशीर्ष तथा ऋतुओं में बसन्त हूँ।।३५।।

द्यूतं छलयता-मस्मि, तेज-स्तेजस्विना-महम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि, सत्त्वं सत्त्व-वतामहम्।।३६।।

3 2 6 5 4 1 8
द्यूतम्, छलयताम्, अस्मि, तेजः, तेजस्विनाम्, अहम्, जयः,
9 10 13 12 11 7
अस्मि, व्यवसायः, अस्मि, सत्वम्, सत्त्ववताम्, अहम्।

भाषा :– मैं छलियों में जुआ, तेजस्वियों का तेज हूँ। मैं जय हूँ, व्यवसाय अर्थात् निश्चय हूँ तथा सात्त्विक पुरुषों का सात्त्विक भाव हूँ।।३६।।

वृष्णीणां वासुदेवोऽस्मि, पाण्डवानां धनंजयः।
मुनीना-मप्यहं व्यासः, कवीना-मुशना कविः।।३७।।

1 2 12 3 4 5
वृष्णीणाम्, वासुदेवः, अस्मि, पाण्डवानाम्, धनंजयः, मुनीनाम्,
10 11 6 7 8 9
अपि, अहम्, व्यासः, कवीनाम्, उशना, कविः।

भाषा :– वृष्णी वंशियों में मैं स्वयं वासुदेव, पाण्डवों में तुम धनंजय, मुनियों में व्यास और कवियों में शुक्रचार्य कवि भी मैं ही हूँ।।३७।।

दण्डो दमयता-मस्मि, नीति-रस्मि जिगीषताम्।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां, ज्ञानं ज्ञानवता-महम्।।३८।।

3 2 4 6 7 5 9 1
दण्डः, दमयताम्, अस्मि, नीतिः, अस्मि, जिगीषताम्, मौनम्, च,
14 10 8 12 11 13
एव, अस्मि, गुह्यानाम्, ज्ञानम्, ज्ञानवताम्, अहम्।

भाषा :– तथा– दण्ड धारियों का दण्ड विधान हूँ, विजयाभिलाषियों की नीति हूँ। गुप्त भावों में मौन तथा ज्ञानियों का तत्त्व ज्ञान मैं ही हूँ।।३८।।

यच्चापि सर्वभूतानां, बीजं तद-हमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्, मया भूतं चराचरम्।।३९।।

3 1 7 4 5 6 8 2 12 9
यत्, च, अपि, सर्वभूतानाम्, बीजम्, तत्, अहम्, अर्जुन, न, तत्,
13 16 14 17 15 11 10
अस्ति, विना, यत्, स्यात्, मया, भूतम्, चराचरम्।

भाषा :– और हे अर्जुन! जो सब भूतों की उत्पत्ति का कारण है, वह भी मैं ही हूँ, क्योंकि ऐसा चर और अचर कोई भी भूत नहीं है, जो मुझ से रहित हो।।३९।।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां, विभूतीनां परन्तप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो, विभूते-र्विस्तरो मया।।४०।।

6 5 7 2 3 4 1 8 9
न, अन्तः, अस्ति, मम, दिव्यानाम्, विभूतीनाम्, परन्तप, एषः, तु,
13 14 11 12 10
उद्देशतः, प्रोक्तः, विभूतेः, विस्तरः, मया।

भाषा :– हे परंतप! मेरी दिव्यविभूतियों का अन्त नहीं है। ये तो मैंने अपनी विभूतियों अर्थात् शक्तियों का विस्तार तेरे लिए संक्षेप में कहा है।।४०।।

यद्यद् विभूतिमत् सत्त्वं, श्रीमदूर्जित-मेव वा।
तत् तदेवाव-गच्छ त्वं, मम तेजोंऽश सम्भवम्।।४१।।

1 2 4 8 5 7 3 6 9
यत्, यत्, विभूतिमत्, सत्त्वम्, श्रीमत्, ऊर्जितम्, एव, वा, तत्,
10 14 15 11 12 13
तत्, एव, अवगच्छ, त्वम्, मम, तेजोंऽशसम्भवम्।

भाषा :– जो जो भी एश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त व शक्ति युक्त वस्तु है, उस उस को तू मेरे तेज के अंश से उत्पन्न हुआ जान।।४१।।

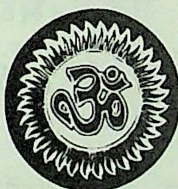
अथवा बहुनैतेन, किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्या-हमिदं कृत्स्न,- मेकांशेन-स्थितो जगत्।।४२।।

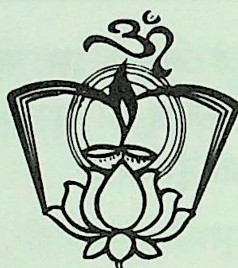
1 4 3 7 5 6 2 13
अथवा, बहुना, एतेन, किम्, ज्ञातेन, तव, अर्जुन, विष्टभ्य,
8 9 10 12 14 11
अहम्, इदम्, कृत्स्नम्, एकांशेन, स्थितः, जगत्।

भाषा :– अथवा हे अर्जुन! इस बहुत जानने से तेरा क्या प्रयोजन है? मैं इस सम्पूर्ण जगत् को अपनी योगशक्ति के एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूँ।।४२।।

ओं तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे विभूति-योगो नाम दशमोऽध्यायः श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु।।१०।।

श्लोकाः ४२ गतश्लोकानि ३७२ एवमादितः ४१४





॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथैकादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

मदनु-ग्रहाय परमं, गुह्य-मध्यात्म संज्ञितम्।
यत् त्वयोक्तं वचस्तेन, मोहोऽयं विगतो मम॥१॥

1 2 3 4 7 6 8
मदनुग्रहाय, परमम्, गुह्यम्, अध्यात्मसंज्ञितम्, यत्, त्वया, उक्तम्,
5 9 12 11 13 10
वचः, तेन, मोहः, अयम्, विगतः, मम्।

भाषा :– अर्जुन बोले– मुझ पर अनुग्रह (कृपा) करने के लिए परमगोपनीय 'अध्यात्म विषयक' उपदेश जो आपके द्वारा कहा गया, उससे मेरा यह अज्ञान नष्ट हो गया है॥१॥

भवा-प्ययौ हि भूतानां, श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमल-पत्राक्ष, माहा-त्म्यमपि चाव्ययम्।।२।।

6 1 5 8 7 3 4
भवाप्ययौ, हि, भूतानाम्, श्रुतौ, विस्तरशः, मया, त्वत्तः,
2 11 12 9 10
कमलपत्राक्ष, माहात्म्यम्, अपि, च, अव्ययम्।

भाषा :– क्योंकि हे कमलनेत्र! मैंने आपसे भूतों की उत्पत्ति और विनाश विस्तार से सुने हैं तथा आपकी सनातन महिमा भी सुनी।।२।।

एव-मेतद् यथात्थ त्व,- मात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टु-मिच्छामि ते रूप,- मैश्वरं पुरुषोत्तम।।३।।

7 6 4 5 2 3 1 12
एवम्, एतत्, यथा, आत्थ, त्वम्, आत्मानम्, परमेश्वर, द्रष्टुम्,
13 8 10 9 11
इच्छामि, ते, रूपम्, ऐश्वरम्, पुरुषोत्तम।

भाषा :– हे परमेश्वर! आप अपने को जैसा कहते हैं, यह वास्तव में ऐसा ही है; परन्तु आपके ज्ञान, ऐश्वर्य शक्ति, बलवीर्य एवं तेजयुक्त स्वरूप को हे पुरुषोत्तम! मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ।।३।।

मन्यसे यदि तच्छक्यं, मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं, दर्शया-त्मान-मव्ययम्।।४।।

8 2 4 6 3 5 7 1 10
मन्यसे, यदि, तत्, शक्यम्, मया, द्रष्टुम्, इति, प्रभो, योगेश्वर,
9 14 11 15 13 12
ततः, मे, त्वम्, दर्शय, आत्मानम्, अव्ययम्।

भाषा :– हे प्रभो! यदि मेरे द्वारा आपका वह रूप देखा जाना सम्भव है तथा आप यदि ऐसा मानते हैं, तो हे योगीराज! आप उस अविनाशी विराट् स्वरूप का मुझे दर्शन कराइये।।४।।

श्री भगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि, शतशोऽथ सहस्रशः।
नाना विधानि दिव्यानि, नाना वर्णाकृतीनि च।।५।।

11 2 1 10 3 4 5 6
पश्य, मे, पार्थ, रूपाणि, शतशः, अथ, सहस्रशः, नानाविधानि,
9 8 7
दिव्यानि, नानावर्णाकृतीनि, च।

भाषा :– श्री भगवान् बोले– हे पृथापुत्र! मेरे सैंकड़ों तथा हज़ारों नाना प्रकार के तथा नाना वर्ण और आकृति वाले दिव्य रूपों को देख।।५।।

पश्या-दित्यान् वसून् रुद्रा,- नश्विनौ मरुत-स्तथा।
बहू-न्यदृष्ट पूर्वाणि, पश्या-श्चर्याणि भारत।।६।।

7 2 3 4 5 6 8 9
पश्य, आदित्यान्, वसून्, रुद्रान्, अश्विनौ, मरुतः, तथा, बहूनि,
10 12 11 1
अदृष्टपूर्वाणि, पश्य, आश्चर्याणि, भारत।

भाषा :– हे भरत वंशी अर्जुन! तू मुझ में आदित्यों, आठ वसुओं, एकादशरुद्रों, दो अश्विनी कुमारों, उनचास मरुद्गणों को देख तथा और भी अन्यान्य पहले न देखे हुए आश्चर्यमय रूपों को देख।।६।।

इहैकस्थं जगत् कृत्स्नं, पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश, यच्चान्यद् द्रष्टुमिच्छसि।।७।।

3 6 9 8 10 2 7 4
इह, एकस्थम्, जगत्, कृत्स्नम्, पश्य, अद्य, सचराचरम्, मम,
5 1 13 12 11 14 15
देहे, गुडाकेश, यत्, च, अन्यत्, द्रष्टुम्, इच्छसि।

भाषा :– हे निद्राजयी अर्जुन! अब इस मेरे शरीर में एक जगह स्थित हुए चर और अचर सहित सम्पूर्ण संसार को देख तथा जो कुछ और भी देखना चाहता है, उसे भी देख।।७।।

न तु मां शक्यसे द्रष्टु,- मनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः, पश्य मे योग-मैश्वरम्।।८।।

7 1 2 8 5 3 6 4 10
न, तु, माम्, शक्यसे, द्रष्टम्, अनेन, एव, स्वचक्षुषा, दिव्यम्,
12 9 11 16 13 15 14
ददामि, ते, चक्षुः, पश्य, मे, योगम्, ऐश्वरम्।

भाषा :– परन्तु मुझ को तू इन अपने नेत्रों द्वारा देखने में असमर्थ है, अतः मैं तुझे दिव्यनेत्रप्रदान करता हूँ, उनसे तू मेरे प्रभाव तथा योग शक्ति की लीला देख।।८।।

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन्, महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय, परमं रूप-मैश्वरम्।।९।।

4 5 6 1 2 3 11
एवम्, उक्त्वा, ततः, राजन्, महायोगेश्वरः, हरिः, दर्शयामास,
7 8 10 9
पार्थाय, परमम्, रूपम्, ऐश्वरम्।

भाषा :– संजय बोले– हे राजा धृतराष्ट्र! महायोगीराज भगवान् कृष्ण ने इस प्रकार कहकर उसके पश्चात् अर्जुन को परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्यस्वरूप दिखलाया।।९।।

अनेक वक्त्र-नयन,- मनेकाद्भुत दर्शनम्।
अनेक दिव्या-भरणं, दिव्या-नेकोद्यता-युधम्।।१०।।

दिव्य माल्याम्बर धरं, दिव्य गन्धानु लेपनम्।
सर्वाश्चर्य मयं देव,- मनन्तं विश्वतो मुखम्।।११।।

1 2 3
अनेकवक्त्रनयनम्, अनेकाद्भुतदर्शनम्, अनेकदिव्याभरणम्,
4 5 6
दिव्यानेकोद्यतायुधम्, दिव्यमाल्याम्बरधरम्, दिव्यगन्धानुलेपनम्,
7 8 11 9 10
सर्वाः, आश्चर्यमयम्, देवम्, अनन्तम्, विश्वतोमुखम्।

भाषा :– अनेक मुख और नेत्रों से युक्त, अनेक अद्भुत दर्शनों वाले, अनेक वस्त्रों को धारण किये हुए, दिव्य गन्ध का सारे शरीर में लेप किये हुए, सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त, असीम और सब ओर मुख किये हुए विराट् स्वरूप परमदेव परमेश्वर को अर्जुन ने देखा।।१०-११।।

दिवि सूर्य-सहस्रस्य, भवेद् युग-पदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्, भास-स्तस्य महात्मनः।।१२।।

1 2 6 3 4 12 5 11
दिवि, सूर्यसहस्रस्य, भवेत्, युगपत्, उत्थिता, यदि, भाः, सदृशी,
7 13 10 8 9
सा, स्यात्, भासः, तस्य, महात्मनः।

भाषा :– आकाश में हज़ार सूर्यों के एक साथ उदय होने से उत्पन्न जो प्रकाश हो, वह भी उस विश्वरूप परमात्मा के समान कदाचित् ही हो।।१२।।

तत्रैकस्थं जगत् कृत्स्नं, प्रविभक्त-मनेकधा।
अपश्यद् देव देवस्य, शरीरे पाण्डव-स्तदा।।१३।।

7 10 6 5 4 3 11
तत्र, एकस्थम्, जगत्, कृत्स्नम्, प्रविभक्तम्, अनेकधा, अपश्यत्,
8 9 1 2
देवदेवस्य, शरीरे, पाण्डवः, तदा।

भाषा :– पण्डुपुत्र अर्जुन ने उस समय अनेक प्रकार से विभक्त अर्थात् पृथक-पृथक सम्पूर्ण जगत् को देवों के देव भगवान् कृष्ण के शरीर में एक जगह स्थित देखा।।१३।।

ततः स विस्मया-विष्टो, हृष्ट रोमा धनञ्जयः।
प्रणम्य शिरसा देवं, कृताञ्जलि-रभाषत।।१४।।

1 2 3 4 5 8 7
ततः, सः, विस्मयाविष्टः, हृष्टरोमा, धनञ्जयः, प्रणम्य, शिरसा,
6 9 10
देवम्, कृतांजलिः, अभाषत।

भाषा :– तदनन्तर वे आश्चर्चचकित और पुलकित शरीर वाले अर्जुन प्रकाशमय विराट् स्वरूप परमात्मा को श्रद्धाभक्ति सहित शिर से प्रणाम करके हाथ जोड़ कर बोले– ।।१४।।

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवां-स्तव देव देहे,
सर्वां-स्तथा भूत विशेष संघान्।
ब्रह्माण-मीशं कमलासन-स्थ,-
मृषीं-श्च सर्वा-नुरगांश्च दिव्यान्॥१५॥

17 5 2 1 3 4 6 7
पश्यामि, देवान्, तव, देव, देहे, सर्वान्, तथा, भूतविशेषसंघान्,
9 10 8 13 11 12 16
ब्रह्माणम्, ईशम्, कमलासनस्थम्, ऋषीन्, च, सर्वान्, उरगान्,
14 15
च, दिव्यान्।

भाषा :– दे देव! आपके शरीर में सम्पूर्ण देवों तथा अनेक भूत समुदायों को, कमलासन पर विराजमान् ब्रह्मा को, महादेव को और सब ऋषियों तथा दिव्य सर्पों को देखता हूँ॥१५॥

अनेक बाहूदर वक्त्रनेत्रं,
पश्यामि त्वां सर्वतोऽ-नन्त रूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं,
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप॥१६॥

3 4 7 2 5 6
अनेकबाहु, उदरवक्त्रनेत्रम्, पश्यामि, त्वाम्, सर्वतः, अनन्तरूपम्,
10 11 12 13 15 14 9 16 17 1
न, अन्तम्, न, मध्यम्, न, पुनः, तव, आदिम्, पश्यामि, विश्वेश्वर,
8
विश्वरूप।

भाषा :– हे विश्वनाथ! आपको अनेक भुजा, पेट, मुख और नेत्रों से युक्त, सब ओरसे अनन्तरूप वाला देखता हूँ। हे विश्वरूप! मैं आपके न अन्त को, न मध्य को और न आदि को ही देखता हूँ।।१६।।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च,
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्,
दीप्तानलार्क द्युति-मप्रमेयम्।।१७।।

2 3 5 4 8 9 6 7
किरीटिनम्, गदिनम्, चक्रिणम्, च, तेजः, राशिम्, सर्वतः, दीप्तिमन्तम्,
14 1 11 12 10 13
पश्यामि, त्वाम्, दुर्निरीक्ष्यम्, समन्तात्, दीप्तानलार्कद्युतिम्, अप्रमेयम्।

भाषा :– मैं आपको मुकुटयुक्त, गदा और चक्रयुक्त, सब ओर से प्रकाशमान, तेज का पुञ्ज, प्रज्वलित अग्नि-सूर्य सदृश ज्योतियुक्त, कठिनता से देखे जाने योग्य और सब ओर से 'अप्रमेय' स्वरूप देखता हूँ अर्थात् आपका स्वरूप सीमातीत है।।१७।।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं,
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वत धर्मगोप्ता,
सनातन-स्त्वं पुरुषो मतो मे।।१८।।

1 4 3 2 5 6 7 8
त्वम्, अक्षरम्, परमम्, वेदितव्यम्, त्वम्, अस्य, विश्वस्य, परम्,
9 10 13 11 14 12 15
निधानम्, त्वम्, अव्ययः, शाश्वतधर्मगोप्ता, सनातनः, त्वम्, पुरुषः,
17 16
मतः, मे।

भाषा :– अतः हे भगवन्! आप ही जानने योग्य परम अक्षर अर्थात् परब्रह्म परमेश्वर हैं, आप ही इस विश्व के परम आश्रय हैं। आप ही सनातन धर्म के रक्षक हैं, आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं, ऐसा मेरा मत है।।१८।।

अनादि मध्यान्त-मनन्त वीर्य,-
मनन्तबाहुं शशिसूर्य नेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्त हुताश वक्त्रं,
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्।।१९।।

2 3 4 5 11
अनादिमध्यान्तम्, अनन्तवीर्यम्, अनन्तबाहुम्, शशिसूर्यनेत्रम्, पश्यामि,
1 6 7 9 8 10
त्वाम्, दीप्तहुताशवक्त्रम्, स्वतेजसा, विश्वम्, इदम्, तपन्तम्।

भाषा :– हे जगन्नाथ! आपको (मैं) आदि, अन्त एवं मध्य से रहित, असीम सामर्थ्यवान्, अनन्त भुजाधारी, चन्द्रादित्य रूप नेत्रों वाला, प्रज्वलित अग्निरूप मुख वाला तथा अपने तेज से इस जगत् को तपाने वाला देखता हूँ।।१९।।

द्यावा पृथिव्यो-रिदम-न्तरं हि,
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूप-मुग्रं तवेदं,
लोक त्रयं प्रव्यथितं महात्मन्।।२०।।

3 2 4 10 11 9 8 7
द्यावापृथिव्योः, इदम्, अन्तरम्, हि, व्याप्तम्, त्वया, एकेन, दिशः,
5 6 17 14 16 15 12 13 18
च, सर्वाः, दृष्ट्वा, अद्भुतम्, रूपम्, उग्रम्, तव, इदम्, लोकत्रयम्,
19 1
प्रव्यथितम्, महात्मन्।

भाषा :– तथा हे महात्मन्! यह स्वर्ग-पृथ्वी के बीच का आकाश और सब (दस) दिशायें एक आपसे ही परिपूर्ण हैं। आपके इस अद्भुत भयानक, रूप को देखकर तीनों लोक अति व्याकुल हो रहे हैं।।२०।।

अमी हि त्वां सुर संघा विशन्ति,
केचिद् भीताः प्रांजलयो गृणन्ति।
स्वस्ती-त्युक्त्वा महर्षि सिद्ध संघाः,
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः।।२१।।

1 4 3 2 5 6 7 8
अमी, हि, त्वाम्, सुरसंघाः, विशन्ति, केचित्, भीताः, प्रांजलयः,
9 11 12 13 10 17 16
गृणन्ति, स्वस्ति, इति, उक्त्वा, महर्षिसिद्धसंघाः, स्तुवन्ति, त्वाम्,
15 14
स्तुतिभिः, पुष्कलाभिः।

भाषा :– हे अनन्त! वे सब देव समूह आप में ही प्रवेश कर रहे हैं तथा कुछ भयभीत होकर हाथ जोड़े हुए (आपके नाम और गुणों का) गान कर रहे हैं; महर्षि-सिद्ध समुदाय– 'कल्याण हो' ऐसा कह कर उत्तमोत्तम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति कर रहे हैं।।२१।।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या,
विश्वेऽश्विनौ मरुत-श्चोष्मपा-श्च।
गन्धर्व यक्षा-सुर सिद्ध संघा,
वीक्षन्ते त्वां विस्मिता-श्चैव सर्वे।।२२।।

2 4 1 3 5 6 7 9 8
रुद्रादित्याः, वसवः, ये, च, साध्याः, विश्वे, अश्विनौ, मरुतः, च,
11 10 13 18 17 16
उष्मपाः, च, गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः, वीक्षन्ते, त्वाम्, विस्मिताः,
12 15 14
च, एव, सर्वे।

भाषा :– जो ११ रुद्र १२ आदित्य और ८ वसु, साध्यगण, विश्वेदेव, अश्विनी कुमार युगल और ४८ मरुदगण तथा पितर समुदाय और गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्ध समुदाय हैं, वे सब ही आश्चर्य चकित होकर आपको निहार रहे हैं।।२२।।

रूपं महत्ते बहु वक्त्र नेत्रं,
महाबाहो बहु बाहूरु पादम्।
बहूदरं बहु दंष्ट्रा करालं,
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथिता-स्तथाहम्।।२३।।

11 10 2 3 1 4 5
रूपम्, महत्, ते, बहुवक्त्रनेत्रम्, महाबाहो, बहुबाहु, उरु,
6 7 8 9 12 13 14
पादम्, बहु, उदरम्, बहुदंष्ट्राकरालम्, दृष्ट्वा, लोकाः, प्रव्यथिताः,
15 16
तथा, अहम्।

भाषा :– और हे महाबाहो! आपके (इस) बहुत मुख और नेत्रों वाले, बहुत हाथ, जंघा और पैरों वाले, बहुत उदरों वाले तथा बहुत सी दाढ़ों वाले, अत्यन्त विकराल महान् रूप को देख कर, सब लोग व्याकुल हो रहे हैं तथा मेरी भी ऐसी ही दशा है।।२३।।

नभः स्पृशं दीप्त-मनेक वर्णं,

व्यात्ताननं दीप्त विशाल नेत्रम्।

दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथिता-न्तरात्मा,

धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो।।२४।।

3 4 5 6 7
नभःस्पृशम्, दीप्तम्, अनेकवर्णम्, व्यात्ताननम्, दीप्तविशालनेत्रम्,
9 1 8 10 11 14 15 13
दृष्ट्वा, हि, त्वाम्, प्रव्यथितान्तरात्मा, धृतिम्, न, विन्दामि, शमम्,
12 2
च, विष्णो।

भाषा :– कारण कि हे विष्णो! आकाश को छूते हुए, देदीप्यमान, अनेक वर्ण वाले, फैलाये हुए मुख वाले तथा प्रकाशमान नेत्रों वाले, आप को देखकर, व्याकुल अन्तःकरण वाला मैं, धैर्य और शान्ति नहीं पा रहा हूँ।।२४।।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि,

दृष्ट्वैव कालानल संनिभानि।

दिशो न जाने न लभे च शर्म,

प्रसीद देवेश जगन्-निवास।।२५।।

2 3 1 5 6 12 4
दंष्ट्राकरालनानि, च, ते, मुखानि, दृष्ट्वा, एव, कालानलसंनिभानि,
7 8 9 13 14 10 11 18 15 16 17
दिशः, न, जाने, न, लभे, च, शर्म, प्रसीद, देवेश, जगत्, निवास।

भाषा :– और आपके विकराल दाढ़ों वाले तथा प्रलय कालाग्नि के समान प्रज्वलित मुखों को देखकर मैं, दिशाओं को नहीं जानता हूँ

और सुख भी नहीं पा रहा हूँ। अतएव हे देवेश्वर! हे जगदाधार! आप प्रसन्न हों।।२५।।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः,
सर्वे सहैवा-वनिपाल संघैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्र-स्तथासौ,
सहा-स्मदीयै-रपि योध मुख्यैः।।२६।।
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति,
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद् विलग्ना दशना-न्तरेषु,
संदृश्यन्ते चूर्णितै-रुत्तमाङ्गैः।।२७।।

1 8 19 4 5 2 7 3 6
अमी, च, त्वाम्, धृतराष्ट्रस्य, पुत्राः, सर्वे, सह, एव, अवनिपालसंघैः,
9 10 13 11 12 17 14 15
भीष्मः, द्रोणः, सूतपुत्रः, तथा, असौ, सह, अस्मदीयैः, अपि,
16 23 20 18 24 21
योधमुख्यैः, वक्त्राणि, ते, त्वरमाणाः, विशन्ति, दंष्ट्राकरालानि,
22 25 29 28 30 26
भयानकानि, केचित्, विलग्नाः, दशनान्तरेषु, संदृष्यन्ते, चूर्णितैः,
27
उत्तमाङ्गैः।

भाषा :– और मैं देखता हूँ कि वे सब धृतराष्ट्र पुत्र, राजाओं के समुदाय सहित तथा भीष्म, द्रोण और यह सूत पुत्र (कर्ण), साथ ही हमारे भी प्रधान योद्धा, वेगपूर्वक आपके भयानक दाढ़ों वाले भयंकर मुखों में प्रवेश कर रहे हैं। तथा कुछ (योद्धा) चूर्ण हुए उत्तम अंगों सहित आपके दान्तों में लगे हुए दीख रहे हैं।।२६, २७।।

यथा नदीनां बहुवोऽ-म्बुवेगाः,

समुद्र-मेवा-भिमुखा द्रवन्ति।

तथा तवामी नर लोक वीरा,

विशन्ति वक्त्रा-ण्यभि-विज्वलन्ति।।२८।।

1 2 3 4 5 6 7 8

यथा, नदीनाम्, बहवः, अम्बुवेगाः, समुद्रम्, एव, अभिमुखाः, द्रवन्ति,

9 12 10 11 15 14 13

तथा, तव, अमी, नरलोकवीराः, विशन्ति, वक्त्राणि, अभिविज्वलन्ति।

भाषा :– जैसे नदियों के बहुत से जल प्रवाह समुद्र के ही सम्मुख प्रवाहित होते हैं अर्थात् समुद्र में प्रवेश करते हैं, वैसे ही वे नर लोक के वीर भी आपके ही मुखों में प्रवेश कर रहे हैं।।२८।।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा,

विशन्ति नाशाय समृद्ध वेगाः।

तथैव नाशाय विशन्ति लोका,-

स्तवापि वक्त्राणि समृद्ध वेगाः।।२९।।

1 4 5 2 7 3 6

यथा, प्रदीप्तम्, ज्वलनम्, पतंगाः, विशन्ति, नाशाय, समृद्धवेगाः,

8 9 10 16 11 12 14 13

तथा, एव, नाशाय, विशन्ति, लोकाः, तव, अपि, वक्त्राणि,

15

समृद्धवेगाः।

भाषा :– जैसे पतङ्ग (तितलियां आदि) मोह वश नष्ट होने के लिए प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश करते हैं, वैसे ही अपने विनाश हेतु सब लोग भी आपके मुखों में अति वेग से प्रवेश कर रहे हैं।।२९।।

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता,-
ल्लोका-न्समग्रा-न्वदनै-र्ज्वलद्भिः।
तेजोभि-रापूर्य जग-त्समग्रं,
भास-स्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो।।३०।।

7 5 6 2 1 4 3
लेलिह्यसे, ग्रसमानः, समन्तात्, लोकान्, समग्रान्, वदनैः, ज्वलद्भिः,
14 15 13 12 11 9 10 16 8
तेजोभिः, आपूर्य, जगत्, समग्रम्, भासः, तव, उग्राः, प्रतपन्ति, विष्णो।

भाषा :– तथा आप उस सम्पूर्ण जन समुदाय को, प्रज्वलित मुखों द्वारा अपना ग्रास बनाते हुए, सब ओर से चाट रहे हैं। हे विष्णो! आपका उग्र प्रकाश सम्पूर्ण जगत् को तेज के द्वारा परिपूर्ण करके तपा रहा है।।३०।।

आख्याहि मे को भवा-नुग्ररूपो,
नमोऽस्तु ते देव-वर प्रसीद।
विज्ञातु-मिच्छामि भवन्त-माद्यं,
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्।।३१।।

2 1 5 3 4 8 9 7 6 10
आख्याहि, मे, कः, भवान्, उग्ररूपः, नमः, अस्तु, ते, देववर, प्रसीद,
13 14 12 11 18 15 19 16 17
विज्ञातुम्, इच्छामि, भवन्तम्, आद्यम्, न, हि, प्रजानामि, तव, प्रवृत्तिम्।

भाषा :– भगवन्! कृपा करके मुझे बतलाइये कि आप उग्र रूप वाले कौन हैं? हे श्रेष्ठदेव! आपको नमस्कार है, अतः आप प्रसन्न होइये। आदि पुरुष आपको मैं (विशेष रूप से) जानना चाहता हूँ, कारण कि आपकी प्रवृत्ति को मैं नहीं जानता।।३१।।

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोक क्षयकृत् प्रवृद्धो,
लोकान् समाहर्तु-मिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे,
येऽवस्थिताः प्रत्य-नीकेषु योधाः॥३२॥

3 4 1 2 6 7 5
कालः, अस्मि, लोकक्षयकृत्, प्रवृद्धः, लोकान्, समाहर्तुम्, इह,
8 15 16 14 17 18 13 9 11
प्रवृत्तः, ऋते, अपि, त्वाम्, न, भविष्यन्ति, सर्वे, ये, अवस्थिताः,
10 12
प्रत्यनीकेषु, योधाः।

भाषा :– श्री भगवान् बोले– हे अर्जुन! मैं लोक संहार करने वाला, बढ़ा हुआ महाकाल हूँ। इस समय इन लोगों के विनाश के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ। जो ये प्रतिपक्षियों की सेना में स्थित हुए योद्धा लोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करने से भी इनका विनाश निश्चित है।।३२।।

तस्मात् त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व,
जित्वा शत्रून् भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयै-वैते निहताः पूर्व-मेव,
निमित्त मात्रं भव सव्य साचिन्॥३३॥

1 2 3 4 5 7 6 10
तस्मात्, त्वम्, उत्तिष्ठ, यशः, लभस्व, जित्वा, शत्रून्, भुंक्ष्व,
9 8 14 18 11 15 12 13 17
राज्यम्, समृद्धम्, मया, एव, एते, निहताः, पूर्वम्, एव, निमित्तमात्रम्,
19 16
भव, सव्यसाचिन्।

भाषा :- अतः तू उठ खड़ा हो और यश को प्राप्त कर तथा शत्रुओं को जीतकर धन-धान्य, ऐश्वर्य सम्पन्न राज्य को भोग। यह सब (शूरवीर) पहले ही मेरे द्वारा मारे हुए हैं। बायें हाथ से भी बाण चलाने में दक्ष अर्जुन। तू केवल युद्ध कौशलदर्शी कारण मात्र बन जा।।३३।।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च,
कर्णं तथा-न्यानपि योधवीरान्।
मया हतां-स्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा,
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्।।३४।।

1 2 3 4 5 6 7 8 9
द्रोणम्, च, भीष्मम्, च, जयद्रथम्, च, कर्णम्, तथा, अन्यान्,
10 13 11 12 14 15 16 17 21
अपि, योधवीरान्, मया, हतान्, त्वम्, जहि, मा, व्यथिष्ठाः, युध्यस्व,
20 18 19
जेतासि, रणे, सपत्नान्।

भाषा :- द्रोणाचार्य तथा भीष्म पितामह और जयद्रथ और कर्ण तथा अन्य भी बहुत से मेरे द्वारा मारे हुए शूरवीर योद्धाओं को तू मार। दुःखी मत हो। तू निश्चिय ही रण में वैरियों को जीतेगा। अतः युद्ध कर ।।३४।।

सञ्जय उवाच

एतच्छ्रु-त्वा वचनं केशवस्य,
कृतांजलि-र्वेपमानः किरीटी।
नम-स्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं,
सगद्गदं भीत भीतः प्रणम्य।।३५।।

2 4 3 1 6 7 5

एतत्, श्रुत्वा, वचनम्, केशवस्य, कृतांजलिः, वेपमानः, किरीटी,

8 9 10 11 16 14 15 12 13

नमः, कृत्वा, भूयः, एव, आह, कृष्णम्, सगद्गदम्, भीतभीतः, प्रणम्य।

भाषा :– भगवान् केशव के इन वचनों को सुनकर किरीटधारी अर्जुन, हाथ जोड़ नमस्कार करके फिर भी भयभीत हुआ प्रणाम करके गद्गद वाणी से कृष्ण के प्रति बोले– ।।३५।।

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या,
जगत् प्रहृष्य-त्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति,
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः।।३६।।

2 1 3 4 5 6 8 7

स्थाने, हृषीकेश, तव, प्रकीर्त्या, जगत्, प्रहृष्यति, अनुरज्यते, च,

10 9 11 12 14 16 13 15

रक्षांसि, भीतानि, दिशः, द्रवन्ति, सर्वे, नमस्यन्ति, च, सिद्धसंघाः।

भाषा :– अर्जुन बोले– हे अन्तर्यामिन! यह योग्य है कि आपके नाम, गुण तथा प्रभाव के कीर्तन से जगत् प्रसन्न हो रहा है तथा अनुराग को भी प्राप्त हो रहा है तथा भयभीत राक्षसगण दिशाओं में भाग रहे हैं और सब सिद्ध समुदाय नमस्कार कर रहे हैं।।३६।।

कस्माच्च ते न नमेर-न्महात्मन्,
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादि कर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास,
त्वमक्षरं सदसत् तत्परं यत्।।३७।।

8 5 7 9 10 1 6 2 3
कस्मात्, च, ते, न, नमेरन्, महात्मन्, गरीयसे, ब्रह्मणः, अपि,
4 11 12 13 14 20 19 16
आदिकर्त्रे, अनन्त, देवेश, जगत्, निवास, त्वम्, अक्षरम्, सत्,
17 18 15
असत्, तत्परम्, यत्।

भाषा :– हे महात्मन्! ब्रह्मा के भी आदि कर्ता और सब से बड़े आपके लिए वे कैसे नमस्कार न करें? क्योंकि हे अनन्त! हे देवेश! हे जगन्निवास! जो सत्, असत् और उनसे परे अक्षर अर्थात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है वह आप ही हैं।।३७।।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण,-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम,
त्वया ततं विश्व-मनन्त-रूप।।३८।।

1 2 4 3 5 6 7 8
त्वम्, आदिदेवः, पुरुषः, पुराणः, त्वम्, अस्य, विश्वस्य, परम्,
9 10 15 12 11 13 19 14 17 20
निधानम्, वेत्ता, असि, वेद्यम्, च, परम्, च, धाम, त्वया, ततम्,
18 16
विश्वम्, अनन्तरूप।

भाषा :– आप आदिदेव, सनातन पुरुष हैं। आप इस संसार के परम आश्रय और जानने वाले और जानने योग्य और परमधाम हैं। हे अनन्तरूप! आप से यह जगत परिपूर्ण है।।३८।।

वायु-र्यमोऽग्नि-र्वरुणः शशांकः,

प्रजापति-स्त्वं प्रपितामहश्च।

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः,

पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते।।३९।।

2 3 4 5 6 7 1 9
वायुः, यमः, अग्निः, वरुणः, शशांकः, प्रजापतिः, त्वम्, प्रपितामहः,
8 12 13 10 14 11 18 19 16 17 20
च, नमः, नमः, ते, अस्तु, सहस्रकृत्वः, पुनः, च, भूयः, अपि, नमः,
21 15
नमः, ते।

भाषा :- आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण देव, चन्द्रमा, प्रजापति ब्रह्मा और ब्रह्मा के भी उत्पत्तिकारक (पिता) हैं। आपके लिए हज़ारों बार नमस्कार! नमस्कार है। आपके लिये पुनः बारम्बार नमस्कार है।।३९।।

नमः पुरस्ता-दथ पृष्ठतस्ते,

नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।

अनन्त-वीर्या-मित विक्रम-स्त्वं,

सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः।।४०।।

6 3 4 5 2 11 12 8 9 10 7
नमः, पुरस्तात्, अथ, पृष्ठतः, ते, नमः, अस्तु, ते, सर्वतः, एव, सर्व,
1 13 14 15 16 17 19 18
अनन्तवीर्य, अमितविक्रमः, त्वम्, सर्वम्, समाप्नोषि, ततः, असि, सर्वः।

भाषा :- हे अनन्तसामर्थ्य वाले। आपके लिए आगे और पीछे से भी नमस्कार। हे सर्वात्मन्! आपके लिए सब ओर से भी नमस्कार

हो। क्योंकि अति पराक्रमशाली आप, समस्त संसार को व्याप्त किए हुए हो, इससे आप ही सर्वरूप हैं।।४०।।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं,
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं,
मया प्रमादा-त्प्रणयेन वापि।।४१।।

यच्चावहा-सार्थ-मसत्कृतोऽसि,
विहार शय्यासन भोजनेषु।
एकोऽथवा-प्यच्युत तत्समक्षं,
तत् क्षामये त्वा-मह-मप्रमेयम्।।४२।।

1 2 3 18 17 19 13 14
सखा, इति, मत्वा, प्रसभम्, यत्, उक्तम्, हेकृष्ण, हेयादव,
15 16 7 6 4 5 8 11
हेसखा, इति, अजानता, महिमानम्, तव, इदम्, मया, प्रमादात्,
9 10 12 22 20 23 30 31
प्रणयेण, वा, अपि, यत्, च, अवहासार्थम्, असत्कृतः, असि,
24 25 26 29 21 27 28
विहारशय्यासनभोजनेषु, एकः, अथवा, अपि, अच्युत, तत्, समक्षम्,
32 36 34 35 33
तत्, क्षामये, त्वाम्, अहम्, अप्रमेयम्।

भाषा :– आप मेरे सखा हैं, ऐसा मान कर आपके इस प्रभाव को न जानते हुए मेरे द्वारा प्रेम से या प्रमादवश भी "हे कृष्ण, हे यादव, हे सखा"– ऐसा जो कुछ बिना सोचे समझे कहा गया है तथा

हे अच्युत! मेरे द्वारा विनोद के लिए, विहार शय्या, आसन और भोजनादि के अवसरों पर, अकेले अथवा उन सखाओं के सामने भी अपमानित किये गये हैं, वह सब अपराध अचिन्त्य प्रभाव वाले, आपसे मैं क्षमा करवाता हूँ अर्थात् कृपया आप मेरे उपर्युक्त अपराधों के लिए क्षमा कीजिए।।४१-४२।।

पितासि लोकस्य चराचरस्य,
त्वमस्य पूज्यश्च गुरु-र्गरीयान्।
न त्वत्समोऽ-स्त्य-भ्यधिकः कुतोऽन्यो,
लोकत्रयेऽ-प्यप्रतिम-प्रभाव।।४३।।

5 10 4 3 1 2 9 6 8
पिता, असि, लोकस्य, चराचरस्य, त्वम्, अस्य, पूज्यः, च, गुरुः,
7 17 13 14 18 19 20 16 12
गरीयान्, न, त्वत्, समः, अस्ति, अभ्यधिकः, कुतः, अन्यः, लोकत्रये,
15 11
अपि, अप्रतिमप्रभाव।

भाषा :– आप इस चराचर जगत् के पिता और सबसे बड़े गुरु एवं पूजनीय हैं। हे अनुपम प्रभाव वाले! तीनों लोकों में आपके समान भी कोई अन्य बड़ा है? अर्थात् कोई नहीं।।४३।।

तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायं,
प्रसादये त्वा-महमीश-मीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः,
प्रियः प्रियाया-र्हसिदेव सोढुम्।।४४।।

1 5 4 3 9 7 2 8
तस्मात्, प्रणम्य, प्रणिधाय, कायम्, प्रसादये, त्वाम्, अहम्, ईशम्,
6 11 12 13 14 15 16 17 18
ईड्यम्, पिता, इव, पुत्रस्य, सखा, इव, सख्युः, प्रियः, प्रियायाः,
20 10 19
अर्हसि, देव, सोढुम्।

भाषा :– अतएव प्रभो! मैं शरीर को चरणों में निवेदित कर, प्रणाम करके, स्तुति करने योग्य आप ईश्वर की प्रसन्नतार्थ प्रार्थना करता हूँ। हे देव! पिता जैसे पुत्र के, सखा जैसे सखा के, पति जैसे प्रिया के अपराध सहन करते हैं, वैसे ही आप भी मेरे अपराध क्षमा करने योग्य हैं।।४४।।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा,
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपं,
प्रसीद देवेश जगन्निवास।।४५।।

1 3 4 2 7 9 8 6
अदृष्टपूर्वम्, हृषितः, अस्मि, दृष्ट्वा, भयेन, च, प्रव्यथितम्, मनः,
5 11 13 14 15 10 12 18 16 17
मे, तत्, एव, मे, दर्शय, देव, रूपम्, प्रसीद, देवेश, जगन्निवास।

भाषा :– पहले न देखे हुए (आश्चर्यमय विराट् स्वरूप) को देखकर प्रसन्नता हो रही है, साथ ही मेरा मन भय से व्याकुल भी हो रहा है। अतः हे देव! आप उस अपने चतुर्भुज विष्णुरूप को ही मुझे दिखाइये। हे देवेश! हे जगन्निवास! प्रसन्न होइये।।४५।।

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त,-
मिच्छामि त्वां द्रष्टु-महं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन,
सहस्त्रबाहो भव विश्वमूर्ते।।४६।।

5 6 7 9 4 8 1
किरीटिनम्, गदिनम्, चक्रहस्तम्, इच्छामि, त्वाम्, द्रष्टुम्, अहम्,
2 3 12 13 15 14 11 16 10
तथा, एव, तेन, एव, रूपेण, चतुर्भुजेन, सहस्त्रबाहो, भव, विश्वमूर्ते।

भाषा :– मैं वैसे ही आपको, मुकुट धारण किये हुए तथा गदा और चक्र हाथ में लिए देखना चाहता हूँ। अतः हे विश्वमूर्ति! हे सहस्त्रबाहो! आप उसी चतुर्भुज रूप से प्रकट होइये।।४६।।

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं,
रूपं परं दर्शित-मात्म-योगात्।
तेजोमयं विश्व-मनन्त-माद्यं,
यन्मे त्वदन्येन न दृष्ट पूर्वम्।।४७।।

2 3 13 1 5 12 7 14 4
मया, प्रसन्नेन, तव, अर्जुन, इदम्, रूपम्, परम्, दर्शितम्, आत्मयोगात्,
8 11 10 9 15 6 16 17 18
तेजोमयम्, विश्वम्, अनन्तम्, आदयम्, यत्, मे, त्वदन्येन, न, दृष्टपूर्वम्।

भाषा :– इस प्रकार अर्जुन की पूर्वोक्त नम्र प्रार्थना सुनकर श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन! मैंने अनुग्रह पूर्वक अपनी योग शक्ति के प्रभाव से, यह मेरा तेजयुक्त, आदि, अनन्त विराट् रूप तुझे दिखाया है, जो तेरे सिवा दूसरे से पहले नहीं देखा गया है।।४७।।

न वेदयज्ञा-ध्ययनै-र्न दानै,-
र्न च क्रियाभि-र्न तपोभि-रुग्रैः।
एवं रूपः शक्य अहं नृलोके,
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर॥४८॥

6 7 8 9 10 11 11 13 15 14
न, वेदयज्ञाध्ययनैः, न, दानैः, न, च, क्रियाभिः, न, तपोभिः, उग्रैः,
3 4 19 5 2 18 16 17 1
एवम्, रूपः, शक्यः, अहम्, नृलोके, दृष्टुम्, त्वत्, अन्येन, कुरुप्रवीर।

भाषा :– हे कुरुप्रवीर! मनुष्य लोक में इस प्रकार विश्वरूप वाला मैं, न वेद और यज्ञों तथा अध्ययन से, न दान से, न क्रियाओं से और न उग्र तपों से ही, तेरे अतिरिक्त दूसरे के द्वारा देखा जा सकता हूँ॥४८॥

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो,
दृष्ट्वा रूपं घोर-मीदृङ् ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुन-स्त्वं,
तदेव मे रूप-मिदं प्रपश्य॥४९॥

12 7 8 9 10 11 6 5 4 1
मा, ते, व्यथा, मा, च, विमूढभावः, दृष्ट्वा, रूपम्, घोरम्, ईदृक्,
2 3 13 14 21 15 16 17 18 20
मम्, इदम्, व्यपेतभीः, प्रीतमनाः, पुनः, त्वम्, तत्, एव, मे, रूपम्,
19 22
इदम्, प्रपश्य।

भाषा :– हे अर्जुन! इस प्रकार के मेरे इस विकराल रूप को देखकर तुझ को व्यथा नहीं होनी चाहिए। और मूढभाव भी नहीं होना

चाहिये। भय रहित और प्रीतियुक्त मन वाला तू उसी मेरे (चतुर्भुज) रूप को देख।।४९।।

सञ्जय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेव-स्तथोक्त्वा,
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वा-सयामास च भीत-मेनं,
भूत्वा पुनः सौम्यवपु-र्महात्मा।।५०।।

3 2 1 6 4 7 8
इति, अर्जुनम्, वासुदेवः, तथा, उक्त्वा, स्वकम्, रूपम्,
9 5 17 10 16 15 14
दर्शयामास, भूयः, आश्वासयामास, च, भीतम्, एनम्, भूत्वा,
11 13 12
पुनः, सौम्यवपुः, महात्मा।

भाषा :– संजय बोला– वासुदेव ने अर्जुन के प्रति ऐसा कहकर पुनः वैसा ही अपना चतुर्भुज रूप दिखाया। और फिर महात्मा कृष्ण ने सौम्य स्वरूप होकर ऐसे भयभीत हुए अर्जुन को आश्वस्त किया।।५०।।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं, तव सौम्यं जनार्दन।
इदानी-मस्मि संवृत्तः, सचेताः प्रकृतिं गतः।।५१।।

7 3 5 6 2 4 1 8
दृष्ट्वा, इदम्, मानुषम्, रूपम्, तव, सौम्यम्, जनार्दन, इदानीम्,
10 9 11 12 13
अस्मि, संवृत्तः, सचेताः, प्रकृतिम्, गतः।

भाषा :– अर्जुन बोला– हे जनार्दन! आपके इस शान्त एवं मृदुल मनुष्य रूप को देख कर अब मैं स्थिर चित्त हो गया हूँ और अपनी स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त हुआ हूँ।।५१।।

श्रीभगवानुवाच

सुदुर्दर्श-मिदं रूपं, दृष्टवानसि यन् मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य, नित्यं दर्शन कांक्षिणः।।५२।।

4 2 3 6 5 1 7 8
सुदुर्दर्शम्, इदम्, रूपम्, दृष्टवानसि, यत्, मम, देवाः, अपि,
10 11 9 12
अस्य, रूपस्य, नित्यम्, दर्शनकांक्षिणः।

भाषा :– श्रीभगवान् बोले– मेरा यह विश्वरूप दर्शन अति दुर्लभ है, जिसे तूने देखा है। क्योंकि देवता भी सदा इस रूप के दर्शन की आकांक्षा करते रहते हैं।।५२।।

नाहं वेदै-र्न तपसा, न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं, दृष्टवानसि मां यथा।।५३।।

1 11 2 3 4 5 6 8 7 9 13
न, अहम्, वेदैः, न, तपसा, न, दानेन, न, च, इज्यया, शक्यः,
10 12 16 15 14
एवंविधः, द्रष्टुम्, दृष्टवानसि, माम्, यथा।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! न वेदों से, न तप से, न दान से और न यज्ञ से इस प्रकार चतुर्भुज रूप वाला 'मैं' देखा जा सकता हूँ, जैसा मुझ को तूने देखा।।५३।।

भक्त्या त्वन-न्यया शक्य, अह-मेवं विधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन, प्रवेष्टुं च परन्तप।।५४।।

5 1 4 14 7 6 2 11
भक्त्या, तु, अनन्यया, शक्यः, अहम्, एवंविधः, अर्जुन, ज्ञातुम्,
8 9 10 13 12 30
द्रष्टुम्, च, तत्त्वेन, प्रवेष्टुम्, च, परंतप।

भाषा :– परन्तु हे अर्जुन! हे परंतप! अनन्यभक्ति द्वारा इस प्रकार चतुर्भुज रूप वाला मैं प्रत्यक्ष देखने के लिए और तत्त्व से जानने के लिए तथा प्रवेश करने के लिए अर्थात् एकीभाव से प्राप्त होने के लिए भी सहज प्राप्य हूँ।।५४।।

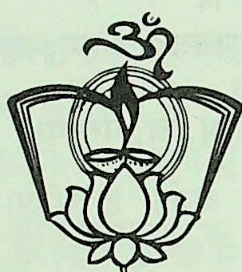
मत्कर्मकृन् मत्परमो, मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु, यः स मामेति पाण्डव।।५५।।

3 4 5 6 7 9 8
मत्, कर्मकृत्, मत्परमः, मद्भक्तः, संगवर्जितः, निर्वैरः, सर्वभूतेषु,
2 10 11 12 1
यः, सः, माम्, एति, पाण्डव।

भाषा :– अनन्यभक्त कौन? भक्तवत्सल भगवान् अर्जुन को बताते हैं– हे पण्डुपुत्र! जो प्राणी केवल मेरे लिए ही सम्पूर्ण कर्त्तव्यकर्मों को करने वाला, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, निरासक्त है तथा सम्पूर्ण प्राणियों में वैर भाव से रहित है, ऐसा अनन्य भक्त मुझे ही प्राप्त होता है।।५५।।

ओं तत्सदिति श्रीमद्भगवद्-गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु।।

श्लोकाः ५५ गतश्लोकानि ४१४ एवमादितः ४६९



॥ उों नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथद्वादशोऽध्याय:

अर्जुन उवाच

एवं सतत युक्ता ये, भक्ता-स्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षर-मव्यक्तं, तेषां के योग वित्तमा:॥१॥

3 4 1 2 5 6 8 7
एवम्, सततयुक्ता:, ये, भक्ता:, त्वाम्, पर्युपासते, ये, च,
11 9 10 12 14 13
अपि, अक्षरम्, अव्यक्तम्, तेषाम्, के, योगवित्तमा:।

भाषा :– अर्जुन बोले– जो अनन्य भक्त इस पूर्वोक्त प्रकार से निरन्तर आप के ध्यान-भजनादि में लगे हुए आप साकार परमेश्वर की उपासना करते हैं तथा जो अविनाशी, निराकार को भजते हैं, इन दोनों प्रकार के भक्तों में कौन योगवेता है?॥१॥

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां, नित्य युक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेता,- स्ते मे युक्ततमा मताः।।२।।

1 3 2 5 9 4 10 7
मयि, आवेश्य, मनः, ये, माम्, नित्ययुक्ताः, उपासते, श्रद्धया,
6 8 11 12 13 14
परया, उपेताः, ते, मे, युक्ततमाः, मताः।

भाषा :– श्रीभगवान् बोले– मेरे में मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे में लगे हुए जो भक्त जन, अति श्रद्धा से युक्त हुए मुझ साकार रूप को भजते हैं, वे मुझे अत्युत्तम योगी मान्य हैं।।२।।

ये त्वक्षर-मनिर्देश्य,- मव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगम-चिन्त्यं च, कूटस्थ-मचलं ध्रुवम्।।३।।

2 1 6 5 7 12 4
ये, तु, अक्षरम्, अनिर्देश्यम्, अव्यक्तम्, पर्युपासते, सर्वत्रगम्,
3 8 9 10 11
अचिन्त्यम्, च, कूटस्थम्, अचलम्, ध्रुवम्।

भाषा :– और जो पुरुष, मन बुद्धि से परे, सर्वव्यापी, अकथनीय स्वरूप, अविनाशी निराकार और सदा एक रस रहने वाले, अचल तथा नित्य ब्रह्म की निरन्तर एकी भाव से ध्यान करते हुए उपासते हैं–।।३।।

सन्निय-म्येन्द्रिय-ग्रामं, सर्वत्र सम बुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव, सर्वभूत हिते रताः।।४।।

3 2 6 7 1 10 8
संनियम्य, इन्द्रियग्रामम्, सर्वत्र, समबुद्धयः, ते, प्राप्नुवन्ति, माम्,
9 4 5
एव, सर्वभूतहिते, रताः।

भाषा :– वे इन्द्रिय समूह को वश में करके, सब भूतों के हित में लगे हुए, सब में समबुद्धि व समान भाव वाले योगी जन, मुझे ही प्राप्त होते हैं।।४।।

क्लेशोऽधिकतर-स्तेषा,- मव्यक्ता-सक्त चेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं, देहवद्भि-रवाप्यते।।५।।

3 4 1 2 7
क्लेशः, अधिकतरः, तेषाम्, अव्यक्तासक्तचेतसाम्, अव्यक्ता,
5 8 9 6 10
हि, गतिः, दुःखम्, देहवदभिः, अवाप्यते।

भाषा :– उन निराकार ब्रह्म में आसक्त हुए चित्त वाले पुरुषों के साधन में कठिनाईयां विशेष हैं; क्योंकि देहाभिमानियों से अव्यक्त विषयक गति, दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है।।५।।

ये तु सर्वाणि कर्माणि, मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन, मां ध्यायन्त उपासते।।६।।

2 1 4 5 6 7 3 10
ये, तु, सर्वाणि, कर्माणि, मयि, संन्यस्य, मत्पराः, अनन्येन,
9 11 8 12 13
एव, योगेन, माम्, ध्यायन्तः, उपासते।

भाषा :– तथा जो मेरा परायण भक्तजन, सब कर्मों को मेरे अर्पण कर मुझ साकार ब्रह्म को ही, अनन्य ध्यान योग द्वारा, निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं–।।६।।

तेषा-महं समुद्धर्ता, मृत्यु संसार सागरात्।
भवामि नचिरा-त्पार्थ, मय्या-वेशित चेतसाम्।।७।।

2 5 8 6 9 7
तेषाम्, अहम्, समुद्धर्ता, मृत्युसंसारसागरात्, भवामि, नचिरात्,
1 3 4
पार्थ, मयि, आवेशितचेतसाम्।

भाषा :– हे पार्थ! उन मुझ में चित्त को लगाने वाले भक्तजन का मैं, मृत्युरूप संसार सागर से शीघ्र ही उद्धार करने वाला होता हूँ–।।७।।

मय्येव मन आधत्स्व, मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव, अत ऊर्ध्वं न संशयः।।८।।

1 5 2 3 4 6 7 12
मयि, एव, मनः, आधत्स्व, मयि, बुद्धिम्, निवेशय, निवसिष्यसि,
10 11 8 9 13 14
मयि, एव, अतः, ऊर्ध्वम्, न, संशयः।

भाषा :– अतएव हे अर्जुन! तू– मेरे में मन को लगा तथा मुझ में ही बुद्धि को लगा इसके पश्चात् तू मेरे में ही निवास करेगा, इसमें सन्देह नहीं है।।८।।

अथ चित्तं समाधातुं, न शक्नोषि मयि-स्थिरम्।
अभ्यास योगेन ततो, मा-मिच्छाप्तुं धनंजय।।९।।

1 2 5 6 7 3 4
अथ, चित्तम्, समाधातुम्, न, शक्नोषि, मयि, स्थिरम्,
10 8 11 13 12 9
अभ्यासयोगेन, ततः, माम्, इच्छ, आप्तुम्, धनंजय।

भाषा :– और यदि तू मन को, मेरे में स्थिर रखने में असमर्थ है, तो हे धनंजय! अभ्यास योग द्वारा अर्थात् भगवन्नाम चिन्तन, कीर्तन, मनन, श्रवण तथा जप आदि साधनों द्वारा तू मुझे पाने की चेष्टा कर।।९।।

अभ्यासेप्यसमर्थोऽसि, मत् कर्म परमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि, कुर्वन् सिद्धि-मवाप्स्यसि॥१०॥

1 2 3 4 5 6 7
अभ्यासे, अपि, असमर्थः, असि, मत्कर्मपरमः, भव, मदर्थम्,
10 8 9 11 12
अपि, कर्माणि, कुर्वन्, सिद्धिम्, अवाप्स्यसि।

भाषा :- और यदि तू उपर्युक्त- अभ्यास योग में भी अपने को असमर्थ पाता है, तो मेरे निमित्त कर्म-परायण हो। मेरे लिए कर्मों को करता हुआ भी, मेरी प्राप्ति रूप सिद्धि को प्राप्त कर लेगा॥१०॥

अथैत-दप्यशक्तोऽसि, कर्तुं मद्योग-माश्रितः।
सर्व कर्म फल त्यागं, ततः कुरु यता-त्मवान्॥११॥

1 2 3 5 6 4 9 10 11
अथ, एतत्, अपि, अशक्तः, असि, कर्तुम्, मत्, योगम्, आश्रितः,
12 7 13 8
सर्वकर्मफलत्यागम्, ततः, कुरु, यतात्मवान्।

भाषा :- और यदि (तू) इसको भी करने में असमर्थ है तो जीते हुए मन वाला, मेरी प्राप्तिरूप योग के शरण हुआ, सब कर्मों के फल का मेरे लिए त्याग कर॥११॥

श्रेयो हि ज्ञान-मभ्यासा,-
ज्ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते।
ध्याना-त्कर्मफल त्याग,-
स्त्यागा-च्छान्ति-रनन्तरम्॥१२॥

4 1 3 2 5 6 7 8
श्रेयः, हि, ज्ञानम्, अभ्यासात्, ज्ञानात्, ध्यानम्, विशिष्यते, ध्यानात्,
9 10 12 11
कर्मफलत्यागः, त्यागात्, शान्तिः, अनन्तरम्।

भाषा :– क्योंकि किसी बात के गूढार्थ को न जानकर किये हुए अभ्यास से, परोक्षज्ञान अर्थात् मर्मज्ञ महात्मा के वचनों का श्रवण और शास्त्राध्ययन करने से, परमात्मस्वरूप का अनुमान करना श्रेष्ठ है। परोक्षज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से भी कर्मफल त्याग श्रेष्ठ है क्योंकि त्याग से तत्काल परमशान्ति प्राप्त होती है।।१२।।

अद्वेष्टा सर्व भूतानां, मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः, सम दुःख सुखः क्षमी।।१३।।

सन्तुष्टः सततं योगी, यतात्मा दृढ निश्चयः।
मय्य-र्पित मनो बुद्धि,- र्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।१४।।

1 3 2 5 6 4 7 8
अद्वेष्टा, सर्वभूतानाम्, मैत्रः, करुणः, एव, च, निर्ममः, निरहंकारः,
9 10 14 13 12 15 16
समदुःखसुखः, क्षमी, सन्तुष्टः, सततम्, योगी, यतात्मा, दृढनिश्चयः,
17 18 11 20 19 21 22
मयि, अर्पितमनोबुद्धिः, यः, मद्भक्तः, सः, मे, प्रियः।

भाषा :– जो शान्तात्मा– द्वेषरहित, सब का प्रेमी तथा सब के प्रति दयाभाव रखता है तथा ममत्वभाव रहित, अहम्भावरहित, दुःख सुख में समभाव वाला, क्षमावान् तथा जो ध्यान योग में लगा हुआ निरन्तर सन्तुष्ट है, मन-इन्द्रिय सहित शरीर को वश में किये हुए है, दृढ़ निश्चयी है, मुझ में अर्पण किये हुए मन बुद्धि वाला, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है।।१३-१४।।

यस्मान् नोद्विजते लोको,

लोकान् नोद्विजते च यः।

हर्षा-मर्ष-भयोद्-वेगै,-

मुंक्तो यः स च मे प्रियः।।१५।।

1 3 4 2 7 8 9 5 6

यस्मात्, न, उद्विजते, लोकः, लोकात्, न, उद्विजते, च, यः,

12 13 11 14 10 15 16

हर्षामर्षभयोद्वेगैः, मुक्तः, यः, सः, च, मे, प्रियः।

भाषा :– तथा जिससे कोई भी जीव उद्विग्न नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीव द्वारा उद्विग्नता को प्राप्त नहीं होता है तथा जो खुशी, ईर्ष्या, द्वेषादि, उद्वेगों से मुक्त है, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है।।१५।।

अनपेक्षः शुचि-र्दक्ष, उदासीनो गत व्यथः।

सर्वारम्भ परित्यागी, यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।१६।।

2 3 4 5 6 8

अनपेक्षः, शुचिः, दक्षः, उदासीनः, गतव्यथः, सर्वारम्भपरित्यागी,

1 9 7 10 11

यः मद्भक्तः, सः, मे, प्रियः।

भाषा :– तथा जो पुरुष आकांक्षाओं रहित, बाह्याभ्यान्तर शुद्ध, निपुण, पक्षपात रहित तथा दुःखों से छूटा हुआ, ऐसा कर्त्तापन के अभिमान् से रहित, सब आरम्भों का परित्यागी मेरा भक्त मुझे प्रिय है।।१६।।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि, न शोचति न कांक्षति।

शुभाशुभ परित्यागी, भक्तिमान् यः स मे प्रियः।।१७।।

1 2 3 4 5 6 7 8 9
यः, न, हृष्यति, न, द्वेष्टि, न, शोचति, न, कांक्षति,
11 13 10 12 14 15
शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान्, यः, सः, मे, प्रियः।

भाषा :– और जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो सब शुभ-अशुभ कर्मों का त्यागी है, ऐसा भक्तियुक्त पुरुष मेरा प्यारा है।।१७।।

समः शत्रौ च मित्रे च, तथा मानापमानयोः।
शीतोष्ण सुख दुःखेषु, समः संग विवर्जितः।।१८।।

5 1 3 2 11 6 4 7 8
समः, शत्रौ, च, मित्रे, च, तथा, मानापमानयोः, शीत, ऊष्ण,
9 10 12
सुखदुःखेषु, समः, सङ्गविवर्जितः।

भाषा :– जो पुरुष शत्रु-मित्र में और मान-अपमान में सम है तथा सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख में सम है और आसक्ति-रहित है–।।१८।।

तुल्य निन्दा-स्तुति-मौनी, सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिर मति,- भक्तिमान् मे प्रियो नरः।।१९।।

1 2 5 3 4 6
तुल्यनिन्दास्तुतिः, मौनी, संतुष्टः, येन, केनचित्, अनिकेतः,
7 8 10 11 9
स्थिरमतिः, भक्तिमान्, मे, प्रियः, नरः।

भाषा :– तथा जो निन्दा-प्रशंसा में सम भाव वाला, मननशील, जैसे तैसे शरीर निर्वाह में सन्तोषी, रहने के स्थान में ममत्वभाव रहित, ऐसा स्थिर बुद्धि भक्तिमान् पुरुष मुझे अभीष्ट है।।१९।।

ये तु धर्म्या-मृत-मिदं, यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा, भक्ता-स्तेऽतीव मे प्रियाः॥२०॥

2 1 8 5 6 7 9 4
ये, तु, धर्म्यामृतम्, इदम्, यथा, उक्तम्, पर्युपासते, श्रद्दधानाः,
3 11 10 13 12 14
मत्परमाः, भक्ताः, ते, अतीव, मे, प्रियाः।

भाषा :– परन्तु जो मुझे अपना परम आश्रय, परमगति, परमात्मा तथा परम पूज्य समझकर परम श्रद्धा एवं भक्ति से, मेरी इस यथाकथित धर्ममय अमृत (गीतामृत) को, निश्काम भाव से सेवन करते हैं– ऐसे भक्त मेरे परम प्रिय हैं।।२०।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्-भगवद्-गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे भक्ति-योगो नाम
द्वादशोऽध्यायः श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु॥१२॥

श्लोकाः २० गतश्लोकानि ४६९ एवमादितः ४८९





॥ उों नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय, क्षेत्रमित्य-भिधीयते।
एतद् यो वेत्ति तं प्राहुः, क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥१॥

2 3 1 4 5 6 7 8
इदम्, शरीरम्, कौन्तेय, खेत्रम्, इति, अभिधीयते, एतत्, यः,
9 10 14 11 12 13
वेत्ति, तम्, प्राहुः, क्षेत्रज्ञः, इति, तद्विदः।

भाषा :– भगवान् श्रीकृष्ण बोले– हे कुन्तीनन्दन!– यह शरीर 'क्षेत्र' इस नाम से कहा जाता है और इसको जो जानता है, उसको 'क्षेत्रज्ञ' इस नाम से तत्त्व को जानने वाले ज्ञानी जन कहते हैं॥१॥

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि, सर्व क्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञयो-र्ज्ञानं, यत् तज्ज्ञानं मतं मम॥२॥

4 1 5 6 7 3 2 8
क्षेत्रज्ञम्, च, अपि, माम्, विद्धि, सर्वक्षेत्रेषु, भारत, क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः,
10 9 11 12 14 13
ज्ञानम्, यत्, तत्, ज्ञानम्, मतम्, मम।

भाषा :- तथा हे अर्जुन! सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा भी, मुझे ही जान और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ अर्थात् प्रकृति-पुरुष को जो तत्त्व से जानना है, वह 'ज्ञान' है, ऐसा मेरा मत है।।२।।

तत् क्षेत्रं यच्च यादृक् च, यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत् प्रभावश्च, तत् समासेन मे शृणु॥३॥

1 2 3 4 5 6 7 8 10 9 11
तत्, क्षेत्रम्, यत्, च, यादृक्, च, यद्विकारि, यतः, च, यत्, सः,
12 14 15 16 13 17 18 19 20
च, यः, यत्, प्रभावः, च, तत्, समासेन, मे, शृणु।

भाषा :- अतः वह क्षेत्र जो और जैसा है तथा जिन विकारों वाला है और जिस कारण से जो हुआ है; तथा वह (क्षेत्रज्ञ) भी जो और जिस प्रभाव वाला है, वह सब संक्षेप में मेरे से सुन।।३।।

ऋषिभि-र्बहुधा गीतं, छन्दोभि-र्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्र-पदै-श्चैव, हेतु-मद्भि-र्विनिश्चितैः॥४॥

1 2 3 5 4 6 10
ऋषिभिः, बहुधा, गीतम्, छन्दोभिः, विविधैः, पृथक्, ब्रह्मसूत्रपदैः,
7 11 9 8
च, एव, हेतुमद्भिः, विनिश्चितैः।

भाषा :– यह क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ का तत्त्व ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से कहा गया है तथा नाना प्रकार के छन्दों (वेद मन्त्रों) द्वारा भी अलग-अलग ढंग से समझाया गया है तथा साथ ही भली प्रकार निश्चय किये हुए तर्क संगत ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा भी कहा गया है।।४।।

महाभूता-न्यहंकारो, बुद्धि-रव्यक्त-मेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च, पञ्च चेन्द्रिय गोचराः।।५।।

1 2 3 5 6 4 9
महाभूतानि, अहङ्कारः, बुद्धिः, अव्यक्तम्, एव, च, इन्द्रियाणि,
8 10 7 12 11 13
दश, एकम्, च, पंच, च, इन्द्रियगोचराः।

भाषा :– पांच महाभूत (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश), अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति अर्थात् त्रिगुणी (सत्व, रज और तुमोगुण) माया भी तथा दस इन्द्रियाँ (नाक, कान, आँखें, चमड़ी, जीभ, हाथ, पैर, वाणी, उपस्थ या मूत्राशय और गुदा या मलद्वार) और पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय अर्थात् रसरूप, गन्ध, शब्द तथा स्पर्श–।।५।।

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं, संघात-श्चेतना धृतिः।
एतत् क्षेत्रं समासेन, सविकार-मुदाहृतम्।।६।।

1 2 3 4 5 6 7 8 9
इच्छा, द्वेषः, सुखम्, दुःखम्, संघातः, चेतना, धृतिः, एतत्, क्षेत्रम्,
11 10 12
समासेन, सविकारम्, उदाहृतम्।

भाषा :– तथा इच्छा-द्वेष, सुख-दुःख, स्थूल देह का पिण्ड, चेतन शक्ति, धारणाशक्ति, इस प्रकार यह क्षेत्र विकारों सहित संक्षेप में (मेरे द्वारा) कहा गया।।६।।

अमानित्व-मदम्भित्व,- महिंसा क्षान्ति-रार्जवम्।
आचार्यो-पासनं शौचं, स्थैर्य-मात्म विनिग्रहः।।७।।

1 2 3 4 5 6
अमानित्वम्, अदम्भित्वम्, अहिंसा, क्षान्तिः, आर्जवम्, आचार्योपासनम्,
7 8 9
शौचम्, स्थैर्यम्, आत्मविनिग्रहः।

भाषा :– बड़प्पन का अभाव, दम्भाचरण का अभाव, अहिंसा, क्षमाभाव, मन-वाणी की मधुरता, श्रद्धा-भक्ति से गुरु-सेवा, बाहर-भीतर-शुद्धि, अन्तःकरण की स्थिरता तथा मन-इन्द्रियों सहित शरीरा संयम–।।७।।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्य,- मनहंकार एव च।
जन्म मृत्यु जरा व्याधि,- दुःख दोषानु-दर्शनम्।।८।।

1 2 4 5 3
इन्द्रियार्थेषु, वैराग्यम्, अनहङ्कारः, एव, च,
6
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।

भाषा :– इहलौकिक एवं परलोक के सम्पूर्ण इन्द्रिय जनित भोगों में अनासक्ति तथा दम्भाचरण का अभाव और जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, दुःख आदि दोषों का बारम्बार स्मरण– ।।८।।

असक्ति - रनभिष्वंगः, पुत्र दार गृहादिषु।
नित्यं च सम-चित्तत्व,- मिष्टानिष्टोप-पत्तिषु।।९।।

2 3 1 6 4 7
असक्तिः, अनभिष्वङ्गः, पुत्रदारगृहादिषु, नित्यम्, च, समचित्तत्वम्,
5
इष्टानिष्टोपपत्तिषु।

भाषा :– पुत्र, स्त्री, घर, धनादि में आसक्ति का अभाव, ममता का अभाव तथा नित्य प्रिय-अप्रिय की प्राप्ति में चित्त का सम रहना– ।।९।।

मयि चानन्य योगेन, भक्ति-रव्यभि-चारिणी।
विविक्त देश सेवित्व,- मरति-र्जन संसदि।।१०।।

1 6 2 3 5 4
मयि, च, अनन्य, योगेन, भक्तिः, अव्यभिचारिणी,
7 9 8
विविक्तदेशसेवित्वम्, अरतिः, जनसंसदि।

भाषा :– मुझ (परमेश्वर) में अनन्य योग द्वारा, मिथ्या (कुमार्गगामी) भक्ति तथा एकान्त स्थान में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्य समुदाय में आसक्ति का अभाव होना–।।१०।।

अध्यात्म ज्ञान नित्यत्वं, तत्त्व ज्ञानार्थ दर्शनम्।
एत-ज्ज्ञान-मिति प्रोक्त,- मज्ञानं यदतोऽ-न्यथा।।११।।

1 2 3 4 9
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम्, तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्, एतत्, ज्ञानम्, इति,
10 8 6 5 7
प्रोक्तम्, अज्ञानम्, यत्, अतः, अन्यथा।

भाषा :– अध्यात्मज्ञान में नित्यस्थिति, तत्त्व ज्ञान के सार रूप परमात्म दर्शन, ये सब ज्ञान है और जो इसके प्रतिकूल है, वह अज्ञान है, ऐसा कहा गया है।।११।।

ज्ञेयं यत् तत् प्रवक्ष्यामि, यज्ज्ञात्वा-मृतमश्नुते।
अनादिमत् परं ब्रह्म, न सत् तन्ना-सदुच्यते।।१२।।

2 1 7 8 3 4 5 6
ज्ञेयम्, यत्, तत्, प्रवक्ष्यामि, यत्, ज्ञात्वा, अमृतम्, अश्नुते,
10 11 12 13 14 9 15 16 17
अनादिमत्, परम्, ब्रह्म, न, सत्, तत्, न, असत्, उच्यते।

भाषा :– तथा जो जानने योग्य है और जिसे जानकर मनुष्य अमृतपान करता है अर्थात् परमानन्द को प्राप्त होता है, उसको भली भांति कहूँगा। वह आदिरहित परब्रह्म न सत् (ऐसा कहा जाता) है और न ही असत् कहा जाता है।।१२।।

सर्वतः पाणि पादं तत्, सर्वतोऽक्षि शिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुति-मल्लोके, सर्व-मावृत्य तिष्ठति।।१३।।

2 3 1 4 5 6 7
सर्वतः, पाणिपादम्, तत्, सर्वतः, अक्षि, शिरोमुखम्, सर्वतः,
8 9 10 11 12
श्रुतिमत्, लोके, सर्वम्, आवृत्य, तिष्ठति।

भाषा :– वह (ब्रह्म) सब ओर हाथ पैर वाला, सब ओर नेत्र, सिर तथा मुखवाला, सब ओर से कान वाला है, क्योंकि वह संसार में सब को व्याप्त करके स्थित है।।१३।।

सर्वे-न्द्रिय गुणा भासं, सर्वे-न्द्रिय विवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृ-च्चैव, निर्गुणं गुण भोक्तृ च।।१४।।

1 2 4 6
सर्वेन्द्रियगुणाभासम्, सर्वेन्द्रियविवर्जितम्, असक्तम्, सर्वभृत्,
3 5 8 9 7
च, एव, निर्गुणम्, गुणभोक्तृ, च।

भाषा :– वह (सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमेश्वर) सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है, परन्तु वास्तव में सब इन्द्रियों

से रहित है तथ आसक्ति रहित होने पर भी सब को धारण-पोषण करने वाला और निर्गुण होने पर भी गुणों को भोगने वाला है।।१४।।

बहि-रन्तश्च भूताना,- मचरं चरमेव च।

सूक्ष्मत्वात् तद-विज्ञेयं, दूरस्थं चान्तिके च तत्।।१५।।

3 4 1 2 6 5 7 8 10

बहिः, अन्तः, च, भूतानाम्, अचरम्, चरम्, एव, च, सूक्ष्मत्वात्,

9 11 15 12 13 14 16

तत्, अविज्ञेयम्, दूरस्थम्, च, अन्तिके, च, तत्।

भाषा :– तथा– वह सब चराचर भूतों के बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर-अचर भी वही है और सूक्ष्म होने से जानने में नहीं आता है तथा अति समीप और दूर में वही विद्यमान् है।।१५।।

अविभक्तं च भूतेषु, विभक्त-मिव च-स्थितम्।

भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयम्, ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।।१६।।

2 1 3 4 5 7 6 10

अविभक्तम्, च, भूतेषु, विभक्तम्, इव, च, स्थितम्, भूतभर्तृ,

11 8 9 12 14 13

च, तत्, ज्ञेयम्, ग्रसिष्णु, प्रभविष्णु, च।

भाषा :– तथा वह परब्रह्म विभाग रहित (आकाश सदृश परिपूर्ण) होने पर भी समस्त चराचर प्राणियों में विभक्त सा स्थित प्रतीत होता है; तथा वह जानने योग्य परमेश्वर, विष्णु रूप से भूतों का भरण-पोषण करने वाला, रुद्ररूप से संहार करने वाला और ब्रह्मा रूप से सब को उत्पन्न करने वाला है।।१६।।

ज्योतिषा-मपि तज्ज्योति,- स्तमसः परमुच्यते।

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञान गम्यं, हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।१७।।

2 3 1 4 5 6 7 8
ज्योतिषाम्, अपि, तत्, ज्योतिः, तमसः, परम्, उच्यते, ज्ञानम्,
9 10 12 11 13
ज्ञेयम्, ज्ञानगम्यम्, हृदि, सर्वस्य, विष्ठितम्।

भाषा :– तथा वह परब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति एवं अन्धकार (माया) से परे कहा जाता है। तथा वह परमेश्वर, ज्ञानस्वरूप, जानने योग्य एवं तत्त्वज्ञान से प्राप्त करने योग्य है और सब के हृदय में स्थित है।।१७।।

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं, ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद् विज्ञाय, मद्-भावायोप-पद्यते।।१८।।

1 2 3 4 6 5 8 7 9
इति, क्षेत्रम्, तथा, ज्ञानम्, ज्ञेयम्, च, उक्तम्, समासतः, मद्भक्तः,
10 11 12 13
एतत्, विज्ञाय, मद्भावाय, उपपद्यते।

भाषा :– इस प्रकार क्षेत्र तथा ज्ञान और जानने योग्य परमात्मा का स्वरूप, संक्षेप से कहा गया। मेरा भक्त इसको तत्त्व से जानकर मेरे सानिध्य को प्राप्त होता है।।१८।।

प्रकृतिं पुरुषं चैव, विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणां-श्चैव, विद्धि प्रकृति सम्भवान्।।१९।।

1 3 2 9 6 5 4 12 8
प्रकृतिम्, पुरुषम्, च, एव, विद्धि, अनादी, उभौ, अपि, विकारान्,
7 11 10 14 15 13
च, गुणान्, च, एव, विद्धि, प्रकृतिसम्भवान्।

भाषा :– प्रकृति और पुरुष, इन दोनों को तू अनादि जान और राग-द्वेष आदि विकारों को तथा त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थों को भी, प्रकृति से ही उत्पन्न हुआ जान।।१९।।

कार्य करण कर्तृत्वे, हेतुः प्रकृति-रुच्यते।
पुरुषः सुख दुःखानां, भोक्तृत्वे हेतु-रुच्यते॥२०॥

1 2 3 4 5 6
कार्यकरणकर्तृत्वे, हेतुः, प्रकृतिः, उच्यते, पुरुषः, सुखदुःखानाम्,
7 8 9
भोक्तृत्वे, हेतुः, उच्यते।

भाषा :– कार्य (पंच तत्त्व, पांच ज्ञानेन्द्रिय विषय) और करण (दस इन्द्रियाँ तथा मन, बुद्धि और अहंकार) के उत्पन्न करने में कारण, प्रकृति कही जाती है। पुरुष यानि जीवात्मा, सुख-दुःख के भोगने में हेतु कहा जाता है॥२०॥

पुरुषः प्रकृति-स्थो हि, भुंक्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुण संगोऽस्य, सद-सद्योनि जन्मसु॥२१॥

3 1 2 6 4 5 12
पुरुषः, प्रकृतिस्थः, हि, भुङ्क्ते, प्रकृतिजान्, गुणान्, कारणम्,
7 8 9 10 11
गुणसङ्गः, अस्य, सत्, असत्, योनिजन्मसु।

भाषा :– प्रकृति में स्थित ही पुरुष, प्रकृति से उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थों को भोगता है तथा उन गुणों का संग ही इस जीवात्मा के इष्टानिष्ट योनियों में जन्म लेने का हेतु बनता है॥२१॥

उपद्रष्टा-नुमन्ता च, भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमा-त्मेति चा-प्युक्तो, देहेऽस्मिन् पुरुषः परः॥२२॥

6 8 7 9 10 11 13
उपद्रष्टा, अनुमन्ता, च, भर्ता, भोक्ता, महेश्वरः, परमात्मा,
14 12 4 15 3 2 1 5
इति, च, अपि, उक्तः, देहे, अस्मिन्, पुरुषः, परः।

भाषा :– पुरुष अर्थात् जीवात्मा इस शरीरमें स्थित हुआ भी गुणातीत होने से परमात्म स्वरूप ही है। वह साक्षी होने से 'उपद्रष्टा', शास्त्रानुकूल सम्मति देने से 'अनुमन्ता', भरण, पोषण और धारण करने से 'भर्ता', जीव रूप से 'भोक्ता' देवाधिदेव होने से 'महेश्वर' तथा सत्-चित्-आनन्द-घन होने से परमात्मा– ऐसा कहा गया है।।२२।।

य एवं वेत्ति पुरुषं, प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि, न स भूयोऽ-भिजायते।।२३।।

7 1 8 2 6 3 4 5 10 11
यः, एवम्, वेत्ति, पुरुषम्, प्रकृतिम्, च, गुणैः, सह, सर्वथा, वर्तमानः,
12 14 9 13 15
अपि, न, सः भूयः, अभिजायते।

भाषा :– इस प्रकार पुरुष को और गुणों सहित प्रकृति को, जो मनुष्य तत्त्व से जानता है, वह सब प्रकार से कर्त्तव्य कर्म करता हुआ भी पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता है।।२३।।

ध्याने-नात्मनि पश्यन्ति, केचिदा-त्मान-मात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन, कर्म योगेन चापरे।।२४।।

4 5 6 2 1 3 7
ध्यानेन, आत्मनि, पश्यन्ति, केचित्, आत्मानम्, आत्मना, अन्ये,
8 9 12 10 11
सांख्येन, योगेन, कर्मयोगेन, च, अपरे।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! उस परम पुरुष परमात्मा को, शुद्ध सूक्ष्मबुद्धि से, ध्यान द्वारा, हृदय में देखते हैं; अन्य कितने ही ज्ञान योग द्वारा तथा और दूसरे कितने ही कर्मयोग द्वारा, उस ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।।२४।।

अन्ये त्वेव-मजानन्तः, श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चाति-तरन्त्येव, मृत्युं श्रुति परायणाः॥२५॥

2 1 3 4 6 5 7 9 11
अन्ये, तु, एवम्, अजानन्तः, श्रुत्वा, अन्येभ्यः, उपासते, ते, अपि,
8 13 14 12 10
च, अतितरन्ति, एव, मृत्युम्, श्रुतिपरायणाः।

भाषा :- परन्तु इन से दूसरे अल्प बुद्धिवश ऐसा जानते हुए, दूसरे तत्त्वज्ञ पुरुषों द्वरा श्रवण कर तदनुसार उपासना करते हैं तथा वे श्रवणपरायण प्राणी भी मृत्युरूप संसार सागर से अवश्यमेव पार उतर जाते हैं॥२५॥

यावत् संजायते किंचित्, सत्त्वं स्थावर जंगमम्।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञ संयोगात्, तद् विद्धि भरतर्षभ॥२६॥

2 6 3 5 4
यावत्, संजायते, किंचित्, सत्त्वम्, स्थावरजङ्गमम्,
8 7 9 1
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्, तत्, विद्धि, भरतर्षभ।

भाषा :- हे भरत कुलभूषण! जब तक जो कुछ भी चर-अचर वस्तु पैदा होती है, उन सब को तू क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही उत्पन्न हुई जान॥२६॥

समं सर्वेषु भूतेषु, तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्व-विनश्यन्तं, यः पश्यति स पश्यति॥२७॥

7 3 4 8 5 2
समम्, सर्वेषु, भूतेषु, तिष्ठन्तम्, परमेश्वरम्, विनश्यत्सु,
6 1 9 10 11
अविनश्यन्तम्, यः, पश्यति, सः पश्यति।

भाषा :– जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर प्राणियों में उस परमेश्वर को अविनाशी और समभाव से देखता है वही यथार्थ द्रष्टा है।।२७।।

समं पश्यन् हि सर्वत्र, सम-वस्थित-मीश्वरम्।
न हिन-स्त्यात्मना-त्मानं, ततो याति परां गतिम्।।२८।।

5 6 1 2 3 4 9 10
समम्, पश्यन्, हि, सर्वत्र, समवस्थितम्, ईश्वरम्, न, हिनस्ति,
7 8 11 14 12 13
आत्मना, आत्मानम्, ततः, याति, पराम्, गतिम्।

भाषा :– क्योंकि जो पुरुष सब में समभाव से स्थित परमेश्वरको समान देखता हुआ अपने द्वारा अपने को नष्ट नहीं करता, वह परमपद को प्राप्त करता है।।२८।।

प्रकृत्यैव च कर्माणि, क्रिय-माणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मान,- मकर्तारं स पश्यति।।२९।।

5 6 1 3 7 4 2 8
प्रकृत्या, एव, च, कर्माणि, क्रियमाणानि, सर्वशः, यः, पश्यति,
9 10 11 13 12
तथा, आत्मानम्, अकर्तारम्, सः, पश्यति।

भाषा :– और जो पुरुष सम्पूर्ण कर्मों को सब प्रकार से प्रकृति द्वारा ही किये जाते हुए देखता है तथा आत्मा को अकर्ता देखता है वही यथार्थ द्रष्टा है।।२९।।

यदा भूत-पृथग्भाव,- मेकस्थ-मनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं, ब्रह्म सम्पद्यते तदा।।३०।।

1 2 3 4 6 7 5
यदा, भूतपृथग्भावम्, एकस्थम्, अनुपश्यति, ततः, एव, च,
8 10 11 9
विस्तारम्, ब्रह्म, सम्पद्यते, तदा।

भाषा :– जिस काल में पुरुष भूतों के भिन्न-भिन्न भावों को, एक परमात्मा में ही स्थित देखता है और उस परामात्मा से ही संपूर्ण भूतों का विस्तार देखता है, उसी क्षण वह ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।।३०।।

अनादि-त्वान् निर्गुणत्वात्, परमात्मा-यमव्ययः।
शरीर-स्थोऽपि कौन्तेय, न करोति न लिप्यते।।३१।।

2 3 6 4 5 7
अनादित्वात्, निर्गुणत्वात्, परमात्मा, अयम्, अव्ययः, शरीरस्थः,
8 1 9 10 11 12
अपि, कौन्तेय, न, करोति, न, लिप्यते।

भाषा :– हे अर्जुन! अनादि तथा गुणातीत होने से यह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित हुआ भी, वास्तव में न कुछ करता है और न ही लिप्त होता है।।३१।।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्या,- दाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रा-वस्थितो देहे, तथात्मा नोपलिप्यते।।३२।।

1 2 4 3 5 6 8
यथा, सर्वगतम्, सौक्ष्म्यात्, आकाशम्, न, उपलिप्यते, सर्वत्र,
10 9 7 11 12 13
अवस्थितः, देहे, तथा, आत्मा, न, उपलिप्यते।

भाषा :– तथा जैसे सर्वत्र व्याप्त आकाश, सूक्ष्म होने के कारण लिपायमान नहीं होता है, वैसे ही सर्वत्र शरीर में व्याप्त आत्मा भी लिपायमान नहीं होता है।।३२।।

यथा प्रकाशय-त्येकः, कृत्स्नं लोक-मिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं, प्रकाशयति भारत॥३३॥

2 8 3 6 7 5 4 12
यथा, प्रकाशयति, एकः, कृत्स्नम्, लोकम्, इमम्, रविः, क्षेत्रम्,
10 9 11 13 1
क्षेत्री, तथा, कृत्स्नम्, प्रकाशयति, भारत।

भाषा :– हे भारत! जैसे एक अकेला सूर्य इस सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करता है वैसे ही अकेली आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है।।३३।।

क्षेत्र - क्षेत्रज्ञ - योरेव,- मन्तरं ज्ञान चक्षुषा।
भूत प्रकृति मोक्षं च, ये विदु-र्यान्ति ते परम्॥३४॥

2 1 3 7 5
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः, एवम्, अन्तरम्, ज्ञानचक्षुषा, भूतप्रकृतिमोक्षम्,
4 6 8 11 9 10
च, ये, विदुः, यान्ति, ते, परम्।

भाषा :– इस प्रकार क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ भेद को तथा कार्य सहित प्रकृति से छूटने के उपाय को जो पुरुष ज्ञान-नेत्रों द्वारा तत्त्व से जानते हैं, वे ज्ञानी परम ब्रह्म परमेश्वर का सानिध्य प्राप्त करते हैं।।३४।।

ऊों तत्सदितिश्रीमद्भगवद्-गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञ-विभाग-योगो नाम त्रयोदशोध्यायः श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु॥

श्लोकाः ३४ गताङ्कः ४८९ एवमादितः ५२३



॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथ चतुर्दशोऽध्याय:

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि, ज्ञानानां ज्ञान-मुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे, परां सिद्धि-मितो गताः॥१॥

3 5 6 1 4 2 7 8
परम्, भूयः, प्रवक्ष्यामि, ज्ञानानाम्, ज्ञानम्, उत्तमम्, यत्, ज्ञात्वा,
10 9 12 13 11 14
मुनयः, सर्वे, पराम्, सिद्धिम्, इतः, गताः।

भाषा :– श्री भगवान् बोले– ज्ञानों में भी अत्युत्तम ज्ञान को मैं फिर भी तेरे लिए कहता हूँ, जिसे जानकर सब मुनिवर इस संसार से मुक्त होकर परमगति को प्राप्त हुए॥१॥

इदं ज्ञान-मुपाश्रित्य, मम साधर्म्य-मागताः।
सर्गेऽपि नोप-जायन्ते, प्रलये न व्यथन्ति च॥२॥

1 2 3 4 5 6 7 12 8
इदम्, ज्ञानम्, उपाश्रित्य, मम, साधर्म्यम्, आगताः, सर्गे, अपि, न,
9 11 13 14 10
उपजायन्ते, प्रलये, न, व्यथन्ति, च।

भाषा :– हे अर्जुन! इस ज्ञान की शरण लेकर मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए पुरुष सृष्टि के आदि में पुनः उत्पन्न नहीं होते तथा प्रलयकाल में भी व्याकुल नहीं होते हैं॥२॥

मम योनि-र्महद् ब्रह्म, तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्व भूतानां, ततो भवति भारत॥३॥

2 5 3 4 7 8 9 6 12
मम, योनिः, महत्, ब्रह्म, तस्मिन्, गर्भम्, दधामि, अहम्, संभवः,
11 10 13 1
सर्वभूतानाम्, ततः, भवति, भारत।

भाषा :– हे भारत! मेरी महद्ब्रह्मरूप योनि, सम्पूर्ण भूतों की योनि अर्थात् गर्भाधान स्थान है तथा मैं इस योनि में, चेतन रूप बीज की स्थापना करता हूँ॥३॥

सर्व योनिषु कौन्तेय, मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनि,- रहं बीज प्रदः पिता॥४॥

2 1 4 5 3 6 8
सर्वयोनिषु, कौन्तेय, मूर्तयः, सम्भवन्ति, याः, तासाम्, ब्रह्म,
7 9 10 11 12
महत्, योनिः, अहम्, बीजप्रदः, पिता।

भाषा :– हे कौन्तेय! सब योनियों में जितनी मूर्तियां अर्थात् शरीर उत्पन्न होते हैं, उन सब की त्रिगुणमयी माया, गर्भ-धारण करने वाली माता है और मैं बीज-स्थापन करने वाला पिता हूँ।।४।।

सत्त्वं रजस्तम इति, गुणाः प्रकृति सम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो, देहे देहिन-मव्ययम्।।५।।

2 3 4 5 7 6 11
सत्त्वम्, रजः, तमः, इति, गुणाः, प्रकृतिसंभावाः, निबध्नन्ति,
1 10 9 8
महाबाहो, देहे, देहिनम्, अव्ययम्।

भाषा :– हे महाबाहो! सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण, ऐसे ये प्रकृति जनित तीन गुण, अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बान्धते हैं।।५।।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्, प्रकाशक-मनामयम्।
सुख संगेन बध्नाति, ज्ञान संगेन चानघ।।६।।

2 5 6 3 4 7
तत्र, सत्त्वम्, निर्मलत्वात्, प्रकाशकम्, अनामयम्, सुखसंगेन,
10 9 8 1
बध्नाति, ज्ञानसङ्गेन, च, अनघ।

भाषा :– हे निष्पाप अर्जुन! उन तीन गुणों में प्रकाश वाला, निर्विकार, सत्त्वगुण तो निर्मल होने के कारण सुख और ज्ञान की आसक्ति से जीवात्मा को बान्धता है।।६।।

रजो रागात्मकं विद्धि, तृष्णा संग समुद्भवम्।
तन् निबध्नाति कौन्तेय, कर्म संगेन देहिनम्।।७।।

3 2 5 4 6 9
रजः, रागात्मकम्, विद्धि, तृष्णासंगसमुद्भवम्, तत्, निबध्नाति,
1 8 7
कौन्तेय, कर्मसङ्गेन, देहिनम्।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! रागस्वरूप रजोगुण को, कामना और आसक्ति से उत्पन्न हुआ जान। वह जीवात्मा को, कर्म की आसक्ति से बान्धता है।।७।।

तम-स्त्वज्ञानजं विद्धि, मोहनं सर्व देहिनाम्।
प्रमादालस्य निद्राभि,- स्तन् निबध्नाति भारत।।८।।

5 1 6 7 4 3
तमः, तु, अज्ञानजम्, विद्धि, मोहनम्, सर्वदेहिनाम्,
9 8 10 2
प्रमादालस्यनिद्राभिः, तत्, निबध्नाति, भारत।

भाषा :– और हे अर्जुन! सब देहाभिमानियों के मोहने वाले तमोगुण को, अज्ञान से उत्पन्न हुआ जान। वह प्रमाद, आलस्य तथा निद्रा के द्वारा जीवात्मा को बान्धता है।।८।।

सत्त्वं सुखे संजयति, रजः कर्मणि भारत।
ज्ञान-मावृत्य तु तमः, प्रमादे संजय-त्युत।।९।।

2 3 4 5 6 1 9 10
सत्त्वम्, सुखे, सञ्जयति, रजः, कर्मणि, भारत, ज्ञानम्, आवृत्य,
8 7 11 13 12
तु, तमः, प्रमादे, संजयति, उत।

भाषा :– हे भारत! सत्त्व गुण सुख में लगाता है। रजोगुण कर्म में तथा तमोगुण तो ज्ञान को ढक कर प्रमाद अर्थात् इन्द्रियों और अन्तःकरण की व्यर्थ चेष्टाओं में लगाता है।।९।।

रज-स्तम-श्चाभि-भूय, सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तम-श्चैव, तमः सत्त्वं रज-स्तथा।।१०।।

3 4 1 5 6 7 2 9 10
रजः, तमः, च, अभिभूय, सत्त्वम्, भवति, भारत, रजः, सत्त्वम्,
11 8 13 14 15 16 12
तमः, च, एव, तमः, सत्त्वम्, रजः, तथा।

भाषा :– और हे अर्जुन! रजोगुण-तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण, सत्त्वगुण-तमोगुण को दबाकर रजोगुण वैसे ही सत्त्वगुण-रजोगुण को दबाकर तमोगुण होता है अर्थात् बढ़ता है।।१०।।

सर्वद्वारेषु देहेस्मिन्, प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्, विवृद्धं सत्त्व-मित्युत।।११।।

4 3 2 5 7 6 1 8
सर्वद्वारेषु, देहे, अस्मिन्, प्रकाशः, उपजायते, ज्ञानम्, यदा, तदा,
10 13 12 9 11
विद्यात्, विवृद्धम्, सत्त्वम्, इति, उत।

भाषा :– जिस काल में इस देह में तथा अन्तःकरण और इन्द्रियों में, चेतना शक्ति और विवेक शक्ति का जन्म होता है, उस समय ऐसा समझना चाहिए कि सत्त्वगुण बढ़ा है।।११।।

लोभः प्रवृत्ति-रारम्भः, कर्मणा-मशमः स्पृहः।
रज-स्येतानि जायन्ते, विवृद्धे भरतर्षभ।।१२।।

4 5 7 6 8 9 2 10
लोभः, प्रवृत्तिः, आरम्भः, कर्मणाम्, अशमः, स्पृहः, रजसि, एतानि,
11 3 11
जायन्ते, विवृद्धे, भरतर्षभ।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! रजोगुण के बढ़ने पर लोभ प्रवृत्ति तथा स्वार्थ बुद्धि से, सब प्रकार के कर्मों का आरम्भ एवं अशान्ति और विषय भोगों की लालसा, ये सब उत्पन्न होते हैं।।१२।।

अप्रकाशोऽ-प्रवृत्तिश्च, प्रमादो मोह एव च।
तम-स्येतानि जायन्ते, विवृद्धे कुरुनन्दन।।१३।।

4 अ 5 6 7 9 11 8 2 10
अप्रकाशः, प्रवृत्तिः, च, प्रमादः, मोहः, एव, च, तमसि, एतानि,
12 3 1
जायन्ते, विवृद्धे, कुरुनन्दन।

भाषा :– तथा हे कुरुनन्दन! तमोगुण के बढ़ने से अज्ञानान्धकार, कर्त्तव्यकर्मों में अरुचि तथा प्रमाद और मोह, ये सब ही पैदा होते हैं।।१३।।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु, प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तम-विदां लोका,- नमलान् प्रतिपद्यते।।१४।।

1 3 4 8 5 6 2 7 9
यदा, सत्त्वे, प्रवृद्धे, तु, प्रलयम्, याति, देहभृत्, तदा, उत्तमविदाम्,
11 10 12
लोकान्, अमलान्, प्रतिपद्यते।

भाषा :– और जब मनुष्य सत्त्वगुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है, तब तो उत्तम कर्म करने वालों के, निर्मल दिव्य स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होता है।।१४।।

रजसि प्रलयं गत्वा, कर्म संगिषु जायते।
तथा प्रलीन-स्तमसि, मूढ योनिषु जायते।।१५।।

1 2 3 4 5 6 8
रजसि, प्रलयम्, गत्वा, कर्मसङ्गिषु, जायते, तथा, प्रलीनः,
7 9 10
तमसि, मूढयोनिषु, जायते।

भाषा :– रजोगुण बढ़ने पर मृत्यु प्राप्त मनुष्य, कर्मों की आसक्ति वाले लोगों में जन्म लेता है; तथा तमोगुण के बढ़ने पर मरा हुआ मनुष्य पशु, कीट, पतङ्गादि योनियों में जन्म लेता है।।१५।।

कर्मणः सुकृत-स्याहुः, सत्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःख,- मज्ञानं तमसः फलम्।।१६।।

2 1 7 4 5 6 8 3
कर्मणः, सुकृतस्य, आहुः, सत्त्विकम्, निर्मलम्, फलम्, रजसः, तु,
9 10 13 11 12
फलम्, दुःखम्, अज्ञानम्, तमसः, फलम्।

भाषा :– सात्त्विक कर्मों का फल सात्त्विक (सुख, ज्ञान तथा वैराग्य) और निर्मल फल है। राजस कर्म का फल दुःख तथा तामसिक कर्म का फल अज्ञान कहा है।।१६।।

सत्त्वात् संजायते ज्ञानं, रजसो लोभ एव च।
प्रमाद मोहौ तमसो, भवतोऽ-ज्ञानमेव च।।१७।।

1 3 2 5 6 7 4 10
सत्त्वात्, संजायते, ज्ञानम्, रजसः, लोभः, एव, च, प्रमादमोहौ,
9 11 12 13 8
तमसः, भवतः, अज्ञानम्, एव, च।

भाषा :– सत्त्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुण से लोभ ही तथा तमोगुण से प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं तथा अज्ञान भी होता है।।१७।।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था, मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्य गुण वृत्तिस्था, अधो गच्छन्ति तामसाः॥१८॥

2 3 1 5 6 4
ऊर्ध्वम्, गच्छन्ति, सत्त्वस्थाः, मध्ये, तिष्ठन्ति, राजसाः,
7 9 10 8
जघन्यगुणवृत्तिस्थाः, अधः, गच्छन्ति, तामसाः।

भाषा :– सत्त्वगुणी ऊपर स्वर्गादि (वैकुण्ठ धाम को छोड़कर) लोकों में जाते हैं। रजोगुणी मध्य अर्थात् मर्त्यलोक में ही रहते हैं तथा तमोगुणी, तमोगुण के कार्यरूप प्रमादालस्यादि में स्थित हुए, अधोगति अर्थात् नीच योनियों को पाते हैं॥१८॥

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं, यदा द्रष्टानु-पश्यति।
गुणेभ्य-श्च परं वेत्ति, मद्भावं सोऽ-धिगच्छति॥१९॥

6 4 3 5 1 2 7 9
न, अन्यम्, गुणेभ्यः, कर्तारम्, यदा, द्रष्टा, अनुपश्यति, गुणेभ्यः,
8 10 11 13 12 14
च, परम्, वेत्ति, मद्भावम्, सः, अधिगच्छति।

भाषा :– जब द्रष्टा (साक्षीपुरुष) तीनों गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता और तीन गुणों से मुझ परमात्मा को तत्त्व से जानता है, उस काल में वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है॥१९॥

गुणा-नेता-नतीत्य त्रीन्, देही देह समुद्भवान्।
जन्म मृत्यु जरा दुःखै,- र्विमुक्तोऽ-मृत-मश्नुते॥२०॥

5 2 6 4 1 3 7
गुणान्, एतान्, अतीत्य, त्रीन्, देही, देहसमुद्भवान्, जन्ममृत्युजरादुखैः,
8 9 10
विमुक्तः, अमृतम्, अश्नुते।

भाषा :– तथा यह पुरुष, इन स्थूल शरीरोत्पत्ति के कारण रूप तीन गुणों को पार करके जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा तथा अन्यान्य दुःखों से मुक्त होकर, अमृत पान करता है अर्थात् परमानन्द को प्राप्त होता है।।२०।।

अर्जुन उवाच

कै-र्लिंगै-स्त्रीन् गुणानेता,- नतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतां,- स्त्रीन् गुणा-नति-वर्तते।।२१।।

5 6 2 3 1 4 7 11 9
कैः, लिङ्गैः, त्रीन्, गुणान्, ऐतान, अतीतः, भवति, प्रभो, किम्,
10 12 8 13 14 15 16
आचारः, कथम्, च, एतान्, त्रीन्, गुणान्, अतिवर्तते।

भाषा :– भगवान् वासुदेव के उपर्युक्त रहस्यमय वचनों को सुनकर अर्जुन ने अपने एवं लोक कल्याणार्थ शंका समाधानपरक निम्न तीन प्रश्न पूछे :– अर्जुन बोले– इन तीनों गुणों से पार हुआ पुरुष किन लक्षणों से युक्त होता है? किस प्रकार के आचरणों वाला होता है? तथा हे प्रभो! मनुष्य किस उपाय से इन तीन गुणों से अतीत होता है? ।।२१।।

श्रीभगवानुवाच

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च, मोह-मेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि, न निवृत्तानि कांक्षति।।२२।।

2 3 4 5 6 7 11 1 8 10
प्रकाशम्, च, प्रवृत्तिम्, च, मोहम्, एव, च, पाण्डव, न, द्वेष्टि,
9 12 13 14
सम्प्रवृत्तानि, न, निवृत्तानि, कांक्षति।

भाषा :– श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन! सत्त्वगुण के कार्यरूप प्रकाश को, रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति को तथा तमोगुण के मोह को भी, न तो प्रवृत्त होने पर उनसे द्वेष करता है और न निवृत्त होने पर उनकी चेष्टा करता है–।।२२।।

उदासी-नवदासीनो, गुणै-र्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव, योऽ-वतिष्ठति नेंगते।।२३।।

2 3 4 1 5 6 7 9
उदासीनवत्, आसीनः, गुणैः, यः, न, विचाल्यते, गुणाः, वर्तन्ते,
10 8 11 12 13 14
इति, एव, यः, अवतिष्ठति, न, इङ्गते।

भाषा :– जो उदासी सदृश (मात्र द्रष्टा) स्थित हुआ, गुणों द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता तथा गुण ही गुणों में बरतते हैं, ऐसा समझता हुआ, जो परमानन्द परमात्मा में, एकीभाव से स्थित रहता है एवं उस स्थिति से कभी चलायमान नहीं होता– ।।२३।।

सम दुःख सुखः स्वस्थः, सम लोष्टाश्म कांचनः।
तुल्य प्रिया-प्रियो धीर,- स्तुल्य निन्दात्म संस्तुतिः।।२४।।

2 1 3 5 4
समदुःखसुखः, स्वस्थः, समलोष्टाश्मकांचनः, तुल्यप्रियाप्रियः, धीरः,
6
तुल्यनिदात्मसंस्तुतिः।

भाषा :– जो नित्यात्मभाव में स्थित, दुःख-सुख में सम, मिट्टी, पत्थर और सोने में समभाव वाला, ज्ञानी, प्रिय-अप्रिय को एक जैसा मानने वाला तथा अपनी निन्दा-प्रशंसा में भी समान भाव वाला है–।।२४।।

मानाप-मानयो-स्तुल्य,- स्तुल्यो मित्रा-रिपक्षयोः।
सर्वारम्भ परित्यागी, गुणातीतः स उच्यते॥२५॥

1 2 4 3 5
मानापमानयोः, तुल्यः, तुल्यः, मित्रारिपक्षयोः, सर्वारम्भपरित्यागी,
7 6 8
गुणातीतः, सः, उच्यते।

भाषा :– जो मान-अपमान में सम है, मित्र-शत्रु आदि पक्ष में सम है तथा समस्त कार्यारम्भों में कर्तापन के अभिमान से रहित है, ऐसा, वह स्तुत्य पुरुष सब गुणों से परे अर्थात् गुणातीत है॥२५॥

मां च योऽ-व्यभिचारेण, भक्ति योगेन सेवते।
स गुणान् समती-त्येतान्, ब्रह्म भूयाय कल्पते॥२६॥

6 1 2 3 4 5 7 8
माम्, च, यः, अव्यभिचारेण, भक्तियोगेन, सेवते, सः, गुणान्,
10 9 11 12
समतीत्य, एतान्, ब्रह्मभूयाय, कल्पते।

भाषा :– तथा जो पुरुष अव्यभिचारिणी भक्ति योग अर्थात् निरहङ्कार निरभिमान हो अनन्य प्रेम, श्रद्धा, आस्था द्वारा, निरन्तर मुझे भजता है, वह भी इन तीन गुणों को सम्यक् लांघकर, सच्चिदानन्द ब्रह्म को प्राप्त करने योग्य बनता है॥२६॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाह,- ममृत-स्या-व्यय-स्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य, सुख-स्यैकान्ति-कस्य च॥२७॥

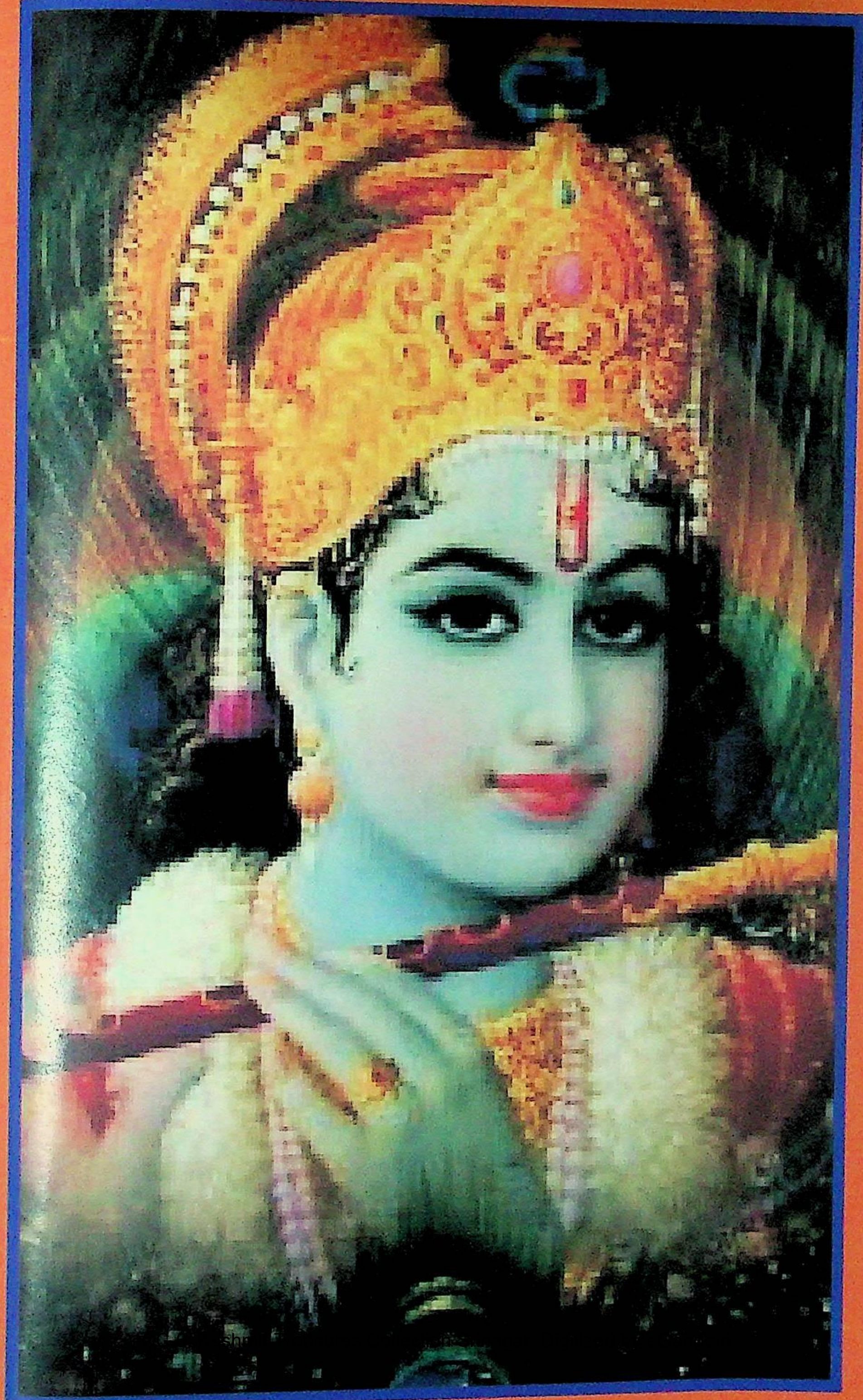
2 12 13 11 4 1 3 6
ब्रह्मणः, हि, प्रतिष्ठा, अहम्, अमृतस्य, अव्ययस्य, च, शाश्वतस्य,
5 7 10 9 8
च, धर्मस्य, सुखस्य, ऐकान्तिकस्य, च।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! उस अविनाशी परब्रह्म का और अमृत का तथा नित्यधर्म (सनातन धर्म) का और एकरस अखण्डानन्द का, मैं ही परम आश्रय हूँ।।२७।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भवगद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे गुण-त्रय-विभाग-योगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु।।१४।।

श्लोकाः २७ गताङ्कः ५२३ एवमादितः ५५०









॥ उों नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथ पञ्चदशोऽध्याय:

श्रीभगवानुवाच

उर्ध्व मूल-मधः शाख,- मश्वत्थं प्राहु-रव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि, यस्तं वेद स वेदवित्॥१॥

1 2 3 4 6 5 7
उर्ध्वमूलम्, अधः, शाखम्, अश्वत्थम्, प्राहुः, अव्ययम्, छन्दांसि,
8 9 11 10 12 13 14
यस्य, पर्णानि, यः, तम्, वेद, सः, वेदवित्।

भाषा :– श्रीभगवान् बोले– सब से ऊपर, नित्यानन्दधाम में निवास करने वाले आदि पुरुष परमात्मारूप, मूल वाले तथा नीचे ब्रह्मा रूप, मुख्य शाखा वाले, जिस संसार रूप अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष को अविनाशी कहते हैं तथा वेद जिसके पत्ते कहे गये हैं, उस संसार वृक्ष को, जो पुरुष मूल सहित तत्त्व से जानता है, वह वेदवेता है॥१॥

अध-श्चो-र्ध्वं प्रसृता-स्तस्य शाखा,
गुण प्रवृद्धा विषय प्रवालाः।
अध-श्च मूला-न्यनु-संततानि,
कर्मानु-बन्धीनि मनुष्य लोके॥२॥

5 6 7 8 1 4 2
अधः, च, ऊर्ध्वम्, प्रसृताः, तस्य, शाखाः, गुणप्रवृद्धाः,
3 12 13 11 14 10
विषयप्रवालाः, अधः, च, मूलानि, अनुसंततानि, कर्मानुबन्धीनि,
9
मनुष्यलोके।

भाषा :– उस संसार वृक्ष की त्रिगुण रूप जल द्वारा बढ़ी हुई एवं विषय भोग रूप कोंपलों वाली, मनुष्य, देव-दानव आदि योनि रूप शाखाएँ, नीचे-ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं; तथा मर्त्यलोक में कर्मानुसार बान्धने वाली अहंता-ममता-वासना रूप जड़ें भी नीचे-ऊपर सभी लोकों में व्याप्त हो रही हैं॥२॥

न रूपम-स्येह तथोप- लभ्यते,
नान्तो न चादि-र्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थ-मेनं सुविरूढ-मूल,-
मसंग शस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥३॥

5 2 1 4 3 6 7 11 10 9
न, रूपम्, अस्य, इह, तथा, उपलभ्यते, न, अन्तः, न, च,
8 13 12 14 17 15 16
आदिः, न, च, सम्प्रतिष्ठा, अश्वत्थम्, एनम्, सुविरूढमूलम्,
19 18 20
असङ्गशस्त्रेण, दृढेन, छित्त्वा।

भाषा :– परंतु इस संसार वृक्ष का स्वरूप जैसाकहा है वैसा यहां नहीं पाया जाता, क्योंकि न तो इसका आदि है और न ही अन्त है; तथा न इसकी अच्छी प्रकार स्थिति है। अतः इस अहंता-ममतारूप अति दृढ़ मूल वाले संसार रूप पीपल-वृक्ष को, दृढ़ वैराग्य रूप शास्त्र द्वारा काट कर–।।३।।

ततः पदं तत् परिमार्गितव्यं
यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये,
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।।४।।

1 3 2 4 5 6 8 9
ततः, पदम्, तत्, परिमार्गितव्यम्, यस्मिन्, गताः, न, निवर्तन्ति,
7 15 16 10 17 18 19 11 13
भूयः, तम्, एव, च, आद्यम्, पुरुषम्, प्रपद्ये, यतः, प्रवृत्तिः,
14 12
प्रसृता, पुराणी।

भाषा :– तदुपरान्त उस परमपद रूप परमेश्वर को अच्छी प्रकार खोजना चाहिये, जिसमें गये हुए पुरुष फिर संसार में नहीं आते और जिस परमेश्वर से इस पुरातन संसार वृक्ष की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई, उस ही आदि पुरुष की मैं शरण हूँ, इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके–।।४।।

निर्मान मोहा जित संग दोषा,
अध्यात्म नित्या विनि वृत्त कामाः।
द्वन्दवै-र्विमुक्ताः सुख दुःख संज्ञै,-
र्गच्छन्त्य-मूढाः पद-मव्ययं तत्।।५।।

1 2 3 4
निर्मानमोहाः, जितसङ्गदोषाः, अध्यात्मनित्याः, विनिवृत्तकामाः,
6 7 5 12 8 11
द्वन्दवैः, विमुक्ताः, सुखदुःखसङ्गैः, गच्छन्ति, अमूढाः, पदम्,
10 9
अव्ययम्, तत्।

भाषा :– मान-मोह रहित, आसक्ति दोष मुक्त, परमात्म स्वरूप में स्थित, कामनामुक्त, सुख-दुःख नामक युगलों से स्वतन्त्र हुए, ज्ञानी जन, उस सत्य सनातन परमपद को प्राप्त करते हैं।।५।।

न तद् भासयते सूर्यो, न शशांको न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते, तद्-धाम परमं मम।।६।।

2 1 8 3 4 5 6 7 9 10
न, तत्, भासयते, सूर्यः, न, शशाङ्कः, न, पावकः, यत्, गत्वा,
11 12 13 16 15 14
न, निवर्तन्ते, तत्, धाम, परमम्, मम।

भाषा :– और उस उपर्युक्त 'स्वप्रकाशितपरमपद को' न सूर्य न चन्द्रमा और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकता है तथा जिस मोक्षस्थान को प्राप्त होकर आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है, वही मेरा वैकुण्ठ धाम है।।६।।

ममै-वांशो जीवलोके, जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानी-न्द्रियाणि, प्रकृति-स्थानि कर्षति।।७।।

3 4 6 1 2 5 8
मम्, एव, अंशः, जीवलोके, जीवभूतः, सनातनः, मनःषष्ठानि,
9 7 10
इन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि, कर्षति।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! इस शरीर में यह जीवात्मा, मेरा ही शाश्वत अंश है; और वही इन त्रिगुण माया में स्थित हुए मन तथा ज्ञानेन्द्रियों को आकर्षित करता है।।७।।

शरीरं यदवा-प्नोति, यच्चाप्यु-त्क्रामतीश्वरः।
गृही-त्वैतानि संयाति, वायु-र्गन्धा-निवाशयात्।।८।।

13 12 14 7 11 6 8 5 10
शरीरम्, यत्, अवाप्नोति, यत्, च, अपि, उत्क्रामति, ईश्वरः, गृहीत्वा,
9 15 2 4 1 3
एतानि, संयाति, वायुः, गन्धान्, इव, आशयात्।

भाषा :– जैसे वायु गन्धस्थान से गन्ध को ग्रहण कर ले जाता है, देहाधीश जीवात्मा भी जिस पहले शरीर को त्यागता है, उससे इस मन सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को ग्रहण कर पुनः जिस शरीर को प्राप्त होता है, उसमें जाता है।।८।।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च, रसनं घ्राण-मेव च।
अधिष्ठाय मन-श्चायं, विषया-नुपसेवते।।९।।

2 3 5 4 7 8 12 6 11
श्रोत्रम्, चक्षुः, स्पर्शनम्, च, रसनम्, घ्राणम्, एव, च, अधिष्ठाय,
10 9 1 13 14
मनः, च, अयम्, विषयान्, उपसेवते।

भाषा :– तथा उस नये शरीर में स्थित हुआ, यह जीवात्मा, कान, आँख और त्वचा को तथा जिह्वा, नाक और मन को आश्रित कर अर्थात् इनके सहारे से ही, विषयों का सेवन करता है।।९।।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि, भुंजानं वा गुणा-न्वितम्।
विमूढा नानु-पश्यन्ति, पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः।।१०।।

1 3 2 7 4 5 6
उत्क्रामन्तम्, स्थितम्, वा, अपि, भुञ्जानम्, वा, गुणान्वितम्,
8 9 10 12 11
विमूढाः, न, अनुपश्यन्ति, पश्यन्ति, ज्ञानचक्षुषः।

भाषा :– परन्तु शरीर छोड़ कर जाते हुए या शरीरस्थ आत्मा को और विषयों को भोगते हुए को, अथवा त्रिगुणयुक्त हुए को भी, अज्ञानीजन नहीं देख सकते हैं; केवल ज्ञानरूप नेत्रों वाले अर्थात् ज्ञानी जन ही तत्त्व से जानते व देखते हैं।।१०।।

यतन्तो योगिन-श्चैनं, पश्य-न्त्यात्म-न्यवस्थितम्।
यतन्तोऽ-प्यकृता-त्मानो, नैनं पश्यन्त्य-चेतसः।।११।।

5 1 7 4 6 2 3
यतन्तः, योगिनः, च, एनम्, पश्यन्ति, आत्मनि, अवस्थितम्,
10 11 8 13 12 14 9
यतन्तः, अपि, अकृतात्मानः, न, एनम्, पश्यन्ति, अचेतसः।

भाषा :– योगी जन अपने हृदय में अवस्थित इस आत्मा को अभ्यास योग द्वारा यत्न करते हुए ही तत्त्व से जानते हैं तथा अशुद्ध अन्तःकरण वाले अज्ञानी जन, यत्न करते हुए भी इस को जानने में असमर्थ हैं।।११।।

यदा-दित्यगतं तेजो, जगद् भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चा-ग्नौ, तत्तेजो विद्धि मामकम्।१२।।

1 3 2 5 6 4 8
यत्, आदित्यगतम्, तेजः, जगत्, भासयते, अखिलम्, यत्,
9 10 7 11 12 14 15 13
चन्द्रमसि, यत्, च, अग्नौ, तत्, तेजः, विद्धि, मामकम्।

भाषा :– तथा हे भारत्! जो तेज सुर्य में स्थित हुआ सम्पूर्ण

जगत् को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्र में स्थित है और जो तेज अग्नि में स्थित है, उसे तू मेरा ही तेज जान॥१२॥

गामाविश्य च भूतानि, धारयाम्य-हमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः, सोमो भूत्वा रसात्मकः॥१३॥

3 4 1 6 7 2 5 14
गाम्, आविष्य, च, भूतानि, धारयामि, अहम्, ओजसा, पूष्णामि,
8 13 12 10 11 9
च, औषधीः, सर्वाः, सोमः, भूत्वा, रसात्मकः।

भाषा :– और मैं पृथ्वी में प्रवेश कर के, शक्ति द्वारा, सब भूतों को धारण करता हूँ तथा रस स्वरूप चन्द्रमा होकर सब वनस्पतियों को पुष्ट करता हूँ॥१३॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा, प्राणिनां देह-माश्रितः।
प्राणा-पान समायुक्तः, पचा-म्यन्नं चतुर्विधम्॥१४॥

1 5 6 2 3 4
अहम्, वैश्वानरः, भूत्वा, प्राणिनाम्, देहम्, आश्रितः,
7 10 9 8
प्राणापानसमायुक्तः, पचामि, अन्नम्, चतुर्विधम्।

भाषा :– मैं ही शरीर में स्थित हो अग्नि रूप होकर प्राण और अपान वायु से युक्त हुआ चार प्रकार के (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य) अन्न को पचाता हूँ॥१४॥

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो,
मत्तः स्मृति-र्ज्ञान-मपोहनं च।
वेदैश्च सर्वै-रहमेव वेद्यो,
वेदान्त-कृद्वेद-विदेव चाहम्॥१५॥

3 1 2 4 5 6 7 8
सर्वस्य, च, अहम्, हृदि, संनिविष्टः, मत्तः, स्मृतिः, ज्ञानम्,
10 9 13 11 12 14 15 16 17
अपोहनम्, च, वेदैः, च, सर्वैः, अहम्, एव, वेद्यः, वेदान्तकृत्,
19 21 18 20
वेदवित्, एव, च, अहम्।

भाषा :– तथा मैं ही सब भूतों के हृदय में स्थित हूँ। मेरे से ही स्मृति, ज्ञान तथा अपोहन (विचार द्वारा बुद्धि में रहने वाले संशयादि दोषों को हटाने का नाम) होता है और चारों वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ तथा वेदान्त कर्ता और वेदों का जानने वाला भी मैं ही हूँ।।१५।।

द्वा-विमौ पुरुषौ लोके, क्षर-श्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि, कूटस्थोऽ-क्षर उच्यते।।१६।।

7 6 8 1 2 3 4 5 12 11
द्वौ, इमौ, पुरुषौ, लोके, क्षरः, च, अक्षरः, एव, च, क्षरः,
9 10 13 14 15
सर्वाणि, भूतानि, कूटस्थः, अक्षरः, उच्यते।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! संसार में नाश्वान् और अविनाशी भी यह दो प्रकार के पुरुष हैं। सम्पूर्ण भूतों के शरीर तो नाशवान् और जीवात्मा अविनाशी– ऐसा कहा जाता है।।१६।।

उत्तमः पुरुष-स्त्व-न्यः, परमात्मे-त्युदाहृतः।
यो लोक त्रय-माविश्य, विभर्त्य-व्यय ईश्वरः।।१७।।

1 2 3 4 11 12 13 5 6
उत्तमः, पुरुषः, तु, अन्यः, परमात्मा, इति, उदाहृतः, यः, लोकत्रयम्,
7 8 9 10
आविश्य, विभर्ति, अव्ययः, ईश्वरः।

भाषा :– तथा उन दोनों में उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सब का धारण-पोषण करता है और अविनाशी परमेश्वर तथा परमात्मा, ऐसे कहा गया है।।१७।।

यस्मात् क्षर-मतीतोऽह,- मक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽ-स्मि लोके वेदे च, प्रथितः पुरुषोत्तमः।।१८।।

1 3 4 1 6 7 5 8 9
यस्मात्, क्षरम्, अतीतः, अहम्, अक्षरात्, अपि, च, उत्तमः, अतः,
15 10 12 11 14 13
अस्मि, लोके, वेदे, च, प्रथितः, पुरुषोत्तमः।

भाषा :– क्योंकि मैं नाशवान् (जीव) से तो सर्वथा अतीत हूँ और जीवात्मा जो अविनाशी है उससे भी उत्तम हूँ। तथा वेद में भी पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ।।१८।।

यो मामेव-मसम्मूढो, जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद् भजति मां, सर्व भावेन भारत।।१९।।

3 5 2 4 7 6 8 9
यः, माम्, एवम्, असंमूढः, जानाति, पुरुषोत्तमम्, सः, सर्ववित्,
12 11 10 1
भजति, माम्, सर्वभावेन, भारत।

भाषा :– हे पार्थ! इस प्रकार जो ज्ञानी पुरुष मेरे को, 'पुरुषोत्तम' जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष, सब प्रकार से मुझ वासुदेव को ही भजता है।।१९।।

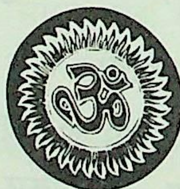
इति गुह्यतमं शास्त्र,- मिद-मुक्तं मयानघ।
एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात्, कृत-कृत्यश्च भारत।।२०।।

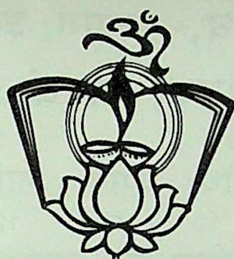
3 5 6 4 8 7 1 9
इति, गुह्यतमम्, शास्त्रम्, इदम्, उक्तम्, मया, अनघ, एतत्,
10 11 14 13 12 2
बुद्ध्वा, बुद्धिमान्, स्यात्, कृतकृत्यः, च, भारत।

भाषा :– हे निष्पाप! हे भारत! ऐसे यह अति गोपनीय,रहस्ययुक्त शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया। इसको तत्त्व से जानकर मनुष्य, ज्ञानवान् तथा धन्य हो जाता है।।२०।।

ओं तत्सदिति श्रीमद्-भगवद्-गीता-सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पंचदशोऽध्यायः श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु।।

श्लोकाः २० गताङ्क ५५० एवमादितः ५७०





॥ उों नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

अभयं सत्त्व-संशुद्धि,- र्ज्ञान योग व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च, स्वाध्याय-स्तप आर्जवम्॥१॥

1 2 3 5 6 4
अभयम्, सत्त्वसंशुद्धिः, ज्ञानयोगव्यवस्थितिः, दानम्, दमः, च,
7 10 8 9 11
यज्ञः, च, स्वाध्यायः, तपः, आर्जवम्।

भाषा :– प्रस्तुत अध्याय में भगवान् वासुदेव अर्जुन से दैवासुर सम्पदा प्राप्त पुरुषों के लक्षण क्रमशः कहते हैं, उनमें से– श्रीभगवान् बोले– निर्भयता, अन्तःकरण शुद्धि, ज्ञानयोग में दृढ़ स्थिति तथा दान, इन्द्रिय निग्रह, यज्ञ, वेदशास्त्राध्ययन और तप तथा इन्द्रियों सहित अन्तःकरण की सरलता– ॥१॥

अहिंसा सत्य-मक्रोध,- स्त्यागः शान्ति-रपैशुनम्।
दया भूतेष्व-लोलुप्त्वं, मार्दवं ह्री-रचापलम्।।२।।

1 2 3 4 5 6 8
अहिंसा, सत्यम्, अक्रोधः, त्यागः, शान्तिः, अपैशुनम्, दया,
7 9 10 11 12
भूतेषु, अलोलुप्त्वम्, मार्दवम्, ह्रीः, अचापलम्।

भाषा :– अहिंसा, सत्यभाषण, अक्रोध, निष्काम कर्म, शान्ति, निन्दा न करना तथा सब प्राणियों में दया, अनासक्ति, कोमलता, लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव– ।।२।।

तेजः क्षमा धृतिः शौच,- मद्रोहो नाति-मानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवी,- मभिजातस्य भारत।।३।।

1 2 3 4 5 6 11
तेजः, क्षमा, धृतिः, शौचम्, अद्रोहः, नातिमानिता, भवन्ति,
9 8 10 7
सम्पदम्, दैवीम्, अभिजातस्य, भारत।

भाषा :– तथा तेज, क्षमा, धैर्य, भीतर-बाहर की शुद्धि, शत्रुभाव का त्याग, बड़प्पन का त्याग, यह सब तो अर्जुन दैवी-सम्पदा-प्राप्त पुरुषों के लक्षण हैं।।३।।

दम्भो दर्पोऽ-भिमानश्च, क्रोधः पारुष्य-मेव च।
अज्ञानं चाभि-जातस्य, पार्थ संपद-मासुरीम्।।४।।

3 2 5 4 7 9 11 6 10
दम्भः, दर्पः, अभिमानः, च, क्रोधः, पारुष्यम्, एव, च, अज्ञानम्,
8 14 1 13 12
च, अभिजातस्य, पार्थ, संपदम्, आसुरीम्।

भाषा :– और– हे अर्जुन! पाखण्ड, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध और कटुवाणी एवं अज्ञान– ये सब आसुरी सम्पदा–प्राप्त पुरुष के लक्षण हैं।।४।।

दैवी सम्पद् विमोक्षाय, निबन्धा-यासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवी,- मभिजातोऽसि पाण्डव।।५।।

1 2 3 5 4 6 8 9
दैवी, सम्पत्, विमोक्षाय, निबन्धाय, आसुरी, मता, मा, शुचः,
11 10 12 13 7
सम्पदम्, दैवीम्, अभिजातः, असि, पाण्डव।

भाषा :– और हे अर्जुन! देवी सम्पदा मोक्ष के लिए तथा आसुरी सम्पदा बन्धन के लिए मानी गई है। अतः हे पाण्डव! तू शोक मत कर, क्योंकि तू दैवी सम्पदा को प्राप्त हुआ है।।५।।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽ-स्मिन्, दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त, आसुरं पार्थ मे श्रृणु।।६।।

5 4 2 3 6 8 10 7 9
द्वौ, भूतसर्गौ, लोके, अस्मिन्, दैवः, आसुरः, एव, च, दैवः,
11 12 13 1 14 15
विस्तरशः, प्रोक्तः, आसुरम्, पार्थ, मे, श्रृणु।

भाषा :– हे अर्जुन! इस लोक में प्राणियों के स्वभाव दो प्रकार के हैं, एक देवों जैसा और दूसरा असुरों जैसा। देवों का स्वभाव तो विस्तार पूर्वक कहा गया है, अब असुरों के स्वभाव को भी सविस्तार मुझ से सुन।।६।।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च, जना न विदु-रासुराः।
न शौचं नापि चाचारो, न सत्यं तेषु विद्यते।।७।।

3 4 5 6 2 7 8 1 10
प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम्, च, जनाः, न, विदुः, आसुराः, न,
11 12 17 14 13 15 16 9 18
शौचम्, न, अपि, च, आचारः, न, सत्यम्, तेषु, विद्यते।

भाषा :– असुर लोग कर्त्तव्य कर्म में रूचि तथा अकर्त्तव्य कर्म में अरूचि को भी नहीं जानते हैं। अतः उनमें न तो भीतर-बाहर की शुद्धि है न श्रेष्ठ आचरण और न सत्यभाषण ही है।।७।।

असत्य-मप्रतिष्ठं ते, जगदाहु-रनीश्वरम्।
अपरस्पर सम्भूतं, किमन्यत् काम हैतुकम्।।८।।

5 4 1 3 2 6 7
असत्यम्, अप्रतिष्ठम्, ते, जगत्, आहुः, अनीश्वरम्, अपरस्परसम्भूतम्,
10 9 8
किम्, अन्यत्, कामहैतुकम्।

भाषा :– और वे कहते हैं कि जगत् निरालम्ब, असत्य तथा परमात्मा रहित, परस्पर पुरुष-स्त्री संभोग से उत्पन्न हुआ है, अतः भोगों को भोगने के लिए ही यह संसार है। इसके सिवा अन्य क्या है?।।८।।

एतां दृष्टि-मवष्टभ्य, नष्टात्मानोऽ-ल्पबुद्धयः।
प्रभव-न्त्युग्र कर्माणः, क्षयाय जगतोऽ-हिताः।।९।।

1 2 3 4 5 10
एताम्, दृष्टिम्, अवष्टभ्य, नष्टात्मानः, अल्पबुद्धयः, प्रभवन्ति,
7 9 8 6
उग्रकर्माणः, क्षयाय, जगतः, अहिताः।

भाषा :– परिणामस्वरूप इस दृष्टिकोण का सहारा लेकर, क्षीण मानसिकता वाले, तथा मन्द बुद्धिजन, दूसरों को पीड़ा देने वाले, दुष्टकर्मा, मात्र संसार का नाश करने के लिए ही जन्म लेते हैं।।९।।

काम-माश्रित्य दुष्पूरं, दम्भ मान मदान्विताः।
मोहाद् गृहीत्वा-सद्ग्राहान्, प्रवर्तन्तेऽ-शुचिव्रताः॥१०॥

3 4 2 1 5 7
कामम्, आश्रित्य, दुष्पूरम्, दम्भमानमदान्विताः, मोहात्, गृहीत्वा,
6 9 8
असद्ग्राहान्, प्रवर्तन्ते, अशुचिव्रताः।

भाषा :– ऐसे लोग-दम्भाभिमानमदयुक्त, न पूर्ण होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर, अज्ञानवश, व्यर्थ सिद्धान्तों को ग्रहण कर, भ्रष्टाचार का पालन करते हैं॥१०॥

चिंता-मपरिमेयां च, प्रलयान्ता-मुपाश्रिताः।
कामोप-भोग-परमा, एता-वदिति निश्चिताः॥११॥

3 2 5 1 4 6
चिंताम्, अपरिमेयाम्, च, प्रलयान्ताम्, उपाश्रिताः, कामोपभोगपरमाः,
7 8 9
एतावत्, इति, निश्चिताः।

भाषा :– तथा वे प्रलयान्त अर्थात् मृत्यपर्यन्त अनन्त चिन्ताओं के आश्रित हो, और विषयभोगों को भोगने में संलग्न एवं इसी में आनन्द है, ऐसा मानने वाले हैं॥११॥

आशा पाश शतै-र्बद्धाः, काम क्रोध परायणाः।
ईहन्ते काम भोगार्थ,- मन्याये-नार्थ संचयान्॥१२॥

1 2 3 7 4
आशापाशशतैः, बद्धाः, कामक्रोधपरायणाः, ईहन्ते, कामभोगार्थम्,
5 6
अन्यायेन, अर्थसञ्चयान्।

भाषा :– इसी उधेड़बुन में, सैंकड़ों आशारूप बन्धनों में बन्ध

कर, काम, क्रोध परायण हो, विषयभोगों की तृप्ति के लिए, अन्यायपूर्वक चल-अचल धनसम्पत्ति का संग्रह करते हैं।।१२।।

इद-मद्य मया लब्ध,- मिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इद-मस्ती-दमपि मे, भविष्यति पुन-र्धनम्।।१३।।

3 2 1 4 5 7 6 14
इदम्, अद्य, मया, लब्धम्, इमम्, प्राप्स्ये, मनोरथम्, इदम्,
11 9 13 8 15 12 10
अस्ति, इदम्, अपि, मे, भविष्यति, पुनः, धनम्।

भाषा :– ऐसे पुरुषों के विचार इस प्रकार होते हैं कि– मैंने आज इतना पाया और अब इस इच्छा की प्राप्ति होगी तथा मेरे पास यह इतना बैंक बेलेंस बना है और पुनः यह और भी बढ़ेगा–।।१३।।

असौ मया हतः शत्रु,- र्हनिष्ये चा-परानपि।
ईश्वरोऽ-हमहं भोगी, सिद्धोऽहं बलवान् सुखी।।१४।।

1 3 4 2 8 11 5 6 10
असौ, मया, हतः, शत्रुः, हनिष्ये, च, अपरान्, अपि, ईश्वरः,
7 9 12 14 13 15 16
अहम्, अहम्, भोगी, सिद्धः, अहम्, बलवान्, सुखी।

भाषा :– तथा वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया, दूसरे शत्रुओं को भी मैं मारूँगा। मैं ईश्वर और ऐश्वर्य को भोगने वाला हूँ तथा मैं सिद्धियों का पाने वाला, पराक्रमी और सुखी हूँ–।।१४।।

आढ्योऽ-भिजनवान-स्मि,
कोऽन्योऽ-स्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य,
इत्यज्ञान विमोहिताः।।१५।।

1 2 3 7 6 8 5
आद्यः, अभिजनवान्, अस्मि, कः, अन्यः, अस्ति, सदृशः,
4 9 10 11 12 13
मया, यक्ष्ये, दास्यामि, मोदिष्ये, इति, अज्ञानविमोहिताः।

भाषा :– पुनः सोचता है कि– मैं बड़ा धनवान्, बड़े परिवार वाला बन गया हूँ। भला मेरे समान दूसरा कौन है? मैं यज्ञ करूँगा, दान दूंगा, आनन्द प्राप्त करूँगा, इस प्रकार के अज्ञान से मोहित, वे भ्रमित हैं– ।।१५।।

अनेक चित्त विभ्रांता, मोह जाल समावृताः।
प्रसक्ताः काम भोगेषु, पतन्ति नरकेऽ-शुचौ।।१६।।

1 2 4 3
अनेकचित्तविभ्रांताः, मोहजालसमावृताः, प्रसक्ताः, कामभोगेषु,
7 6 5
पतन्ति, नरके, अशुचौ।

भाषा :– और वे– अनेक प्रकार से भ्रमित मन वाले मूढ़ लोग, मोहजाल में फंसे हुए, विषयभोगों में लिप्त हुए, अपवित्र नरकों में गिरते हैं अर्थात् अभावग्रस्त, पीड़ित, प्रताड़ित प्राणियों के मध्य जन्म लेते हैं–।।१६।।

आत्म सम्भाविताः स्तब्धा, धन मान मदान्विताः।
यजन्ते नाम यज्ञैस्ते, दम्भेना-विधि पूर्वकम्।।१७।।

2 3 4 8 6
आत्मसंभाविताः, स्तब्धाः, धनमानमदान्विताः, यजन्ते, नामयज्ञैः,
1 7 5
ते, दम्भेन, अविधिपूर्वकम्।

भाषा :– और वे आत्माभिमानी, घमण्डी, धन, मान, मद से

युक्त हुए प्राणी, शास्त्रविधि प्रतिकूल नाममात्र के यज्ञों द्वारा पाखण्ड से यजन करते हैं।।१७।।

अहंकारं बलं दर्पं, कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्म पर देहेषु, प्रद्विषन्तोऽ-भ्यसूयकाः।।१८।।

1 2 3 4 6 5 7 10
अहंकारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, च, संश्रिताः, माम्,
9 11 8
आत्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तः, अभ्यसूयकाः।

भाषा :– तथा ऐसे नास्तिक पुरुष– अहंकार, बल, घमण्ड और काम-क्रोध-परायण, परनिन्दक पुरुष, अपनी तथा दूसरों के शरीर में स्थित, मुझ सर्वव्यापक-अन्तर्यामी से विशेष द्वेष करने वाले हैं– ।।१८।।

ता-नहं द्विषतः क्रूरान्, संसारेषु नराधमान्।
क्षिपा-म्यजस्त्र-मशुभा,- नासुरी-ष्वेव योनिषु।।१९।।

1 2 4 6 5 11
तान्, अहम्, द्विषतः, क्रूरान्, संसारेषु, नराधमान्, क्षिपामि,
7 3 8 10 9
अजस्त्रम्, अशुभान्, आसुरीषु, एव, योनिषु।

भाषा :– ऐसे उन द्वेषी, पापी, क्रूर, नराधमों (नीच) को, संसार में निरन्तर आसुरी योनियों में ही गिराता हूँ अर्थात् उत्पन्न करता हूँ– ।।१९।।

आसुरीं योनि-मापन्ना, मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्रा-प्यैव कौन्तेय, ततो या-न्त्यधमां गतिम्।।२०।।

5 6 7 2 3 4 8
आसुरीम्, योनिम्, आपन्नाः, मूढाः, जन्मनि, जन्मनि, माम्,
9 13 1 10 14 11 12
अप्राप्य, एव, कौन्तेय, ततः, यान्ति, अधमाम्, गतिम्।

भाषा :– परिणाम स्वरूप– हे अर्जुन! वे मन्दबुद्धि लोग जन्म-जन्मान्तर में आसुरी योनि-प्राप्त हुए, मेरे को न प्राप्त होकर, उत्तरोत्तर अति नीच योनियों को ही प्राप्त होते हैं।।२०।।

त्रिविधं नरक-स्येदं, द्वारं नाशन-मात्मनः।
कामः क्रोध-स्तथा लोभ,- स्तस्मा-देतत् त्रयं त्यजेत्।।२१।।

6 7 5 8 10 9 1
त्रिविधम्, नरकस्य, इदम्, द्वारम्, नाशनम्, आत्मनः, कामः,
2 3 4 11 12 13 14
क्रोधः, तथा, लोभः, तस्मात्, एतत्, त्रयम्, त्यजेत्।

भाषा :– और एक विशेष अनुकरणीय बात– हे अर्जुन! काम, क्रोध तथा लोभ (लालच), ये तीन प्रकार के नरक के द्वार, सब अनर्थों के मूल, आत्मा को नष्ट करने वाले हैं तात्पर्य अधोगति देने वाले हैं; अतः इन तीनों का सर्वथा त्याग अनिवार्य है।।२१।।

एतै-र्विमुक्तः कौन्तेय, तमो द्वारै-स्त्रिभि-र्नरः।
आचर-त्यात्मनः श्रेय,- स्ततो याति परां गतिम्।।२२।।

2 5 1 4 3 6 9
एतैः, विमुक्तः, कौन्तेय, तमोद्वारैः, त्रिभिः, नरः, आचरति,
7 8 10 13 11 12
आत्मनः, श्रेयः, ततः, याति, पराम्, गतिम्।

भाषा :– क्योंकि हे अर्जुन! इन तीनों भ्रमित करने वाले द्वारों से मुक्त हुआ पुरुष, अपने कल्याण अर्थात् आत्मोद्धार का आचरण

करता है; फलतः परमगति (मोक्ष) को पाता है अर्थात् मेरे को प्राप्त होता है।।२२।।

यः शास्त्र विधि-मुत्सृज्य, वर्तते काम कारतः।
न स सिद्धि-मवाप्नोति, न सुखं न परां गतिम्।।२३।।

1 2 3 5 4 7 6 8
यः, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, वर्तते, कामकारतः, न, सः, सिद्धिम्,
9 10 11 12 13 14
अवाप्नोति, न, सुखम्, न, पराम्, गतिम्।

भाषा :– इसके साथ ही तत्त्व की बात– हे अर्जुन!– जो शास्त्र विधि का परित्याग कर, स्वेच्छा से आचरण करता है, वह न सुफल मनोरथ होता है, न सुख को और न मोक्ष को ही प्राप्त होता है।।२३।।

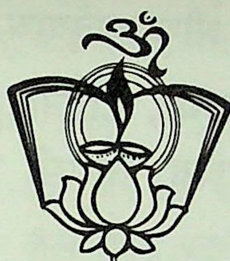
तस्मा-च्छास्त्रं प्रमाणं ते, कार्या-कार्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं, कर्म कर्तु-मिहार्हसि।।२४।।

1 5 6 2 4 7
तस्मात्, शास्त्रम्, प्रमाणम्, ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ, ज्ञात्वा,
8 9 10 3 11
शास्त्रविधानोक्तम्, कर्म, कर्तुम्, इह, अर्हसि।

भाषा :– अतः तेरे लिए कर्त्तव्याकर्त्तव्य की व्यवस्था (निर्णय) में, धर्मशास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर तू शास्त्रसम्मत, नियत किये हुए कर्म को ही करने के लिए योग्य है।।२४।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्-भगवद्-गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे दैवासुर-संपद-विभाग-योगो नाम षोडशोऽध्यायः श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु।।

श्लोकाः २४ गताङ्काः ५७० एवमादितः ५९४



।। ओं नमो भगवते वासुदेवाय ।।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

ये शास्त्रविधि-मुत्सृज्य, यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण, सत्त्वमाहो रज स्तमः।।१।।

2 3 4 7 5 6 8
ये, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, यजन्ते, श्रद्धया, अन्विताः, तेषाम्,
9 10 11 1 12 13 14 15
निष्ठा, तु, का, कृष्ण, सत्त्वम्, आहो, रजः, तमः।

भाषा :– भगवान् वासुदेव के वचनों को श्रवण कर अर्जुन बोला– हे कृष्ण! जो मनुष्य शास्त्रादेश को त्याग कर, केवल श्रद्धायुक्त हो देवपूजनादि कार्य करते हैं, उनकी श्रद्धा फिर कौन सी है? क्या सत्त्विकी है अथवा राजसी किंवा तामसी है?।।१।।

श्रीभगवानुवाच

त्रिविधा भवति श्रद्धा, देहिनां सा स्वभावजा।
सत्त्विकी राजसी चैव, तामसी चेति तां शृणु।।२।।

11 13 4 1 2 3 5
त्रिविधा, भवति, श्रद्धा, देहिनाम्, सा, स्वभावजा, सत्त्विकी,
7 6 12 9 8 10 14 15
राजसी, च, एव, तामसी, च, इति, ताम्, शृणु।

भाषा :– श्री भगवान् बोले– मनुष्यों की वह (शास्त्रप्रतिकूल) स्वभाव से उत्पन्न श्रद्धा सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी ऐसे– तीनों प्रकार की ही होती है, उसे तू मेरे से सुन।।२।।

सत्त्वानु-रूपा सर्वस्य, श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धा मयोऽयं पुरुषो, यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।३।।

4 2 3 5 1 8 6
सत्त्वानुरूपा, सर्वस्य, श्रद्धा, भवति, भारत, श्रद्धामयः, अयम्,
7 9 10 11 12 13 14
पुरुषः, यः, यत्, श्रद्धः, सः, एव, सः।

भाषा :– हे अर्जुन! सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है तथा यह पुरुष श्रद्धामय है। अतः जो जैसी श्रद्धा वाला है, वह स्वयं भी वही है। "जाकी जैसी भावना, तैसी उपजे बुद्ध"।।३।।

यजन्ते सत्त्विका देवान्, यक्ष रक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणां-श्चान्ये, यजन्ते तामसा जनाः।।४।।

3 1 2 5 4 9 11
यजन्ते, सत्त्विकाः, देवान्, यक्षरक्षांसि, राजसाः, प्रेतान्, भूतगणान्,
10 6 12 7 8
च, अन्ये, यजन्ते, तामसाः, जनाः।

भाषा :– इनमें सात्त्विक पुरुष देवों को पूजते हैं, राजस पुरुष यक्ष और राक्षसों को तथा अन्य तामस मनुष्य प्रेत और भूतगणों को पूजते हैं।।४।।

अशास्त्र विहितं घोरं, तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहंकार संयुक्ताः, काम राग बलान्विताः।।५।।

3 4 6 1 5 2 7
अशास्त्रविहितम्, घोरम्, तप्यन्ते, ये, तपः, जनाः, दम्भाहंकारसंयुक्ताः,
8
कामरागबलान्विताः।

भाषा :– और जो मनुष्य शास्त्र विधि से रहित, घोर तप को तपते हैं तथा दम्भ और अहंकार युक्त, काम, आसक्ति और बल के अभिमान से युक्त हैं–।।५।।

कर्षयन्तः शरीरस्थं, भूतग्राम-मचेतसः।
मां चैवान्तः शरीरस्थं, तान् विद्ध्यासुर निश्चयान्।।६।।

7 1 2 9 5 3 6
कर्षयन्तः, शरीरस्थम्, भूतग्रामम्, अचेतसः, माम्, च, एव,
4 8 11 10
अन्तःशरीरस्थम्, तान्, विद्धि, आसुरनिश्चयान्।

भाषा :– शरीर रूप में स्थित भूत समुदाय को और अन्तःकरण में स्थित मुझ अन्तर्यामी को कष्ट पहुंचाने वाले हैं। उन अज्ञानियों को तू आसुरी स्वभाव वाले जान।।६।।

आहार-स्त्वपि सर्वस्य, त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञ-स्तप-स्तथा दानं, तेषां भेद-मिमं शृणु॥७॥

1 7 2 3 4 6 5 9 10
आहारः, तु, अपि, सर्वस्य, त्रिविधः, भवति, प्रियः, यज्ञः, तपः,
8 11 12 14 13 15
तथा, दानम्, तेषाम्, भेदम्, इमम्, शृणु।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! जैसे श्रद्धा तीन प्रकार की है, वैसे ही भोजन भी अपने-अपने स्वभावानुसार तीन प्रकार का प्रिय होता है। और वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन प्रकार के होते हैं। उनके भेद तू मेरे से सुन–॥७॥

आयुः सत्त्व बलारोग्य,-
सुख प्रीति विवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या,
आहाराः सात्त्विक-प्रियाः॥८॥

1 2 3 4
आयुः, सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतविवर्धनाः, रस्याः, स्निग्धाः, स्थिराः,
5 6 7
हृद्याः, आहाराः, सात्त्विकप्रियाः।

भाषा :– आयु, बुद्धि, बल, निरोगता, सुख और प्रसन्नता को बढ़ाने वाले, रसयुक्त, चिकने, स्थिर रहने वाले, स्वाभाविक प्रिय– ऐसे आहार सात्त्विक स्वभाव वाले पुरुष को प्रिय हैं॥८॥

कट्व-म्ल-लवणा-त्युष्ण, तीक्ष्ण रूक्ष विदाहिनः।
आहारा राजस-स्येष्टा, दुःख शोकामय प्रदाः॥९॥

1 3 4
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः, आहाराः, राजसस्य,
5 2
इष्टाः, दुःखशोकामयप्रदाः।

भाषा :– कटु (कड़वे), अम्ल (खट्टे), लवण (नमकीन), अत्युष्ण (बड़े गर्म), तीक्ष्ण (तेज़), रूक्ष (रूखे) और विदाहिनः (जलाने वाले) तथा दुःख, शोक (चिन्ता) और आमय (रोगों को) प्रदाः (उत्पन्न करने वाले) ऐसे आहार राजस पुरुष को प्रिय होते हैं।।९।।

यात-यामं गत-रसं, पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्ट-मपि चामेध्यं, भोजनं तामस प्रियम्।।१०।।

3 4 6 7 5 1 8 11
यातयामम्, गतरसम्, पूति, पर्युषितम्, च, यत्, उच्छिष्टम्, अपि,
9 10 2 12
च, अमेध्यम्, भोजनम्, तामसप्रियम्।

भाषा :– तथा जो आहार– अधपका, रसहीन और दुर्गन्धयुक्त, बासी, जूठा तथा अपवित्र भी है, ऐसा भोजन तामस पुरुष को प्रिय हैं।।१०।।

अफला कांक्षिभि-र्यज्ञो, विधि दृष्टो य इज्यते।
यष्टव्य-मेवेति मनः, समाधाय स सत्त्विकः।।११।।

9 2 3 1 10 4 5
अफलाकांक्षिभिः, यज्ञः, विधिदृष्टः, यः, इज्यते, यष्टव्यम्, एव,
6 7 8 11 12
इति, मनः, समाधाय, सः, सात्त्विकः।

भाषा :– और हे पार्थ!– जो यज्ञ धर्मशास्त्रानुकूल तथा करना

ही कर्त्तव्य है, ऐसे मन को समाधान करके निष्काम भाव वाले पुरुषों द्वारा किया जाता है– वह (यज्ञ तो) सात्त्विक संज्ञक है।।११।।

अभिसंधाय तु फलं, दम्भार्थ-मपि चैव यत्।
इज्यते भरत श्रेष्ठ, तं यज्ञं विद्धि राजसम्।।१२।।

9 1 7 4 8 6 5 3 10
अभिसंधाय, तु, फलम्, दम्भार्थम्, अपि, च, एव, यत्, इज्यते,
2 11 12 14 13
भरतश्रेष्ठ, तम्, यज्ञम्, विद्धि, राजसम्।

भाषा :– तथा हे भरत श्रेष्ठ! जो यज्ञ मात्र दम्भाचरण के ही लिए व फल का भी उद्देश्य रखकर अर्थात् सकाम कर्म किया जाता है, उस यज्ञ को तू राजस जान।।१२।।

विधिहीन-मसृष्टान्नं, मन्त्रहीन-मदक्षिणम्।
श्रद्धा विरहितं यज्ञं, तामसं परिचक्षते।।१३।।

1 2 3 4 5
विधिहीनम्, असृष्टान्नम्, मन्त्रहीनम्, अदक्षिणम्, श्रद्धाविरहितम्,
6 7 8
यज्ञम्, तामसम्, परिचक्षते।

भाषा :– और जो शास्त्रविधिविहीन, अन्नदान रहित, बिना मन्त्रों के, दक्षिणा बिना तथा बिना श्रद्धा के, यज्ञ किया जाता है उसको तामस यज्ञ कहते हैं।।१३।।

देव द्विज गुरु प्राज्ञ, पूजनं शौच-मार्जवम्।
ब्रह्मचर्य-महिंसा च, शारीरं तप उच्यते।।१४।।

1 2 3 4 6
देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्, शौचम्, आर्जवम्, ब्रह्मचर्यम्, अहिंसा,
5 7 8 9
च, शारीरम्, तपः, उच्यते।

भाषा :– मन्त्रमयी श्री गीता जी के इस तथा अग्रिम दो मन्त्रों में भगवान् वासुदेव अर्जुन को सात्त्विक तप के लक्षण बताते हैं कि हे अर्जुन!– देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनों का पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा, यह शरीर सम्बन्धी तप कहा जाता है।।१४।।

अनुद्वेगकरं वाक्यं, सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्याया-भ्यसनं चैव, वाङ्मयं तप उच्यते।।१५।।

3 6 5 4 1 2
अनुद्वेगकरम्, वाक्यम्, सत्यम्, प्रियहितम्, च, यत्,
8 7 9 10 11 12
स्वाध्यायाभ्यसनम्, च, एव, वाङ्मयम्, तपः, उच्यते।

भाषा :– तथा जो प्रिय और हितकारक, यथार्थ भाषण है और जो वेद-शास्त्राध्ययन, भगवन्नाम चिन्तन आदि का अभ्यास है, निःसन्देह वाणी सम्बंधी तप कहा जाता है।।१५।।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं, मौन-मात्म विनिग्रहः।
भाव संशुद्धि-रित्येतत्, तपो मानस-मुच्यते।।१६।।

1 2 3 4 5
मनःप्रसादः, सौम्यत्वम्, मौनम्, आत्मविनिग्रहः, भावसंशुद्धिः,
6 7 9 8 10
इति, एतत्, तपः, मानसम्, उच्यते।

भाषा :– मानसिक प्रसन्नता, शान्त भाव, मौन, आत्मसंयम, अन्तःकरण शुद्धि– ऐसे यह मानसिक तप कहा जाता है।।१६।।

श्रद्धया परया तप्तं, तप-स्तत् त्रिविधं नरैः।
अफला-कांक्षिभि:-र्युक्तैः, सात्त्विकं परिचक्षते।।१७।।

5 4 6 9 7 8 3 1
श्रद्धया, परया, तप्तम्, तपः, तत्, त्रिविधम्, नरैः, अफलाकांक्षिभिः,
2 10 11
युक्तैः, सात्त्विकम्, परिचक्षते।

भाषा :– परन्तु फल को न चाहने वाले, निष्काम योगी पुरुषों द्वारा और परमश्रद्धा से किए हुए पूर्वोक्त (कायिक, वाचिक, मानसिक) तीन प्रकार के तप को तो सात्त्विक कहते हैं।।१७।।

सत्कार मान पूजार्थं, तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं, राजसं चल-मध्रुवम्।।१८।।

4 3 5 1 6 2 7 8 11
सत्कारमानपूजार्थम्, तपः, दम्भेन, च, एव, यत्, क्रियते, तत्, इह,
13 12 10 9
प्रोक्तम्, राजसम्, चलम्, अध्रुवम्।

भाषा :– तथा जो तप सत्कार, मान और पूजार्थ अथवा अभिमानपरक, मात्र दिखावे के लिये किया जाता है, वह अस्थिर और चलायमान तप, राजस कहा गया है।।१८।।

मूढग्राहेणा-त्मनो यत्, पीडया क्रियते तपः।
परस्यो-त्सादनार्थं वा, तत् तामस-मुदाहृतम्।।१९।।

3 4 1 5 9 2 7 8
मूढग्राहेण, आत्मनः, यत्, पीडया, क्रियते, तपः, परस्य, उत्सादनार्थम्,
6 10 11 12
वा, तत्, तामसम्, उदाहृतम्।

भाषा :– और जो तप मूढतापूर्वक, आत्म पीड़ा सहित या दूसरे का अनिष्ट कामनार्थ किया जाता है, वह तप तामस कहा गया है।।१९।।

दातव्य-मिति यद्दानं, दीयतेऽ-नुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च, तद्-दानं सत्त्विकं स्मृतम्।।२०।।

2 3 4 5 11 10 6 7 1
दातव्यम्, इति, यत्, दानम्, दीयते, अनुपकारिणे, देशे, काले, च,
9 8 12 13 14 15
पात्रे, च, तत्, दानम्, सत्त्विकम्, स्मृतम्।

भाषा :– तथा दान देना ही कर्त्तव्य है, ऐसी भावना से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर, उपकार न करने वाले के प्रति, दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है।।२०।।

यत् तु प्रत्युपका-रार्थं, फल-मुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं, तद्-दानं राजसं-स्मृतम।।२१।।

2 1 5 7 8 6 9 10 4
यत्, तु, प्रत्युपकारार्थम्, फलम्, उद्दिश्य, वा, पुनः, दीयते, च,
3 11 12 13 14
परिक्लिष्टम्, तत्, दानम्, राजसम्, स्मृतम्।

भाषा :– किन्तु जो दान दुःखी मन से वा प्रत्युपकार भाव से या फिर फल को निमित्त रखकर दिया जाता है, वह दान राजस कहा गया है।।२१।।

अदेश काले यद्दान,- मपात्रे-भ्यश्च दीयते।
असत्कृत-मवज्ञातं, तत् तामस-मुदाहृतम्।।२२।।

6 2 3 7 1 8 4
अदेशकाले, यत्, दानम्, अपात्रेभ्यः, च, दीयते, असत्कृतम्,
5 9 10 11
अवज्ञातम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम्।

भाषा :– तथा जो दान बिना सत्कार के, तिरस्कारपूर्वक, अनुचित देशकाल में और कुपात्र के प्रति दिया जाता है, वह दान तामस कहा जाता है।।२२।।

ॐ तत्सदिति निर्देशो, ब्रह्मण-स्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणा-स्तेन वेदाश्च, यज्ञाश्च विहिताः पुरा।।२३।।

1 2 3 6 5 4 7 10
ॐ, तत्सत्, इति, निर्देशः, ब्रह्मणः, त्रिविधः, स्मृतः, ब्राह्मणाः,
8 12 11 14 13 15 9
तेन, वेदाः, च, यज्ञाः, च, विहिताः, पुरा।

भाषा :– ॐ, तत्, सत् ऐसे– ये तीन प्रकार का ब्रह्म का नाम कहा है, उसी से सृष्टि के आदि काल में ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादि रचे गये।।२३।।

तस्मा-दोमि-त्युदाहृत्य, यज्ञ दान तपः क्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधा-नोक्ताः, सततं ब्रह्म वादिनाम्।।२४।।

1 6 7 8 4 9
तस्मात्, ओ३म्, इति, उदाहृत्य, यज्ञदानतपःक्रियाः, प्रवर्तन्ते,
3 5 2
विधानोक्ताः, सततम्, ब्रह्मवादिनाम्।

भाषा :– इसलिए वेद मन्त्रोच्चरण करने वाले श्रेष्ठ पुरुषों की शास्त्रानुशासित यज्ञ, दान, तपादि क्रियाएं सदा 'ॐ' इस परमात्मा के नाम को आदि में उच्चारण करके आरम्भ होती हैं।।२४।।

तदित्य-नभिसन्धाय, फलं यज्ञ-तपः क्रियाः।
दान क्रियाश्च विविधाः, क्रियन्ते मोक्ष कांक्षिभिः।।२५।।

1 2 4 3 6 8 7
तत्, इति, अनभिसन्धाय, फलम्, यज्ञतपःक्रियाः, दानक्रियाः, च,
5 10 9
विविधाः, क्रियन्ते, मोक्षकांक्षिभिः।

भाषा :– 'तत्' अर्थात् इस नाम से कहे जाने वाले परमात्मा का ही यह सब है, इस भाव से फल को न चाहकर, नाना प्रकार की यज्ञ तपादि क्रियाएं तथा दान क्रियाएं कल्याणकामी पुरुषों द्वारा की जाती हैं।।२५।।

सद्भावे साधुभावे च, सदि-त्येतत् प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा, सच्छब्दः पार्थ युज्यते।।२६।।

4 6 5 1 2 3 7 10
सद्भावे, साधुभावे, च, सत्, इति, एतत्, प्रयुज्यते, प्रशस्ते,
11 8 12 13 9 14
कर्मणि, तथा, सत्, शब्दः, पार्थ, युज्यते।

भाषा :– 'सत्' इस प्रकार यह भगवन्नाम सद्भाव किंवा श्रेष्ठभाव में प्रयोग किया जाता है। तथा हे अर्जुन! उत्तम कर्म में भी इस 'सत्' शब्द का प्रयोग होता है।।२६।।

यज्ञे तपसि दाने च,- स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं, सदि-त्येवा-भिधीयते।।२७।।

2 3 5 1 6 8 9 4 10 13 11
यज्ञे, तपसि, दाने, च, स्थितिः, सत्, इति, च, उच्यते, कर्म, च,
7 12 15 16 14 17
एव, तदर्थीयम्, सत्, इति, एव, अभिधीयते।

भाषा :– तथा यज्ञ, तप और दान में जो स्थिति है, वह भी

'सत्' इस प्रकार कही जाती है और उस परमात्मा के लिए किया हुआ कर्म निश्चय ही सत् है, ऐसे कहा जाता है।।२७।।

अश्रद्धया हुतं दत्तं, तप-स्तप्तं कृतं च यत्।
अस-दित्युच्यते पार्थ, न च तत् प्रेत्य नो इह।।२८।।

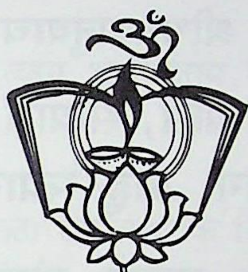
2 3 4 6 5 9 7 8 10
अश्रद्धया, हुतम्, दत्तम्, तपः, तप्तम्, कृतम्, च, यत्, असत्,
11 12 1 16 16 13 18 14 15
इति, उच्यते, पार्थ, न, च, तत्, प्रेत्य, नो, इह।

भाषा :– इस मन्त्र में भगवान् वासुदेव सत्यसनातन, निर्णयात्मक तत्त्व की बात कह कर अध्याय को विराम देते हैं, कि हे अर्जुन! बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन, दिया हुआ दान, तपा हुआ तप एवं जो कुछ भी किया हुआ कर्म है, वह समस्त 'असत्' इस प्रकार कहा जाता है। अतः वह न तो इस लोक में लाभदायक है और न मरने के बाद ही परलोक में फलदायी है।।२८।।

ओं तत्सदिति श्रीमद्-भगवद्-गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे श्रद्धात्रय-विभाग-योगो नाम सप्तदशोऽध्यायः श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु।।२७।।

श्लोकाः २८ गताङ्क ५९४ एवमादितः ६२२





॥ ओं नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

संन्यासस्य महाबाहो, तत्त्व-मिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश, पृथक् केशि-निषूदन॥१॥

4 1 7 10 9 6 5
संन्यासस्य, महाबाहो, तत्त्वम्, इच्छामि, वेदितुम्, त्यागस्य, च,
2 8 3
हृषीकेश, पृथक्, केशिनिषूदन।

भाषा :– तदुपरान्त अर्जुन बोले– हे महाबाहो! हे अन्तर्यामिन्! हे केशिनिषूदन (वासुदेव)! मैं संन्यास और त्याग के तत्त्व को क्रमशः पृथक्-पृथक् जानना चाहता हूँ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

काम्यानां कर्मणां न्यासं, संन्यासं कवयो विदुः।
सर्व कर्मफल-त्यागं, प्राहु-स्त्यागं विचक्षणाः॥२॥

2 3 4 5 1 6
काम्यानाम्, कर्मणाम्, न्यासम्, संन्यासम्, कवयः, विदुः,
8 10 9 7
सर्वकर्मफलत्यागम्, प्राहुः, त्यागम्, विचक्षणाः।

भाषा :– अर्जुन के उक्त प्रश्न पूछने पर श्री भगवान् बोले– हे अर्जुन! कुछेक पण्डित जन काम्यकर्मों के त्याग को सन्यास समझते हैं तथा अन्य विचार- कुशल पुरुष सब कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं॥२॥

त्याज्यं दोष-वदित्येके, कर्म प्राहु-र्मनीषिणः।
यज्ञ दान तपः कर्म, न त्याज्य-मिति चापरे॥३॥

7 6 3 1 5 4 2 11
त्याज्यम्, दोषवत्, इति, एके, कर्म, प्राहुः, मनीषिणः, यज्ञदानतपःकर्म,
12 13 10 8 9
न, त्याज्यम्, इति, च, अपरे।

भाषा :– कई एक विद्वान् ऐसा कहते हैं कि सभी कर्म दोषयुक्त हैं, अतः त्याज्य हैं। तथा अन्य ऐसा कहते हैं कि यज्ञ, दान और तपरूप कर्म अत्याज्य हैं॥३॥

निश्चयं शृणु मे तत्र, त्यागे भरत-सत्तम।
त्यागो हि पुरुष-व्याघ्र, त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः॥४॥

5 6 4 2 3 1 8 10 7
निश्चयम्, शृणु, मे, तत्र, त्यागे, भरतसत्तम, त्यागः, हि, पुरुषव्याघ्र,
9 11
त्रिविधः, संप्रकीर्तितः।

भाषा :– हे भरतश्रेष्ठ! उस त्याग के विषय में तुम मेरे निश्चय को सुन। वह त्याग तीन प्रकार का ही कहा गया है।।४।।

यज्ञ दान तपः कर्म, न त्याज्यं कार्य-मेव तत्।
यज्ञो दानं तप-श्चैव, पावनानि मनीषिणाम्।।५।।

1 2 3 6 5 4 7 8
यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, कार्यम्, एव, तत्, यज्ञः, दानम्,
10 9 11 13 12
तपः, च, एव, पावनानि, मनीषिणाम्।

भाषा :– भगवान् वासुदेव आदेश– यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं वरन् वह निःसन्देह कर्त्तव्य कर्म हैं। क्योंकि यज्ञ, दान और तप ये तीनों विवेकी जनों को पवित्र करने वाले हैं।।५।।

एता-न्यपि तु कर्माणि, सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्या-नीति मे पार्थ, निश्चितं मत-मुत्तमम्।।६।।

2 3 4 5 6 9 8 7 10
एतानि, अपि, तु, कर्माणि, सङ्गम्, त्यक्त्वा, फलानि, च, कर्तव्यानि,
11 12 1 13 15 14
इति, मे, पार्थ, निश्चितम्, मतम्, उत्तमम्।

भाषा :– भगवान् वासुदेव का द्वितीय अनुकरणीय आदेश– हे पार्थ! यह तपदानयज्ञादि कर्म तथा और भी सम्पूर्ण श्रेष्ठ कर्म, आसक्ति और फलों को त्याग कर, अनिवार्य रूप से करने चाहिएँ– ऐसा मेरा निश्चित उत्तम मत है।।६।।

नियतस्य तु संन्यासः, कर्मणो नोप-पद्यते।
मोहात् तस्य परित्याग,- स्तामसः परिकीर्तितः॥७॥

2 1 4 3 5 6 7 8
नियतस्य, तु, संन्यासः, कर्मणः, न, उपपद्यते, मोहात्, तस्य,
9 10 11
परित्यागः, तामसः, परिकीर्तितः।

भाषा :– तथा (हे अर्जुन!) नियत कर्म-त्याग उचित नहीं है। इसलिए मोहवश, उसका त्याग करना तामस त्याग कहा गया है॥७॥

दुःख-मित्येव यत्कर्म, काय-क्लेश-भयात् त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं, नैव त्याग फलं लभेत्॥८॥

4 5 3 1 2 6 7 8
दुःखम्, इति, एव, यत्, कर्म, कायक्लेशभयात्, त्यजेत्, सः,
11 9 10 14 12 13 15
कृत्वा, राजसम्, त्यागम्, न, एव, त्यागफलम्, लभेत्।

भाषा :– और यदि कोई मनुष्य जो कर्म है– वह सब दुःख रूप है, ऐसा समझ कर शारीरिक कष्ट-भय से कर्मों को त्यागे, तो वह पुरुष उस राजस त्याग को करके भी त्याग-फल को प्राप्त नहीं होता है। अर्थात् उसका वह त्याग करना व्यर्थ ही है॥८॥

कार्य-मित्येव यत्कर्म, नियतं क्रियतेऽ-र्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव, स त्यागः सत्त्विको मतः॥९॥

2 3 4 5 7 6 12 1 8
कार्यम्, इति, एव, यत्, कर्म, नियतम्, क्रियते, अर्जुन, सङ्गम्,
11 10 9 14 13 16 15 17
त्यक्त्वा, फलम्, च, एव, सः, त्यागः, सत्त्विकः, मतः।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! करना कर्त्तव्य है, ऐसा समझ कर ही जो शास्त्र-विधि से नियत किया हुआ कर्त्तव्य कर्म, आसक्ति तथा फल को त्याग कर किया जाता है, वह ही सात्त्विक त्याग मान्य है।।९।।

न द्वेष्ट्य-कुशलं कर्म, कुशले नानु-षज्जते।
त्यागी सत्त्व-समाविष्टो, मेधावी छिन्न संशयः।।१०।।

3 4 1 2 5 6 7 11
न, द्वेष्टि, अकुशलम्, कर्म, कुशले, न, अनुषज्जते, त्यागी,
8 10 9
सत्त्वसमाविष्टः, मेधावी, छिन्नसंशयः।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! जो अमंगल कारक कर्म से द्वेष नहीं करता और माङ्गलिक कर्म में आसक्त नहीं होता है, वह शुद्ध सत्वगुण युक्त पुरुष, निःसन्देह बुद्धिमान् और त्यागी है।।१०।।

न हि देहभृता शक्यं, त्युक्तुं कर्मा-ण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफल त्यागी, स त्यागी-त्यभि-धीयते।।११।।

6 1 2 7 5 4 3 8 11
न, हि, देहभृता, शक्यम्, त्युक्तुम्, कर्माणि, अशेषतः, यः, तु,
9 10 12 13 14
कर्मफलत्यागी, सः, त्यागी, इति, अभिधीयते।

भाषा :– क्योंकि देहधारी पुरुष द्वारा सम्पूर्णता से सर्वकर्म-त्याग सम्भव नहीं, इससे जो पुरुष कर्म-फल-त्यागी है, वह ही यथार्थ त्यागी है, ऐसा कहा जाता है।।११।।

अनिष्ट-मिष्टं मिश्रं च, त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्य-त्यागिनां प्रेत्य, न तु संन्यासिनां क्वचित्।।१२।।

4 3 6 5 7 2 8 10
अनिष्टम्, इष्टम्, मिश्रम्, च, त्रिविधम्, कर्मणः, फलम्, भवति,
1 9 14 11 12 13
अत्यागिनाम्, प्रेत्य, न, तु, संन्यासिनाम्, क्वचित्।

भाषा :– और सकामी पुरुषों के कर्म का अच्छा, बुरा और मिला जुला– ऐसे तीन प्रकार का फल मरणोपरान्त भी होता है और संन्यासी (त्यागी) पुरुष के कर्मों का फल किसी काल में नहीं होता।।१२।।

पञ्चैतानि महाबाहो, कारणानि निबोध मे।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि, सिद्धये सर्व कर्मणाम्।।१३।।

5 4 1 6 11 10 7 8
पञ्च, एतानि, महाबाहो, कारणानि, निबोध, मे, सांख्ये, कृतान्ते,
9 3 2
प्रोक्तानि, सिद्धये, सर्वकर्मणाम्।

भाषा :– तथा हे महाबाहो! सम्पूर्ण कर्मों की सिद्धि के लिए यह पांच कारण सांख्य सिद्धान्त में कहे गये हैं, उनको तू मेरे से भली प्रकार जान।।१३।।

अधिष्ठानं तथा कर्ता, करणं च पृथग् विधम्।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा, दैवं चैवात्र पंचमम्।।१४।।

2 12 4 7 3 6 9 5
अधिष्ठानम्, तथा, कर्ता, करणम्, च, पृथग्विधम्, विविधाः, च,
10 11 15 8 13 1 14
पृथक्, चेष्टा, दैवम्, च, एव, अत्र, पंचमम्।

भाषा :– इस विषय में आधार और कर्ता तथा भिन्न-भिन्न करण और नाना प्रकार की अलग-अलग चेष्टायें तथा वैसे ही पाँचवा कारण दैव (पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मों के संस्कार) है।।१४।।

शरीर वाङ् मनोभि-र्यत्, कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा, पंचैते तस्य हेतवः॥१५॥

2 7 8 9 1 3 4 5
शरीरवाङ्मनोभिः, यत्, कर्म, प्रारभते, नरः, न्याय्यम्, वा, विपरीतम्,
6 12 11 10 13
वा, पंच, एते, तस्य, हेतवः।

भाषा :– क्योंकि मनुष्य शरीर, वाणी और मन से शास्त्रानुसार या विपरीत भी जो कर्म प्रारम्भ करता है उसके ये उपर्युक्त पाँचों ही कारण हैं॥१५॥

तत्रैवं सति कर्तार,- मात्मानं केवलं तु यः।
पश्य-त्यकृत बुद्धित्वान्, न स पश्यति दुर्मतिः॥१६॥

6 2 3 9 8 7 1 4 10
तत्र, एवम्, सति, कर्तारम्, आत्मानम्, केवलम्, तु, यः, पश्यति,
5 13 11 14 12
अकृतबुद्धित्वात्, न, सः, पश्यति, दुर्मतिः।

भाषा :– परन्तु ऐसा होने पर भी जो पुरुष, अशुद्धिवश उस विषय में केवल शुद्ध-बुद्ध आत्मा को कर्ता देखता है, वह दुर्बुद्धि यथार्थ नहीं देखता है॥१६॥

यस्य नाहंकृतो भावो, बुद्धि-र्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्, न हन्ति न निबध्यते॥१७॥

1 4 2 3 7 6 5 9 13
यस्य, न, अहंकृतः, भावः, बुद्धिः, यस्य, न, लिप्यते, हत्वा,
14 10 11 12 8 15 16 17
अपि, सः, इमान्, लोकान्, न, हन्ति, न, निबध्यते।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! जिस पुरुष में अहम्भाव नहीं तथा जिसकी बुद्धि लिपायमान नहीं होती, वह पुरुष सब लोकों को मार कर भी न तो मरता है और न पाप से बन्धता है।।१७।।

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता, त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति, त्रिविधः कर्म संग्रहः।।१८।।

2 3 1 4 5 7 8
ज्ञानम्, ज्ञेयम्, परिज्ञाता, त्रिविधा, कर्मचोदना, करणम्, कर्म,
6 9 10 11
कर्ता, इति, त्रिविधः, कर्मसंग्रहः।

भाषा :– ज्ञाता (जानने वाला), ज्ञान (जिसके द्वारा जाना जाये) और ज्ञेय (जानने में आने वाली वस्तु)– ये तीनों तो कर्म के प्रेरक हैं। कर्ता, करण, क्रिया यह तीनों कर्म-संग्रह हैं, अर्थात् तीनों के योग से कर्म बनता है।।१८।।

ज्ञानं कर्म च कर्ता च, त्रिधैव गुण भेदतः।
प्रोच्यते गुण संख्याने, यथाव-च्छृणु तान्यपि।।१९।।

1 3 2 5 4 9 6 7 10
ज्ञानम्, कर्म, च, कर्ता, च, त्रिधा, एव, गुणभेदतः, प्रोच्यते,
8 13 14 11 12
गुणसंख्याने, यथावत्, शृणु, तानि, अपि।

भाषा :– ज्ञान और कर्म और कर्ता भी गुणों के भेद से सांख्यशास्त्र में तीन-तीन प्रकार से कहे गये हैं। उनको भी तू मेरे से भली प्रकार श्रवण कर– ।।१९।।

सर्व भूतेषु येनैकं, भाव-मव्यय-मीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु, तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्।।२०।।

3 1 4 6 5 8 7
सर्वभूतेषु, येन, एकम्, भावम्, अव्ययम्, ईक्षते, अविभक्तम्,
2 9 10 12 11
विभक्तेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, सात्त्विकम्।

भाषा :– जिस ज्ञान से मानव, अलग-अलग सब भूतों में एक सनातन परामात्मभाव को, सम भाव से देखता है, उस ज्ञान को तू सात्त्विक जान।।२०।।

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं, नाना भावान् पृथ-ग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु, तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्।।२१।।

8 1 2 3 7 6 9
पृथक्त्वेन, तु, यत्, ज्ञानम्, नानाभावान्, पृथग्विधान्, वेत्ति,
4 5 10 11 13 12
सर्वेषु, भूतेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, राजसम्।

भाषा :– और जिस ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण भूतों में, भिन्न-भिन्न प्रकार के अनेक भावों को अलग-अलग करके जानता है, उस ज्ञान को तू राजस जान।।२१।।

यत्तु कृत्स्न-वदेकस्मिन्, कार्ये सक्त-महैतुकम्।
अतत्त्वार्थ-वदल्पं च, तत् तामस मुदाहृतम्।।२२।।

2 1 5 3 4 6 8
यत्, तु, कृत्स्नवत्, एकस्मिन्, कार्ये, सक्तम्, अहैतुकम्,
9 10 7 11 12 13
अतत्त्वार्थवत्, अल्पम्, च, तत्, तामसम्, उदाहृतम्।

भाषा :– परन्तु जो ज्ञान एक कार्य रूप शरीर में ही सम्पूर्णता के सदृश आसक्त है तथा जो बिना युक्ति वाला, सात्त्विक अर्थ-हीन और तुच्छ है, वह तामस कहा गया है।।२२।।

नियतं संगरहित,- मराग द्वेषतः कृतम्।
अफल प्रेप्सुना कर्म, यत् तत् सात्त्विक-मुच्यते।।२३।।

3 4 6 7 5 2
नियतम्, संगरहितम्, अरागद्वेषतः, कृतम्, अफलप्रेप्सुना, कर्म,
1 8 9 10
यत्, तत्, सात्त्विकम्, उच्यते।

भाषा :– तथा जो कर्म शास्त्रोक्त और कर्तापन के अभिमान से रहित, फल को न चाहने वाले पुरुष द्वारा राग-द्वेश बिना किया हुआ है-- वह कर्म सात्त्विक कहा जाता है।।२३।।

यत् तु कामेप्सुना कर्म, साहंकारेण वा पुनः।
क्रियते बहुला-यासं, तद् राजस-मुदाहृतम्।।२४।।

2 1 6 3 8 7 5 9 4
यत्, तु, कामेप्सुना, कर्म, साहंकारेण, वा, पुनः, क्रियते, बहुलायासम्,
10 11 12
तत्, राजसम्, उदाहृतम्।

भाषा :– परन्तु जो कर्म बहुत परिश्रम से युक्त होता है तथा भोगी पुरुष द्वारा या अहंकार युक्त पुरुष द्वारा किया जाता है, वह कर्म राजस कहा जाता है।।२४।।

अनुबन्धं क्षयं हिंसा,- मनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहा-दारभ्यते कर्म, यत् तत् तामस-मुच्यते।।२५।।

3 4 5 8 6 7 9 10
अनुबन्धम्, क्षयम्, हिंसाम्, अनवेक्ष्य, च, पौरुषम्, मोहात्, आरभ्यते,
2 1 11 12 13
कर्म, यत्, तत्, तामसम्, उच्यते।

भाषा :– जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्य को न विचार कर केवल अज्ञान से आरम्भ किया जाता है, वह कर्म तामस कहलाता है।।२५।।

मुक्त-संगोऽ-नहंवादी, धृत्युत्साह समन्वितः।
सिद्ध्य-सिद्ध्यो निर्विकारः, कर्ता सात्त्विक उच्यते॥२६॥

1 2 3 4
मुक्तसङ्गः, अनहंवादी, धृत्युत्साहसमन्वितः, सिद्ध्यसिद्ध्योः,
5 6 7 8
निर्विकारः, कर्ता, सात्त्विकः, उच्यते।

भाषा :– तथा जो कर्ता सङ्गरहित, अहंकार से वचन न बोलने वाला, धैर्य-उत्साह युक्त तथा कार्य सिद्ध होने या न होने में विकार रहित होता है, वह सात्त्विक कहा जाता है।।२६।।

रागी कर्म फल प्रेप्सु,- लुब्धो हिंसात्मकोऽ-शुचिः।
हर्ष शोकान्वितः कर्ता, राजसः परिकीर्तितः।।२७।।

1 2 3 4 5 6
रागी, कर्मफलप्रेप्सुः, लुब्धः, हिंसात्मकः, अशुचिः, हर्षशोकान्वितः,
7 8 9
कर्ता, राजसः, परिकीर्तितः।

भाषा :– जो कर्ता आसक्तियुक्त, कर्म फलाभिलाषी, लोभी, हिंसक, अपवित्र तथा हर्ष-शोक से लिप्त है, वह कर्ता राजस कहलाता है।।२७।।

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः, शठो नैष्कृतिकोऽ-लसः।
विषादी दीर्घसूत्री च, कर्ता तामस उच्यते।।२८।।

1 2 3 4 5 7 6
अयुक्तः, प्राकृतः, स्तब्धः, शठः, नैष्कृतिकः, अलसः, विषादी,
9 8 10 11 12
दीर्घसूत्री, च, कर्ता, तामसः, उच्यते।

भाषा :– जो कर्ता-विक्षिप्त चित्तवाला, अशिक्षित, घमण्डी, धूर्त, दूसरे की आजीविका-नाशक तथा शोकाकुलस्वभाव वाला, आलसी किंवा दीर्घसूत्री है, वह कर्ता तामस कहा जाता है।।२८।।

बुद्धे-र्भेदं धृते-श्चैव, गुण तस्त्रिविधं शृणु।
प्रोच्यमान-मशेषेण, पृथक्त्वेन धनंजय।।२९।।

2 8 4 3 5 6 7 12 11
बुद्धेः, भेदम्, धृतेः, च, एव, गुणतः, त्रिविधम्, शृणु, प्रोच्यमानम्,
9 10 1
अशेषेण, पृथक्त्वेन, धनंजय।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! बुद्धि का और धारणा शक्ति का भी गुणों के कारण तीन प्रकार का भेद सम्पूर्णता से विभागपूर्वक मेरे द्वारा कहा हुआ सुन? ।।२९।।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च, कार्या-कार्ये भया-भये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति, बुद्धिः सा पार्थ सत्त्विकी।।३०।।

2 3 4 5 6 7 8 10
प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम्, च, कार्याकार्ये, भयाभये, बन्धम्, मोक्षम्,
9 11 12 14 13 1 15
च, या, वेत्ति, बुद्धिः, सा, पार्थ, सत्त्विकी।

भाषा :– हे पार्थ! प्रवृत्ति मार्ग (गृहस्थ) और निवृत्ति मार्ग (संन्यास) तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्य एवं भय-अभय तथा बन्धन और मोक्ष को जो बुद्धि, तत्त्व से जानती है, वह बुद्धि सात्त्विकी है।।३०।।

यया धर्म-मधर्मं च, कार्यं चा-कार्यमेव च।
अयथावत् प्रजानाति, बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥३१॥

2 3 5 4 7 6 9 10 8 11
यया, धर्मम्, अधर्मम्, च, कार्यम्, च, अकार्यम्, एव, च, अयथावत्,
12 14 13 1 15
प्रजानाति, बुद्धिः, सा, पार्थ, राजसी।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! जिस बुद्धि द्वारा मनुष्य धर्म-अधर्म तथा कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को भी यथार्थ नहीं जानता, वह बुद्धि राजसी है॥३१॥

अधर्मं धर्म-मिति या, मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान् विपरीतां-श्च, बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥३२॥

5 6 7 2 8 3 4 10
अधर्मम् धर्मम्, इति, या, मन्यते, तमसा, आवृता, सर्वार्थान्,
11 9 13 12 1 14
विपरीतान्, च, बुद्धिः, सा, पार्थ, तामसी।

भाषा :– और हे पार्थ! जो तमोगुण से ढकी हुई बुद्धि– अधर्म को धर्म ऐसा मानती है तथा समस्त अर्थों को विपरीत ही मानती है– वह बुद्धि तामसी है॥३२॥

धृत्या यया धारयते, मनः प्राणेन्द्रिय क्रियाः।
योगेना-व्यभिचारिण्या, धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी॥३३॥

5 3 7 6 2 4
धृत्या, यया, धारयते, मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः, योगेन, अव्यभिचारिण्या,
9 8 1 10
धृतिः, सा, पार्थ, सात्त्विकी।

भाषा :– तथा हे पार्थ! ध्यान द्वारा व्याभिचार रहित धारणा शक्ति से मनुष्य– मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण करता है, वह धारणा तो सात्त्विकी है।।३३।।

यया तु धर्म कामार्थान्, धृत्या धारयतेऽ-र्जुन।
प्रसंगेन फलाकांक्षी, धृतिः सा पार्थ राजसी।।३४।।

6 1 8 7 9 3 5 4
यया, तु, धर्मकामार्थान्, धृत्या, धारयते, अर्जुन, प्रसङ्गेन, फलाकांक्षी,
11 10 2 12
धृतिः, सा, पार्थ, राजसी।

भाषा :– और हे पार्थ! अर्जुन! फलाकांक्षी मनुष्य, आसक्ति से जिस धारणा शक्ति द्वारा धर्म, अर्थ और कामों को धारण करता है, वह धारणा राजसी है।।३४।।

यया स्वप्नं भयं शोकं, विषादं मद-मेव च।
न विमुंचति दुर्मेधा, धृतिः सा पार्थ तामसी।।३५।।

3 4 5 6 8 9 10 7 11
यया, स्वप्नम्, भयम्, शोकम्, विषादम्, मदम्, एव, च, न,
12 2 14 13 1 15
विमुञ्चति, दुर्मेधाः, धृतिः, सा, पार्थ, तामसी।

भाषा :– तथा हे पार्थ! दुष्टबुद्धि मनुष्य जिस धारणा द्वारा निद्रा, भय, शोक और दुःख एवं उन्माद को भी नहीं छोड़ता– ऐसी धारणा तामसी है।।३५।।

सुखं त्विदानीं त्रिविधं, श्रृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद् रमते यत्र, दुःखान्तं च निगच्छति।।३६।।

2 3 1 4 6 5 7 9
सुखम्, तु, इदानीम्, त्रिविधम्, शृणु, मे, भरतर्षभ, अभ्यासात्,
10 8 12 11 13
रमते, यत्र, दुःखान्तम्, च, निगच्छति।

भाषा :– हे अर्जुन! अब सुख भी तू तीन प्रकार से मेरे से सुन। हे भरत श्रेष्ठ! जिस सुख में साधक भजनादि के अभ्यास से रमण करता है और दुःखों के अन्त को प्राप्त करता है– ।।३६।।

यत् तदग्रे विषमिव, परिणामेऽ-मृतोपमम्।
तत् सुखं सात्त्विकं प्रोक्त,- मात्म बुद्धि प्रसादजम्।।३७।।

7 1 2 3 4 5 6 10 9
यत्, तत्, अग्रे, विषम्, इव, परिणामे, अमृतोपमम्, तत्, सुखम्,
11 12 8
सात्त्विकम्, प्रोक्तम्, आत्मबुद्धिप्रसादजम्।

भाषा :– और वह सुख आरम्भ में यद्यपि विष समान भासता है किन्तु परिणाम में अमृत-तुल्य है। इसलिए जो आत्मबुद्धि से उत्पन्न हुआ सुख है, वह सात्त्विक कहा गया है।।३७।।

विषये-न्द्रिय संयोगाद्,- यत् तदग्रेऽ-मृतोपमम्।
परिणामे विषमिव, तत् सुखं राजसं-स्मृतम्।।३८।।

3 1 4 5 6 7
विषयेन्द्रियसंयोगात्, यत्, तत्, अग्रे, अमृतोपमम्, परिणामे,
8 9 10 2 11 12
विषम्, इव, तत्, सुखम्, राजसम्, स्मृतम्।

भाषा :– तथा जो सुख विषय और इन्द्रियों के संयोग से होता है, वह पहले अर्थात् भोग काल में अमृत तुल्य प्रतीत होने पर भी परिणाम में विषतुल्य है; एतदर्थ वह सुख राजस कहा गया है।।३८।।

यदग्रे चानुबन्धे च, सुखं मोहन-मात्मनः।
निद्रा-लस्य प्रमादोत्थं, तत् तामस-मुदाहृतम।।३९।।

1 3 4 5 6 2 8 7
यत्, अग्रे, च, अनुबन्धे, च, सुखम्, मोहनम्, आत्मनः,
10 9 11 12
निद्रालस्यप्रमादोत्थम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम्।

भाषा :– और जो सुख भोग काल और परिणाम में भी आत्मा को मोहित करने वाला है, वह निद्रा, आलस्य और प्रमादोत्पन्न सुख तामस कहा गया है।।३९।।

न तदस्ति पृथिव्यां वा, दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजै-र्मुक्तं, यदेभिः स्यात् त्रिभि-र्गुणैः।।४०।।

9 7 10 2 3 4 6 5 1 8
न, तत्, अस्ति, पृथिव्याम्, वा, दिवि, देवेषु, वा, पुनः, सत्त्वम्,
13 16 11 12 17 14 15
प्रकृतिजैः, मुक्तम्, यत्, एभिः, स्यात्, त्रिभिः, गुणैः।

भाषा :– और (हे अर्जुन!) पृथ्वी में या आकाश में वा देवताओं में तथा इनके सिवा और कहीं भी ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो प्रकृति से उत्पन्न इन तीनों गुणों से रहित है।।४०।।

ब्राह्मण क्षत्रिय विशां, शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि, स्वभाव प्रभवै-र्गुणैः।।४१।।

2 4 3 1 5 8
ब्राह्मणक्षत्रियविशाम्, शूद्राणाम्, च, परंतप, कर्माणि, प्रविभक्तानि,
6 7
स्वभावप्रभवैः, गुणैः।

भाषा :– अतः हे परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों तथा शूद्रों के भी कर्म, स्वभाव से उत्पन्न हुए गुणों द्वारा बंटे हुए हैं।।४१।।

शमो दम-स्तपः शौचं, क्षान्ति-रार्जव-मेव च।
ज्ञानं विज्ञान-मास्तिक्यं, ब्रह्म कर्म स्वभावजम्।।४२।।

1 2 4 3 5 6 11 9 8
शमः, दमः, तपः, शौचम्, क्षान्तिः, आर्जवम्, एव, च, ज्ञानम्,
10 7 12 13
विज्ञानम्, आस्तिक्यम्, ब्रह्मकर्म, स्वभावजम्।

भाषा :– आत्म निग्रह, इन्द्रियदमन, बाह्याभ्यान्तर शुद्धि, तप, क्षमाभाव, सरलता, सात्त्विक बुद्धि, शास्त्रज्ञान और परमात्मतत्त्वानुभव भी, ये ब्राह्मण के नैसर्गिक कर्म हैं।।४२।।

शौर्यं तेजो धृति-र्दाक्ष्यं, युद्धे चाप्य-पलायनम्।
दान-मीश्वर भावश्च, क्षात्रं कर्म स्वभाजम्।।४३।।

1 2 3 4 6 5 7 8 9
शौर्यम्, तेजः, धृतिः, दाक्ष्यम्, युद्धे, च, अपि, अपलायनम्, दानम्,
11 10 12 13 14
ईश्वरभावः, च, क्षात्रम्, कर्म, स्वभावजम्।

भाषा :– पराक्रम, तेज, धैर्य, चतुरता तथा युद्ध में न भागने का स्वभाव, दान और स्वामी भाव– ये क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं।।४३।।

कृषि गौरक्ष्य वाणिज्यं, वैश्य कर्म स्वभावजम्।
परिच-र्यात्मकं कर्म, शूद्र-स्यापि स्वभावजम्।।४४।।

1 2 3 4
कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यम्, वैश्यकर्म, स्वभावजम्, परिचर्यात्मकम्,
8 5 6 7
कर्म, शूद्रस्य, अपि, स्वभावजम्।

भाषा :– तथा खेती बाड़ी, गौपालन और रक्षण, क्रय-विक्रय अर्थात् व्योपार– ये क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं। सब वर्णों की सेवा – यह शूद्र का भी स्वभावानुकूल कर्म है।।४४।।

स्वे स्वे कर्मण्य-भिरतः, संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्म-निरतः सिद्धिं, यथा विन्दति तच्छृणु।।४५।।

1 2 3 4 6 7 5 9
स्वे, स्वे, कर्मणि, अभिरतः, संसिद्धिम्, लभते, नरः, स्वकर्मनिरतः,
10 8 11 12 13
सिद्धिम्, यथा, विन्दति, तत्, शृणु।

भाषा :– अतः अपने-अपने स्वाभाविक कर्म में लगा हुआ मनुष्य परम सिद्धि (भगवत् प्राप्ति) को पाता है। परन्तु जिस प्रकार से स्वकर्म में लगा हुआ मनुष्य परम सिद्धि का लाभ प्राप्त करता है, उस विधि को तू मेरे से सुन– ।।४५।।

यतः प्रवृत्ति-र्भूतानां, येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तम-भ्यर्च्य, सिद्धिं विन्दति मानवः।।४६।।

1 3 2 4 6 5 7 9
यतः, प्रवृत्तिः, भूतानाम्, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्, स्वकर्मणा,
8 10 12 13 11
तम्, अभ्यर्च्य, सिद्धिम्, विन्दति, मानवः।

भाषा :– तथा हे पार्थ! जिस परमपिता से समस्त प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिस से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, उस परमात्मा को अपने स्वाभाविक कर्म द्वारा पूजकर मनुष्य, परमसिद्धि को प्राप्त होता है।।४६।।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः, पर धर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वभाव नियतं कर्म, कुर्वन्-नाप्नोति किल्बिषम्।।४७।।

5 4 3 2 1 6
श्रेयान्, स्वधर्मः, विगुणः, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्, स्वभावनियतम्,
7 8 10 9 11
कर्म, कुर्वन्, न, आप्नोति, किल्बिषम्।

भाषा :– भली प्रकार आचरित दूसरे के धर्म से, गुण रहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ है, क्योंकि स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्मानुकूल कर्म करता हुआ मनुष्य पाप का भागी नहीं बनता।।४७।।

सहजं कर्म कौन्तेय, सदोष-मपि न त्यजेत्।
सर्वा-रम्भा हि दोषेण, धूमे-नाग्नि-रिवावृताः।।४८।।

4 5 1 2 3 6 7 12 8
सहजम्, कर्म, कौन्तेय, सदोषम्, अपि, न, त्यजेत्, सर्वारम्भाः, हि,
13 9 10 11 14
दोषेण, धूमेन, अग्निः, इव, आवृताः।

भाषा :– अतएव हे कुन्ती नन्दन! दोषयुक्त होने पर भी, अपना स्वाभाविक कर्म-त्याग नहीं करना चाहिए। क्योंकि धुएँ से अग्नि की तरह सब ही कर्म, किसी न किसी दोष से आवृत (ढके हुए) हैं।।४८।।

असक्त बुद्धिः सर्वत्र, जितात्मा विगत-स्पृहः।
नैष्कर्म्य सिद्धिं परमां, संन्यासे-नाधि गच्छति।।४९।।

2 1 4 3 7
असक्तबुद्धिः, सर्वत्र, जितात्मा, विगतस्पृहः, नैष्कर्म्यसिद्धिम्,
6 5 8
परमाम्, संन्यासेन, अधिगच्छति।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! सर्वत्र अनासक्त बुद्धि वाला, स्पृहारहित और जीते हुए अन्तःकरण वाला साँख्य योग द्वारा भी, परम क्रिया रहित सिद्धि अर्थात् परमात्मा को प्राप्त होता है।।४९।।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म, तथा-प्नोति निबोध मे।
समासे-नैव कौन्तेय, निष्ठा ज्ञानस्य या परा।।५०।।

2 3 4 5 7 6 15 13 14
सिद्धिम्, प्राप्तः, यथा, ब्रह्म, तथा, आप्नोति, निबोध, मे, समासेन,
12 1 11 9 8 10
एव, कौन्तेय, निष्ठा, ज्ञानस्य, या, परा।

भाषा :– अतः हे कुन्ती पुत्र! अन्तःकरण की शुद्धि रूप सिद्धि को प्राप्त हुआ पुरुष, जैसे परमब्रह्म को प्राप्त होता है तथा जो तत्त्व ज्ञान की परा निष्ठा है, उसे तू मेरे से संक्षेप से जान–।।५०।।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो, धृत्या-त्मानं नियम्य च।
शब्दादीन् विषयां-स्त्य-क्त्वा, राग द्वेषौ व्युदस्य च।।५१।।

विविक्त-सेवी लघ्वाशी, यत वाक् काय मानसः।
ध्यानयोग-परो नित्यं, वैराग्यं समुपाश्रितः।।५२।।

2 1 3 11 12 13 14 15
बुद्ध्या, विशुद्धया, युक्तः, धृत्या, आत्मानम्, नियम्य, च, शब्दादीन्,
16 17 19 20 18 4 5
विषयान्, त्यक्त्वा, रागद्वेषौ, व्युदस्य, च, विविक्तसेवी, लघ्वाशी,
6 10 9 7 8
यतवाक्कायमानसः, ध्यानयोगपरः, नित्यम्, वैराग्यम्, समुपाश्रितः।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! विशुद्ध बुद्धि युक्त, एकान्त सेवी, मिताहारी, जीते हुए वाणी, शरीर और मन वाला, दृढ़ वैराग्य प्राप्त

हुआ पुरुष, नित्यध्यान-योग परायण हुआ, धारणा से अन्तःकरण को वश में करके तथा शब्दादिक विषयों को त्याग कर और राग द्वेषों को नष्ट करके- ।।५१-५२।।

अहंकारं बलं दर्पं, कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो, ब्रह्म भूयाय कल्पते।।५३।।

1 2 3 4 5 6 7
अहङ्कारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, परिग्रहम्, विमुच्य,
8 9 10 11
निर्ममः, शान्तः, ब्रह्मभूयाय, कल्पते।

भाषा :- अहंकार, बल, घमण्ड, काम, क्रोध, संग्रह को त्याग कर ममत्व रहित, शान्त अन्तःकरण हुआ, परमानन्द ब्रह्म में एकात्मस्वरूप होने के लिये योग्य है।।५३।।

ब्रह्म भूतः प्रसन्नात्मा, न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु, मद्भक्तिं लभते पराम्।।५४।।

1 2 3 4 5 6 9 7
ब्रह्मभूतः, प्रसन्नात्मा, न, शोचति, न, कांक्षति, समः, सर्वेषु,
8 11 12 10
भूतेषु, मद्भक्तिम्, लभते, पराम्।

भाषा :- फिर वह परमानन्द ब्रह्म में एकीभाव से स्थित हुआ, प्रसन्न चित्त वाला पुरुष, न किसी के लिए शोक करता है, न किसी वस्तु की कामना ही करता है; एवं सब भूतों में समभाव हुआ पुरुष मेरी पराभक्ति को प्राप्त होता है।।५४।।

भक्त्या मा-मभिजानाति, यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा, विशते तदनन्तरम्।।५५।।

1 2 4 7 5 6 8 3 9
भक्त्या, माम्, अभिजानाति, यावान्, यः, च, अस्मि, तत्त्वतः, ततः,
10 11 12 14 13
माम्, तत्त्वतः, ज्ञात्वा, विशते, तदन्तरम्।

भाषा :– तथा उस भक्ति द्वारा मेरे परात्मतत्त्व को भली प्रकार जानकर कि, मैं जो और जिस प्रभाव वाला हूँ, ऐसा तत्त्व से समझ कर तत्काल मेरे सानिध्य को प्राप्त होता है।।५५।।

सर्व कर्माण्यपि सदा, कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादा-दवाप्नोति, शाश्वतं पद-मव्ययम्।।५६।।

2 5 3 4 1 6
सर्वकर्माणि, अपि, सदा, कुर्वाणः, मद्व्यपाश्रयः, मत्प्रसादात्,
10 7 9 8
अवाप्नोति, शाश्वतम्, पदम्, अव्ययम्।

भाषा :– मेरे परायण हुआ कर्मयोगी, सम्पूर्ण कर्मों को सदा करता हुआ भी मेरे अनुग्रह से, उस सनातन, अविनाशी परम पद को प्राप्त होता है।।५६।।

चेतसा सर्वकर्माणि, मयि सन्न्यस्य मत्परः।
बुद्धियोग-मुपाश्रित्य, मच्चित्तः सततं भव।।५७।।

2 1 3 4 5 6
चेतसा, सर्वकर्माणि, मयि, सन्न्यस्य, मत्परः, बुद्धियोगम्,
7 9 8 10
उपाश्रित्य, मच्चित्तः, सततम्, भव।

भाषा :– अतः हे अर्जुन! तू सब कर्मों को मेरे अर्पण कर के, मेरे परायण हुआ, समत्व बुद्धि रूप निष्काम कर्मयोग का आश्रय लेकर, मेरे में चित्त वाला हो।।५७।।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि, मत्प्रसादात् तरिष्यसि।
अथ चेत्त्व-महंकारान्, न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि।।५८।।

2 3 6 4 5 7 8 9
मत्, चित्तः, सर्वदुर्गाणि, मत्, प्रसादात्, तरिष्यसि, अथ, चेत्,
1 10 11 12 13
त्वम्, अहंकारात्, न, श्रोष्यसि, विनंक्ष्यसि।

भाषा :– ऐसे तू मेरे में निरन्तर चित्त वाला हुआ मेरी कृपा से, सब कष्टों से अनायास ही तर जायेगा; किन्तु यदि अहंकार वश मेरे उपदेश को नहीं सुनेगा अर्थात् आचरण नहीं करेगा तो विनाश को प्राप्त होगा, तात्पर्य यह कि परमार्थ भ्रष्ट हो जायेगा।।५८।।

यद-हंकार-माश्रित्य, न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते, प्रकृति-स्त्वां नियोक्ष्यति।।५९।।

1 2 3 6 7 4 5 11 8
यत्, अहंकारम्, आश्रित्य, न, योत्स्ये, इति, मन्यसे, मिथ्या, एषः,
10 9 12 13 14
व्यवसायः, ते, प्रकृतिः, त्वाम्, नियोक्ष्यति।

भाषा :– वा जो तू अहंकारवश ऐसे मानता है कि "मैं युद्ध नहीं करूँगा" तो यह तेरा निश्चय मिथ्या है, क्योंकि क्षत्रिय स्वभाव तेरे को बरबस युद्ध में लगा देगा।।५९।।

स्वभावजेन कौन्तेय, निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्, करिष्यस्य-वशोऽपितत्।।६०।।

10 1 12 9 11 5 4 6
स्वभावजेन, कौन्तेय, निबद्धः, स्वेन, कर्मणा, कर्तुम्, न, इच्छसि,
2 3 14 13 8 7
यत्, मोहात्, करिष्यसि, अवशः, अपि, तत्।

भाषा :– और हे कुन्ती पुत्र! जिस कर्म को तू अब तक मोह से नहीं करना चाहता है, उसको भी अपने स्वाभाविक क्षात्र कर्म से बन्धा हुआ परवश होकर अवश्यमेव करेगा।।६०।।

ईश्वरः सर्वभूतानां, हृद्-देशेऽ-र्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि, यन्त्रा-रूढानि मायया।।६१।।

4 7 8 1 9 6 3
ईश्वरः, सर्वभूतानाम्, हृद्देशे, अर्जुन, तिष्ठति, भ्रामयन्, सर्वभूतानि,
2 5
यन्त्रारूढानि, मायया।

भाषा :– क्योंकि हे अर्जुन! शरीर रूप यन्त्र में चढ़े हुए सम्पूर्ण प्राणियों को, अन्तर्यामी ईश्वर अपनी माया से मनुष्य के कर्मानुसार भ्रमाता हुआ, सब भूत प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित है।।६१।।

तमेव शरणं गच्छ, सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात् परां शान्तिं, स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।६२।।

3 4 5 6 2 1 7 8
तम्, एव, शरणम्, गच्छ, सर्वभावेन, भारत, तत्प्रसादात्, पराम्,
9 11 12 10
शान्तिम्, स्थानम्, प्राप्स्यसि, शाश्वतम्।

भाषा :– एतदर्थ– हे भारत! सब प्रकार से तू उस परमात्मा की ही शरण में जा। उसकी कृपा से ही परम शान्ति किंवा अन्ततोगत्वा परमात्मधाम को प्राप्त होगा।।६२।।

इति ते ज्ञान-माख्यातं, गुह्याद् गुह्यतरं मया।
विमृश्यैत-दशेषेण, यथे-च्छसि तथा कुरु।।६३।।

1 6 4 7 2 3 5 10
इति, ते, ज्ञानम्, आख्यातम्, गुह्यात्, गुह्यतरम्, मया, विमृश्य,
8 9 11 12 13 14
एतत्, अशेषेण, यथा, इच्छसि, तथा, कुरु।

भाषा :– इस प्रकार यह गोपनीय से भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तेरे लिए कहा है। इस रहस्ययुक्त ज्ञान को सविस्तार एवं सम्पूर्णता से अच्छी प्रकार विचार के, फिर तू जैसा चाहता है, वैसे ही कर (युद्ध या युद्ध विराम आदि)।।६३।।

सर्व गुह्यतमं भूयः, शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति, ततो वक्ष्यामि ते हितम्।।६४।।

1 5 6 2 3 4 9 10 7
सर्वगुह्यतमम्, भूयः, शृणु, मे, परमम्, वचः, इष्टः, असि, मे,
8 12 11 15 4 13
दृढम्, इति, ततः, वक्ष्यामि, ते, हितम्।

भाषा :– सर्वगोपनीयों से अति गोपनीय, मेरे परम रहस्यमय वचनों को तू फिर सुन, क्योंकि तू मेरा परम प्रिय है। इसलिए यह परम हितकारक वचन मैं तेरे लिए कहूँगा–।।६४।।

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां नम-स्कुरु।
मामे-वैष्यसि सत्यं ते, प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।६५।।

1 2 3 4 5 6 7 8
मन्मनाः, भव, मद्भक्तः, मद्याजी, माम्, नमस्कुरु, माम्, एव,
9 11 10 12 14 15 13
एष्यसि, सत्यम्, ते, प्रतिजाने, प्रियः, असि, मे।

भाषा :– हे अर्जुन! तू मेरे में मन वाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजक बन तथा मुझे ही प्रणाम कर। ऐसा करने से तू मेरे को ही प्राप्त

होगा, यह मैं तुझ से सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तू मेरा प्रिय है।।६५।।

सर्वधमान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो, मोक्षयि-ष्यामि मा शुचः।।६६।।

1 2 4 3 5 6 7 8
सर्वधर्मान्, परित्यज्य, माम्, एकम्, शरणम्, व्रज, अहम्, त्वा,
9 10 11 12
सर्वपापेभ्यः, मोक्षयिष्यामि, मा, शुचः।

भाषा :– भगवान् परब्रह्म, सच्चिदानन्दघन, जगद्गुरु, वासुदेव का गुरु-शिष्यसंवाद द्वारा अर्जुन के माध्यम से सर्वलोक हितार्थ अन्तिम महत्त्वपूर्ण किंवा मंगलमय, अमङ्गलहारी उपदेश– हे अर्जुन!– तू सर्वधर्मों अर्थात् सम्पूर्ण कर्मों के आश्रय को त्यागकर केवल मेरी शरण में आ। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा; अतः तू शोक मत कर।।६६।।

इदं ते ना-तपस्काय, ना-भक्ताय कदाचन।
न चाशु-श्रूषवे वाच्यं, न च मां योऽ-भ्यसूयति।।६७।।

2 1 4 5 8 9 3 1 7
इदम्, ते, न, अतपस्काय, न, अभक्ताय, कदाचन, न, च,
12 6 13 10 15 14 16
अशुश्रूषवे, वाच्यम्, न, च, माम्, यः, अभ्यसूयति।

भाषा :– एक बात और– हे अर्जुन!– मेरा यह गीतारूप रहस्यमय उपदेश किसी भी काल में, न तो तप रहित मनुष्य से कहना चाहिए, न भक्तिरहित मनुष्य से और न बिना सुनने की इच्छा वाले से ही कहना चाहिए; तथा जो मेरी निन्दा करता है, उससे तो कभी भी नहीं कहना चाहिए।।६७।।

य इमं परमं गुह्यं, मद्भक्तेष्व-भिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा, मामे-वैष्य-त्यसंशयः॥६८॥

1 6 7 8 9 10 4
यः, इमम्, परमम्, गुह्यम्, मद्भक्तेषु, अभिधास्यति, भक्तिम्,
2 3 5 11 12 13 14
मयि, पराम्, कृत्वा, माम्, एव, एष्यति, असंशयः।

भाषा :– इस श्लोक से ७२वें श्लोक तक वासुदेव गीता पाठ–माहात्म्य वर्णन करते हुए कहते हैं कि– जो मनुष्य मेरे में परम प्रेम करके इस परम रहस्य युक्त गीता शास्त्र को मेरे भक्तों में कहेगा, वह मुझ को प्राप्त होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं॥६८॥

न च तस्मा-न्मनुष्येषु, कश्चिन् मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मा,- दन्यः प्रिय-तरो भुवि॥६९॥

2 1 3 6 7 4 5 15 9
न, च, तस्मात्, मनुष्येषु, कश्चित्, मे, प्रियकृत्तमः, भविता, न,
8 11 10 14 12 13
च, मे, तस्मात्, अन्यः, प्रियतरः, भुवि।

भाषा :– और न तो उससे बढ़कर मेरा अतिशय प्रिय कार्य करने वाला मनुष्यों में कोई है और न ही उससे बढ़कर मेरा अत्यन्त प्यारा पृथ्वी में दूसरा कोई होवेगा॥६९॥

अध्येष्यते च य इमं, धर्म्यं संवाद-मावयोः।
ज्ञान-यज्ञेन तेनाह,- मिष्टः स्या-मिति मे मतिः॥७०॥

7 1 2 3 4 6 5 10
अध्येष्यते, च, यः, इमम्, धर्म्यम्, संवादम्, आवयोः, ज्ञानयज्ञेन,
8 9 11 12 13 14 15
तेन, अहम्, इष्टः, स्याम्, इति, मे, मतिः।

भाषा :– तथा (हे अर्जुन!) जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनों के संवाद रूप गीता-शास्त्र का नित्य अध्ययन अर्थात् पाठ करेगा, उसके द्वारा में ज्ञानमय यज्ञ (जो सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है) से पूजित होऊंगा ऐसा। मेरा मत है।।७०।।

श्रद्धावा-ननसूयश्च,
शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्,
प्राप्नुयात् पुण्य कर्मणाम्।।७१।।

3 5 4 6 7 1 2 8 9
श्रद्धावान्, अनसूयः, च, शृणुयात्, अपि, यः, नरः, सः, अपि,
10 12 13 14 11
मुक्तः, शुभान्, लोकान्, प्राप्नुयात्, पुण्यकर्मणाम्।

भाषा :– तथा जो मनुष्य श्रद्धायुक्त और दोषदृष्टि रहित हुआ इस गीता शास्त्र का श्रवण मात्र ही करेगा अर्थात् श्रद्धा और भक्ति भाव से सुनेगा, वह भी पाप-मुक्त हुआ उत्तम कर्म करने वालों के मङ्गलमय लोकों को प्राप्त होगा।।७१।।

कच्चिदेत-च्छ्रुतं पार्थ, त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञान सँमोहः, प्रनष्ट-स्ते धनंजय।।७२।।

2 3 7 1 4 5 6 9
कच्चित्, एतत्, श्रुतम्, पार्थ, त्वया, एकाग्रेण, चेतसा, कच्चित्,
11 12 10 8
अज्ञानसंमोहः, प्रनष्टः, ते, धनंजय।

भाषा :– इस प्रकार गीता शास्त्र माहात्म्य कहकर श्री भगवान् वासुदेव, आनन्दकन्द, सच्चिदानन्द ने अर्जुन से पूछा– हे पार्थ! क्या

इस (गीता ज्ञान) को तूने एकाग्रचित से सुना? तथा हे धनञ्जय! क्या तेरा अज्ञानजनित मोह नष्ट हुआ?।।७२।।

अर्जुन उवाच

नष्टो मोहः स्मृति-र्लब्धा, त्वत् प्रसादा-न्मयाऽच्युत।
स्थितोऽ-स्मि गत-संदेहः, करिष्ये वचनं तव।।७३।।

5 4 7 8 2 3 6 1 10
नष्टः, मोहः, स्मृतिः, लब्धा, त्वत्, प्रसादात्, मया, अच्युत, स्थितः,
11 9 14 13 12
अस्मि, गतसंदेहः, करिष्ये, वचनम्, तव।

भाषा :– इस प्रकार भगवान् वासुदेव के पूछने पर अर्जुन बोला– हे अच्युत! आपकी कृपा से मेरा मोह (मतिभ्रम) नष्ट हो गया है और स्मृति (ज्ञान) प्राप्त हुई है; परिणामतः अब में सन्देह रहित हुआ स्थित हूँ और आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।।७३।।

संजय उवाच

इत्यहं वासुदेवस्य, पार्थस्य च महात्मनः।
संवाद-मिम-मश्रौष,- मद्भुतं रोम हर्षणम्।।७४।।

1 2 3 6 4 5 10 7
इति, अहम्, वासुदेवस्य, पार्थस्य, च, महात्मनः, संवादम्, इमम्,
11 8 9
अश्रौषम्, अद्भुतम्, रोमहर्षणम्।

भाषा :– तदुपरान्त सञ्जय धृतराष्ट्र से बोले– इस प्रकार मैंने श्रीमद्भगवान् वासुदेव के तथा महात्मा अर्जुन के इस अद्वितीय एवं रोमाञ्चकारी संवाद को सुना।।७४।।

व्यास-प्रसादा-च्छ्रुतवा,- नेतद् गुह्य-महं परम्।
योगं योगेश्वरा-त्कृष्णात्, साक्षात् कथयतः स्वयम्॥७५॥

1 12 3 5 2 4 6
व्यासप्रसादात्, श्रुतवान्, एतत्, गुह्यम्, अहम्, परम्, योगम्,
10 11 7 8 9
योगेश्वरात्, कृष्णात्, साक्षात्, कथयतः, स्वयम्।

भाषा :– श्री वेदव्यास जी की कृपा से दिव्य दृष्टि पाकर मैंने यह परम गोपनीय ज्ञान, कर्म और भक्ति-योग को अर्जुन के प्रति साक्षात् कहते हुए, स्वयं योगीराज श्री भगवान् वासुदेव से सुना॥७५॥

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य, संवाद-मिम-मद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं, हृष्यामि च मुहु-र्मुहुः॥७६॥

1 8 9 7 3 6 2
राजन्, संस्मृत्य, संस्मृत्य, संवादम्, इमम्, अद्भुतम्, केशवार्जुनयोः,
4 11 5 10
पुण्यम्, हृष्यामि, च, मुहुर्मुहुः।

भाषा :– हे राजन! भगवान् श्री केशव और अर्जुन के इस (रहस्यमय) कल्याणकारी तथा अद्भुत संवाद को पुनः पुनः स्मरण कर, बारम्बार हर्षित होता हूँ॥७६॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य, रूप-मत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महा-न्राजन्, हृष्यामि च पुनः पुनः॥७७॥

3 7 8 9 6 4 5 2 12
तत्, च, संस्मृत्य, संस्मृत्य, रूपम्, अति, अद्भुतम्, हरेः, विस्मयः,
10 11 1 16 13 14 15
मे, महान्, राजन्, हृष्यामि, च, पुनः, पुनः।

भाषा :– तथा हे महाराज (धृतराष्ट्र)! श्री हरि के उस अद्वितीय किंवा अलौकिक रूप को भी बारम्बार स्मरण कर के मेरे मन में महान् आश्चर्य होता है तथा मैं पुनः पुनः प्रफुल्लित हो रहा हूँ।।७७।।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो, यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्री-र्विजयो भूति,- र्ध्रुवा नीति-र्मति-र्मम।।७८।।

ओं तत्सदिति श्रीमद्-भगवद्-गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्ष-संन्यास-योगो नामाष्टादशोऽध्यायः श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु।।१८।।

1 2 3 4 5 6 7 8 9
यत्र, योगेश्वरः, कृष्णः, यत्र, पार्थः, धनुर्धरः, तत्र, श्रीः, विजयः,
10 11 12 14 13
भूतिः, ध्रुवा, नीतिः, मतिः, मम।

भाषा :– हे राजन्! अधिक क्या कहूँ– जिस पक्ष के पक्षधर योगीराज भगवान् श्रीकृष्ण हैं और धनुर्धर अर्जुन हैं, उसी ओर श्री (लक्ष्मी), विजयश्री, विभूति (समृद्धि) और स्थिर नीति है– ऐसा मेरा मत है।।७८।।

इति श्री जम्मू-कश्मीर राज्यान्तर्गते, द्विगर्तप्रान्ते, श्रीकष्टनिवार नगरे निवासिनः, पत्स्वामिन् कौशिक गोत्रोद्भवः दुर्गालाल शर्मा विरचितायां 'गीता-सुगीता-तरङ्गिणी' नामेति टीकायामष्टादशाध्यायानां सान्वयार्थसम्पूर्णमोम् शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!!! सुशान्तिर्भवत्वशेषप्राणिनाम्।।

श्लोकाः ७८ गतश्लोकानि ६२२ एवमादितः ७००

॥ ओं नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथ श्रीमद्-भगवद्-गीता माहात्म्य कथनम्

वाणीं विनायकं नत्वा, वासुदेवं जगद्गुरुम्।
गीता माहात्म्य टीकायां, प्रकुर्वे राष्ट्रभाषया॥

भाषा :– श्रीमद्भगवद्गीता पाठ समाप्त कर गीता-पाठ-माहात्म्य का वाचन करना चाहिए। ऐसा करने से यथेष्ट फल प्राप्त होता है। वाचक, पाठक और श्रोता के लाभार्थ पाठ-माहात्म्य सानुवाद प्रस्तुत करते हैं–

॥ अथ माहात्म्यम् ॥

सारथ्य-मर्जुनस्यादौ, कुर्वन् गीतामृतं ददौ।
सर्व-लोकोपकारार्थं, तस्मै कृष्णाय वै नमः॥१॥

भाषा :– जिसने प्रारम्भ में अर्जुन का सारथी बन, लोक-कल्याणार्थ उसे गीता रूपी ज्ञानामृत प्रदान किया उस भगवान् कृष्ण को हमारा नमस्कार है॥१॥

गीता-शास्त्र-मिदं पुण्यं, यः पठेत् प्रयतः पुमान्।
विष्णुपद-मवाप्नोति, भय-शोकादि-वर्जितः॥२॥

भाषा :– जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर, इस मङ्गलमय शास्त्र का पाठ करता है, वह भय, शोकादि से मुक्त होकर अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है॥२॥

सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपाल-नन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधी-र्भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत्।।३।।

भाषा :– सभी उपनिषद् मानो गायें हैं, इन गौवों को दुहने वाले बाल गोपाल श्रीकृष्ण हैं। अर्जुन मानो बछड़ा रूप है जो इन गायों का दुग्धपान भरपेट करता है अर्थात् सद्बुद्धि द्वारा गीता ज्ञानामृत रसास्वादन करता है।।३।।

संसार सागरं घोरं, तर्तु-मिच्छति यो जनः।
गीता नावं समारुह्य, पारं यातु सुखेन सः।।४।।

भाषा :– जो इस त्रिविध ताप-पीडित संसार सागर से पार उतरना चाहता है, वह गीता ज्ञान रूपी नाव पर बैठ कर सुख पूर्वक पार पा सकता है अर्थात् आत्मकल्याण चाहने वाले व्यक्ति को गीताध्ययन, चिन्तन, मनन एवं तद्नुरूप आचरण मङ्गलकारी है।।४।।

मल-निर्मोचनं पुसां, जल स्नानं दिने दिने।
सकृद्-गीताम्भसि स्नानं, संसार-मल नाशनम्।।५।।

भाषा :– नित्यप्रति जल स्नान मनुष्य के शारीरिक मल का नाशक है किन्तु गीता ज्ञानरूप जल (मन्त्र स्नान) स्नान सांसारिक दुःखरूप मल का नाश करने वाला है।।५।।

देवकी-नन्दनः कृष्णो, गीता-पाठेन तुष्यति।
यथा न वेदै-र्दानैश्च, यज्ञ तीर्थ व्रतादिभिः।।६।।

भाषा :– जैसे देवकी पुत्र वासुदेव गीता पाठ से सन्तुष्ट होते हैं, वैसे वेद पाठ, दान, यज्ञ, तीर्थ, व्रतों से संतुष्ट नहीं होते।।६।।

योगि-स्थाने सिद्ध पीठे, शिष्टाग्रे सत्सभासु च।
यज्ञे च विष्णुभक्ताग्रे, पठन् याति परां गतिम्।।७।।

भाषा :– योगी स्थान (सिद्धसमाधिस्थल) में, श्रीस्थलदेवी, मचैल वासिनी माँ बाली आदि सिद्ध पीठ में, श्रेष्ठ पुरुषों के समाज, सत्संग में,

यज्ञ में तथा विष्णुभक्त के सामने गीता पाठ करने या कराने से मनुष्य मोक्ष का अधिकारी बनता है।।७।।

भूत प्रेत पिशाचाद्या,- स्तत्र न प्रविशन्ति वैः।
अभिचारोद्भवं दुःखं, परेणापि कृतं च यत्।।८।।

नोप-सर्पन्ति तत्रैव, यत्र गीतार्चनं गृहे।
ताप-त्रयोद्भवा-पीडा, नैव व्याधिभयं तथा।।९।।

भाषा :– जिस घर में गीता जी की पूजा-अर्चना होती है, उस घर में भूत, प्रेत, पिशाच आदि प्रवेश नहीं करते हैं। तन्त्र, मन्त्रादिक अभिचार जनित दुःख (जादू-टोणा) भी प्रवेश नहीं करते। तथा दैविक, देहिक, भौतिक इन तीनों तापों (दुःखों) तथा रोग भय का अन्त हो जाता है।।८-९।।

यत्र गीता-विचारश्च, पठनं पाठनं तथा।
तत्राहं निश्चितं पार्थ, निवसामी सदैव हि।।१०।।

भाषा :– श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं– हे अर्जुन! जहां नित्य गीता-विचार (गीता गोष्ठी), पठन-पाठन होता है, वहाँ मैं निश्चित रूप से निवास करता हूँ।।१०।।

गीता नामानि वक्ष्यामि, गुह्यानि शृणु पाण्डव।
कीर्तनात् सर्व पापानि, विलयं यान्ति तत्क्षणात्।।११।।

भाषा :– तथा हे अर्जुन! गीता जी के जो गुप्त नाम हैं, उन्हें मैं तुम से कहता हूँ। इन गीता जी के अठारह नामों का कीर्तन करने से उसी क्षण सब पाप नष्ट हो जाते हैं।।११।।

गीता गंगा च गायत्री, सीता सत्या सरस्वती।
ब्रह्मविद्या ब्रह्मवल्ली, त्रिसंध्या मुक्तिगेहिनी।।१२।।

अद्र्ध-मात्रा चिदानन्दा, भवघ्नी भयनाशिनी।
वेदत्रयी परा-नन्ता, तत्त्वार्थ-ज्ञान-मञ्जरी।।१३।।

भाषा :– ये अठारह नाम इस प्रकार हैं– गीता, गङ्गा, गायत्री, सीता, सत्या, सरस्वती, ब्रह्मविद्या, ब्रह्मवल्ली, त्रिसन्ध्या, मुक्तिगेहिनी, अर्द्धमात्रा, चिदानन्दा, भवघ्नी, भयनाशिनी, वेदत्रयी, परा, अनन्ता तथा तत्त्वार्थज्ञानमञ्जरी।।१२-१३।।

इत्येतानि जपन्नित्यं, नरो निश्चल मानसा।
ज्ञानसिद्धिं लभे-च्छीघ्रं, तथान्ते परमां गतिम्।।१४।।

भाषा :– गीता के उपर्युक्त नामों को नित्य स्थिर मन से जपते रहने पर मनुष्य शीघ्र ही ज्ञान सिद्धि को प्राप्त कर अन्त में परम पद का अधिकारी बनता है।।१४।।

गीतार्थं वापि पाठं वा, शृणुयादन्त-कालतः।
महापातक युक्तोऽपि, मुक्तिभागी भवेज्जनः।।१५।।

भाषा :– जो अन्तकाल के समय गीता का अर्थ या पाठ सुनता हुआ देह त्याग करता है, वह महापापी हो, तो भी मोक्ष का अधिकारी बनता है।।१५।।

गीता पुस्तक संयुक्तः, प्राणां-स्त्यक्त्वा प्रयाति यः।
वैकुण्ठं समवाप्नोति, विष्णुना सह मोदते।।१६।।

भाषा :- जो व्यक्ति– गीता पुस्तक लिए हुए प्राण त्याग करता है, वह वैकुण्ठधाम जाकर विष्णु के साथ आनन्द भोग करता है।।१६।।

गीतायाः श्लोक दशकं, सप्त पञ्च चतुष्टयम्।
त्रिकं-द्वयेक-मर्धं वा, श्लोकानां यः पठेन्नरः।
चन्द्रलोक-मवाप्नोति, वर्षाणा-मयुतं तथा।।१७।।

भाषा :- जो मनुष्य– गीता के दस, सात, पाँच, चार, तीन, दो, एक या आधे श्लोक का भी पाठ करता है, वह दस हज़ार वर्षों तक चन्द्रलोक में निवास करता है।।१७।।

पितॄनुद्दिश्य यः श्राद्धे, गीता पाठं करोति हि।
सन्तुष्टाः पितर-स्तस्य, निरयाद्-यान्ति स्वर्गतिम्।।१८।।

भाषा :- जो मानव– पितृलोक के उद्देश्य से श्राद्ध के समय गीता पाठ करता है, उसके पितृगण नरक में रहने पर भी, सन्तुष्ट होकर स्वर्ग की ओर प्रस्थान करते हैं।।१८।।

गीता पाठेन सन्तुष्टाः, पितरः श्राद्ध तर्पिताः।
पितृलोकं प्रयान्त्येव, पुत्राशीर्वाद तत्परः।।१९।।

भाषा :– श्राद्ध, तर्पण तथा गीता पाठ से प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होकर पितृगण पुत्रों को शुभाशीर्वाद देते हुए पितृ लोक जाते हैं।।१९।।

वाचकं पूजयेद्-भक्त्या, द्रव्य-वस्त्राद्युपस्करैः।
अन्नै-र्बहुविधैः प्रीत्या, तुष्यतां भगवानिति।।२०।।

भाषा :– तथा पाठ समाप्ति पर, गीता पाठ कर्ता ब्राह्मण को पूज कर तथा धन, अन्न, वस्त्राभूषण आदि देकर प्रसन्न करना चाहिए। इससे भगवान् सन्तुष्ट होते हैं।।२०।।

माहात्म्य-मेतद्-गीतायाः, कृष्ण प्रोक्तं सनातनम्।
गीतान्ते पठते यस्तु, यथोक्तं फल-माप्नुयात्।।२१।।

भाषा :– यह भगवान् वासुदेव द्वारा कहा हुआ सत्य एवं शाश्वत् गीता माहात्म्य है। गीता पाठ समाप्त कर अन्त में इसका पाठ करने से यथेष्ट फल की प्राप्ति होती है।।२१।।

गीतायाः पठनं कृत्वा, माहात्म्यं नैव यः पठेत्।
वृथा पाठफलं तस्य, श्रम एव हि केवलम्।।२२।।

भाषा :– गीता पाठ करके जो माहात्म्य नहीं पढ़ता है, उसका पाठ निष्फल और केवल श्रममात्र ही है।।२२।।

श्रुत्वा पठित्वा गीतां च, माहात्म्यं यः शृणोति वै।
तस्य पुण्य फलं लोके, भवेद्धि मनसे-प्सितम्।।२३।।

भाषा :– जो मनुष्य गीता को सुनकर तथा पढ़कर अन्त में गीतामाहात्म्य का पठन और श्रवण करते हैं – वे मनवांछित फल को प्राप्त करते हैं।।२३।।

इतिश्रीमद्वाराह पुराणे श्री सूत-शौनक संवादे
श्रीकृष्ण प्रोक्तं श्रीमद्भगवद्गीता माहात्म्यं सम्पूर्णम्।

श्री कृष्णार्पणमऽस्तु
ओं शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!
सुशान्तिर्भवत्वेतिशम्।।

नोट :- गीतामहात्म्यान्तर्गत ८८ श्लोक आते हैं। विस्तार भय से मात्र २३ श्लोकों का समावेश किया गया है, जो कि प्रेरणा दायक किंवा समय स्थान एवं परिस्थित्यानुकूल हैं।

माहात्म्य का पाठ पूर्ण होने के पश्चात् पाठ कर्ता और श्रोतागण पाँच मिनट के लिए सामूहिक रूप से श्रीरामकृष्णधुनयुक्त निम्न तीन महामन्त्रों का पाठ करें :-

कृष्ण कृष्ण हरे कृष्ण, राम राम हरे हरे।
राम राम हरे राम, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।१।।
कृष्ण कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
राम राम हरे राम, राम राम हरे हरे।।२।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।।३।।

इसके बाद श्रीमद्भगवद्गीता जी की भी सामूहिक रूप से आरती उतारें :-

आरती

जय भगवद्गीते, मय्या जय भगवद्गीते।
हरि हिय कमल विहारिणि, सुन्दर सुपुनीते।। जय।।
कर्म सुमर्म प्रकाशिनि, कामासक्ति हरा। मय्या।।
तत्त्वज्ञान विकाशिनि, विद्या ब्रह्म परा।। जय।।
निश्चल भक्ति विधायिनि, निर्मल मलहारी।। मय्या।।
शरण रहस्य प्रदायिनि, सब विधि सुखकारी।। जय।।
राग द्वेष विदारिणि, कारिणि मोद सदा।। मय्या।।
भवभय हारिणि तारिणि, परमानन्द-प्रदा।। मय्या।।
आसुर भाव-विनाशिनि, नाशिनि तम रजनी।। मय्या।।
दैवी सद्गुण दायिनि, हरि रसिका सजनी।। जय।।

समता त्याग सिखावनि, हरि-मुख की बानी।। मय्या।।
सकल शास्त्र की स्वामिनि, श्रुतियों की रानी।। जय।।
दया सुधा बरसावनि, मातु! कृपा कीजै।। मय्या।।
हरि-पद-प्रेम दानकर, अपनो कर लीजै।। जय।।

समापन प्रार्थना

आरती के बाद निम्न प्रार्थना-पुष्प अर्पित करें। यथा :-

तुम हो आत्मा की भी आत्मा, ज्योति के भी ज्योति हो।
सत्य सनातन नित्य भक्त,- मानस सागर के मोती हो।।
करते अर्पित तुम्हें प्रार्थना, विनय विचार सभी कुछ हम।
प्रकट करो अपनी महिमा को, नेति नेति हो यद्यपि तुम।।
हम अर्पित करते निज भक्ति, विनय समर्पण और दीनता।
अपनी शरण में लेने हेतु, प्रकट करो उत्कट व्याकुलता।।
तुम से प्रार्थना में हम मांगें, बल बुद्धि विद्या ज्ञान विकास।
कृपा सिन्धु! मम उर में भर दो, शान्ति प्रेम का परम प्रकाश।।
तेरी सन्तानों से जैसे, बन्धे प्रेम के बन्धन में।
तुम से ऐसे ही बन्ध कर, मत पड़ें कभी भवबन्धन में।।
ए ईशों के ईश महाप्रभु तुम इतना उपकार करो।
कर्म भक्ति और ज्ञान दान कर, मेरा भी उद्धार करो।।

अपराध

॥ क्षमा प्रार्थना ॥

आवाहनं न जानामि, न जानामि विसर्जनम्।
पूजाभावं न जानामि, प्रसीद परमेश्वर॥१॥
यद्दत्तं भक्तिमात्रेण, पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
निवेदितं च नैवेद्यं, तद् गृहाणानुकम्पया॥२॥
पापोऽहं पापकर्माहं, पापात्मा पाप सम्भवः।
पाहि मां सर्वदा धातृ, सर्व पाप हरा भव॥३॥
यदक्षर पद भ्रष्टं, मात्राहीनं च यद्गतम्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव, प्रसीद जगदीश्वर॥४॥
अपराधशतं कृत्वा, नारायणेति चोच्चरेत्।
यां गतिं समवाप्नोति, न तां शक्रादया सुराः॥५॥
यस्यार्थे पठितं पाठं, तवेदं मधुसूदन।
तस्यदेहस्यगेहस्य, शान्ति-र्भवतु सर्वदा॥६॥

॥ साष्टाङ्ग नमस्कारम्॥

पदभ्यां, कराभ्यां, जानुभ्यां, शिरसा, उरुसा, मनसा, वचसा, कर्मणा च साष्टाङ्ग नमस्कारं करोमि नमः॥

इति श्रीमद्गवद्गीतायाः शास्त्रोक्त पाठ विधिः सम्पूर्णमोम् शान्तिः॥

॥ ग्रन्थ-समाप्ति-कथनम ॥

गीता सुगीता कर्त्तव्या, किमन्यैः शात्र-विस्तरैः।
यः स्वयं पद्मनाभस्य, मुख पद्माद् विनिःसृता॥१॥
अद्रिबाण खम्नाक्ष्याब्दे, वैक्रमे वत्सरे शुभे।
माघमासे सितेपक्षे, भूमिनन्दन वासरे॥२॥
त्रयोदश्यां तिथौचैव, प्रीतियोग तथैव च।
समाप्तं चेद-मायासं, मोक्षा-भ्युदय दायकम्॥३॥
कृष्ण कृष्ण हरे कृष्ण, वासुदेव जगत्-पते।
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि, त्राहि मां शरणागतम्॥४॥
आशुतोष महाप्राज्ञ, पाहि मां शरणागतम्॥५॥
भरतामृत सर्वस्वं, विष्णो-र्वक्त्राद् विनिःसृतम्।
गीता गङ्गोदकं पीत्वा, पुनर्जन्म न विद्यते॥६॥

श्री कृष्ण! गोविन्द! हरे! मुरारे!
हे नाथ! नारायण! वासुदेव!
त्राहि मां शरणागतम्! पाहि मां शरणागतम्॥
॥ मङ्गलमऽस्त्वशेषप्राणिनाम्॥
॥ समाप्तोऽयं सनातनो ग्रन्थ सम्पादनम् ॥

श्रीकृष्णार्जुनसंवादान्तर्गतमङ्गलकारी
।। द्वादशनामस्तोत्रम् ।।

श्रीकृष्ण उवाच

किं ते नाम सहस्त्रेण, विज्ञातेन तवार्जुन।
यानि नामानि विज्ञाय, नरः पापैः प्रमुच्यते।।१।।
प्रथमं तु हरिं विन्द्याद्, द्वितीयं केशवं तथा।
तृतीयं पदम्-नाभं च, चतुर्थं वामनं स्मरेत्।।२।।
पंचमं वेद-गर्भं तु, षष्ठं च मधुसूदनम्।
सप्तमं वासुदेवं च, वाराहं चाष्टमं तथा।।३।।
नवमं पुण्डरीकाक्षं, दशमं तु जनार्दनम्।
कृष्ण-मैकादशं विन्द्याद्, द्वादशं श्रीधरं तथा।।४।।
द्वादशैतानि नामानि, विष्णु प्रोक्त विधीयते।
सायंप्रातः पठेन्नित्यं, तस्य पुण्य फलं श्रृणु।।५।।
चान्द्रायण सहस्त्राणि, कन्या दान शतानि च।
अश्व मेधु सहस्त्राणि, फलं प्राप्नो-त्यसंशयः।।६।।
अमायां पौर्णमायां च, द्वादश्यां तु विशेषतः।
प्रातःकाले पठेन्नित्यं, सर्व पापैः प्रमुच्यते।।७।।

इतिश्रीकृष्णार्जुन संवादे-द्वादशनामस्तोत्रं
सम्पूर्णं श्री विष्णवार्पणमऽस्तु।।

॥ श्रीमन्नारायण-स्तोत्रम् ॥

जय नारायण जय पुरुषोत्तम, जय वामन कंसारे।
उद्धर मामसुरेश विनाशिन, पतितोऽहं संसारे॥
घोरं हर मम नरक-रिपो, केशव कल्मषभारम्।
मा-मनुकम्पय दीन-मनाथं, कुरु भवसागर पारम्॥१॥

जय जय देव जयासुर सूदन, जय केशव जय विष्णो।
जय लक्ष्मी मुखकमल मधुव्रत, जय दशकन्धर जिष्णु॥
घोरं हर...............॥२॥

जय जननी जनकः प्रभु-रच्युत, त्वं सुहृत्कुल मित्रम्।
त्वं शरणं शरणागत वत्सल, त्वं भवजलधि वहित्रम्॥
घोरं हर...............॥३॥

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि गर्भ निवासम्।
सोढु-मलं पुन-रस्मि-न्माधव, मा-मुद्धर निज दासम्॥
घोरं हर...............॥४॥

यद्यपि सकल-महं कल्यामि, हरे नहि किमपि स सत्त्वम्।
तदपि न मुञ्चति मामिद-मच्युत, पुत्र कलत्र ममत्वम्॥
घोरं हर...............॥५॥

जनकसुता-पति चरण परायण, शंकर मुनिवर गीतम्।
धारय मनसि कृष्ण पुरुषोत्तम, वारय संसृति भीतिम्॥
घोरं हर...............॥६॥

॥ भजगोविन्दं भजगोविन्दम् ॥

दिनमपि रजनी सायं प्रातः, शिशिर वसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छति आयुः, तदपि न मुञ्चति आशावायुः॥
भज गोविन्दं-भजगोविन्दं, गोविन्दं भज मूढमते॥१॥

प्राप्ते सन्निहितेऽपि मरणे, नहि नहि रक्षति डुकृञ करणे।
अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू, रात्रौ चिबुक समर्पित जानुः॥
करतल भिक्षा तरुतल वासः, तदपि न मुञ्चति आशपाशः॥
भज गोविन्दं..........॥२॥

यावत् वित्तोपार्जन सक्तः, तावन्निज परिवारो रक्तः।
पश्चाद् धावति जर्जर देहे, वार्ता पृच्छति कोऽपि न गेहे॥
भज गोविन्दं...............॥३॥

जटिलो मुण्डी लुञ्चित केशः, काषा-याम्बर बहु कृत वेषः।
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढः, उदर निमितं बहुकृत वेशः॥
भज गोविन्दं...............॥४॥

भगवद् गीता किंचि-दधीता, गंगा जल लव कणिका पीता।
सकृदपि येन मुरारि समर्चा, तस्य यमः किं कुरुते चर्चा॥
भज गोविन्दं...............॥५॥

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं, दशन विहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धः ताव-च्चिन्ता मग्नः, परमे ब्रह्णि कोऽपि न लग्नः॥
भज गोविन्दं...............॥६॥

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।
इह संसारे खलु दुस्तारे, कृपयाऽ-पारे पाहि मुरारे॥
भज गोविन्दं................॥७॥

पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः, पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः।
पुनरपि अयनं पुनरपि वर्षं, तदपि न मुञ्चति आशा मर्षम्॥
भज गोविन्दं................॥८॥

वयसि गते कः कामविकारः, शुष्के नीरे कः कासारः।
नष्टे द्रव्ये कः परिवारा, ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः॥
भज गोविन्दं................॥८॥

नारी-स्तन भर नाभि निवेशं, मिथ्या माया मोहा-वेशम्।
एत-न्मांस वसादि विकारं, मनसि विचारय बारम्बारम्॥
भज गोविन्दं................॥१०॥

कः त्वं कोऽहं कुत आयातः, का मे जननी को मे माता।
इति परिभावय सर्व-मसारं, विश्वं त्यक्त्वा स्वप्न विचारम्॥
भज गोविन्दं................॥११॥

गेयं गीतानाम सहस्त्रं, ध्येयं श्रीपतिनाम-भजस्त्रम्।
नेयं सज्जन संगे चित्तम्, देयं दीन जनाय च वित्तम्॥
भज गोविन्दं................॥१२॥

याव-ज्जीवो निवसति देहे, कुशलं तावत् पृच्छतिगेहे।
गतवति वायो देहापाये, भार्या बिभ्यति तस्मि-न्काये॥
भज गोविन्दं................॥१३॥

सुखतः क्रियते रामा भोगः, पश्चाद्धन्ति शरीरे रोगः।
यद्यपि लोके मरणं शरणं, तदपि न मुञ्चति पापाचरणम्॥
भज गोविन्दं................॥१४॥

कुरुते गङ्गासागर गमनं, व्रत परिपालन-मथवा दानम्।
ज्ञानविहीनः सर्व मतेन, मुक्ति न भवति जन्म शतेन॥
भजगोविन्दं भजगोविन्दं, गोविन्दं भज मूढमते॥१५॥

स्तोत्र निष्कर्षः (निचोड़)

एको मन्त्र-स्तस्य नामानि यानि
कर्मा-प्येकं तस्यदेवस्य सेवा॥१॥

सर्वधर्मा-न्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मो-क्षयिष्यामि मा शुचः॥२॥

तुलसी 'रा' के कहत ही, निकसत पाप पहार।
फिर भीतर आवत नहीं, देत 'मकार' किवार॥३॥

कृष्ण कृष्ण हरे कृष्ण, राम राम हरे हरे
गुरु-शरण में जाकर पढ़ो, समझो और करो।

॥ श्री अच्युताष्टकम् ॥

अच्युतं केशवं रामनारायणं, कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिका वल्लभं, जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे॥१॥
अच्युतं केशवं सत्यभामा-धवं, माधवं श्रीधरं राधिकाऽराधितम्।
इन्दिरा-मन्दिरं चेतसा-सुन्दरं, देवकी-नन्दनं नन्दजं सन्दधे॥२॥
विष्णवे जिष्णवे शंखिने चक्रिणे, रुक्मिणी-रागिने जानकी जायिने।
वल्लवी-वल्लभा याऽ-र्चिता-यात्मने, कंस विध्वंसिने वंशिने ते नमः॥३॥
कृष्ण गोविन्द हे राम-नारायण, श्रीपते वासुदेवा-जित श्री-निधे।
अच्युता-नन्त हे माधवा-धोक्षज, द्वारिका-नायक द्रौपदी-रक्षक॥४॥
राक्षस-क्षोभितः सीतया-शोभितो, दण्डका-रण्यभू पुण्यता-कारणः।
लक्ष्मणे-नान्वितो वानरैः सेवितोऽ,- गस्त्य संपूजितो राघवः पातु माम्॥५॥
धेनुका-रिष्टकोऽ-निष्टकृद् द्वेषिणां, केशिहा कंसहृद् वंशिका वादिकाः।
पूतना कोपकः सूरजा खेलनो, बालगोपालकः पातु मां सर्वदा॥६॥
विद्यु-दुद्यो-तवत प्रस्फुरद्-वाससं, प्रावृड-म्भोदवत्प्रोल्लसद्विग्रहम।
वन्यया मालया शोभितो-रुस्थलं, लोहि-तांघ्रि द्वयं वारिजाक्षं भजे॥७॥
कुंचितैः कुन्तलै-र्भ्राजमा-नाननं, रत्न मौलिं लस-त्कुण्डलं गण्डयोः।
हार केयूरकं-कंकण प्रोज्ज्वलं, किंकिणी मञ्जुलं श्यामलं तं भजे॥८॥
अच्युत-स्याष्टकं यः पठे-दिष्टदं, प्रेमतः प्रत्यहं पुरुषः सस्पृहम्।
वृत्ततः सुन्दरं कर्तृ विश्वम्भर,- स्तस्य वश्यो हरि-र्जायते सत्वरम्॥९॥

।। श्रीमत् परब्रह्म नमस्कारम् ।।

नमो अच्युतानन्त, गिरिधर मुरारी।
नमो सच्चिदानन्द,– घन धर्मधारी।।१।।
नमो देवकी-पुत्र, कृष्ण कन्हैया।
नमो नन्दनन्दन, बंसी बजैया।।२।।
नमो भक्तवत्सल, गोविन्द माधव।
नमो बालगोपाल, श्रीकृष्ण यादव।।३।।
नमोऽर्जुन सखा, ज्ञान दाता विधाता।
नमो दीनबन्धु, जगत् त्राण कर्ता।।४।।

।। पूर्ण ब्रह्मभगवान् वासुदेव की आरती ।।

आरती कुञ्ज-बिहारी की, श्री गिरिधर कृष्ण-मुरारी की।। टेक।।
गले में वैजन्ती माला, बजावे मुरली धर आला, श्रवणन में कुण्डल झलकाला, नन्द के आनन्द नन्दलाला,
गगन सम अंग कान्ति काली, राधिका चमक रही आली, लतन में ठाडे बनमाली,
भ्रमर की अलक, कस्तूरी तिलक, चन्द्र सी झलक–
ललित छवि श्याम प्यारे की, श्री गिरिधर कृष्ण मुरारी की।।
आरती कुञ्ज..........।।१।।
कनकमय मोर-मुकुट विलसे, देवता दरसन को तरसें, गगन सों सुमन राशि बरसें,
बजे मुंह चंग, मधुर मिरदंग, ग्वालिन संग–
अतुल रति गोप-कुमारी की, श्री गिरिधर कृष्ण मुरारी की।।
आरती कुञ्ज..........।।२।।

जहां ते प्रकट भई गंगा, कलुष कलिहारिणी गंगा, स्मरणते होत मोह भंगा,
बसी शिव शीष, जटा के बीच, हरे अघकीच–
चरण छवि श्री बनवारी की, श्री गिरिधर कृष्ण मुरारी की।।
आरती कुञ्ज..........।।३।।

।। आनन्दकन्द, सच्चिदानन्दघन, भगवान् कृष्ण को नमस्कार ।।

एकम्, शास्त्रम् देवकी पुत्र गीतम्, एकः, देवः देवकी पुत्र, एव।
एकः, मन्त्रः, तस्य, नामनि, यानि, कर्म, अपि, एकम्, तस्य, देवस्य, सेवा।।
एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीत,- मेको देवो देवकीपुत्र एव।
एको मन्त्र-स्तस्य नामानि यानि, कर्मा-प्येकं तस्य देवस्य सेवा।।

मन्त्र व्याख्या प्रस्तावना के अन्तर्गत कर दी गई है। निम्नलिखित पद्य रचना, एक अनन्य, अज्ञात, कृष्ण भक्त की, उपर्युक्त मन्त्र पर आधारित है। इसका नित्य पाठ श्रद्धा-भक्ति से करना अभीष्ट फलदायी सिद्ध होगा, ऐसा हमारा विश्वास है–

।। श्रीकृष्ण नमस्कार प्रार्थना ।।

नमो कृष्ण भगवान्, बंसी बजैया।
नमो कृष्ण संकट में, धीरज धरैया।।१।।

नमो कृष्ण भक्तों के, दुःख के हरैया।
नमो नन्दनंदन, हमारे कन्हैया।।२।।

नमस्कार चरणों में, आनन्द-दाता।
नमस्कार सर्वस्व, ज्ञाता विधाता।।३।।

नमो कृष्ण केशव, कन्हैया बिहारी।
नमो कृष्ण गोविन्द, मदन मुरारी॥४॥

नमो कृष्ण अवतार, धारी-खरारि।
नमो भक्तवत्सल, नमो धर्मधारी॥५॥

तुम्हारा ही भक्तों में, भगवान् बल है।
तुम्ही से सदा भक्त, जीवन सफल है॥६॥

सुजन भक्त के, सुमन श्याम तुम हो।
दुःखी दीन-दुनिया के, आराम तुम हो॥७॥

सदा सच्चिदानन्द, घनश्याम तुम हो।
सत्यं शिवं सुन्दरं, श्याम तुम हो॥८॥

हरे! नीति आगम, निगम सार तुम हो।
सकल विश्व के, एक आधार तुम हो॥९॥

सुना है तुम्हें भक्तजन, जब जब सुमरते।
नहीं आप फिर, एक क्षण धीर धरते॥१०॥

दयाकर दयामय, सकल दुःख हरते।
हृदय से लगा, प्रेम से पार करते॥११॥

तुम्हारे ही बल से, मगन भक्त रहते।
हरे कृष्ण श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण कहते॥१२॥

प्रभो! दास को भक्ति, का रस पिला दो।
मुझे मन के मन्दिर में, दर्शन दिखा दो॥१३॥

हरे कृष्ण! गोविन्द! मुझ को रटा दो।
इसी नाम का चक्र, मन में चला दो॥१४॥

रहे मेरे मन में, अटल कृष्ण! भक्ति।
मधुप में बन हो, कमल कृष्ण-भक्ति॥१५॥

लगा लूं लगन तुझ में, मुरली मनोहर!
रहूँ मैं मगन तुझ में, मुरली मनोहर॥१६॥

तुम्हीं नाथ हो मेरे, जीवन खिवैया।
मुझे रट लगे, श्रीकन्हैया! कन्हैया॥१७॥

श्री अज्ञात कृष्ण-भक्त की शरणागति की पराकाष्ठा
को हमारा कोटि कोटि प्रणाम्॥

॥ सनातन धर्म ॥

येन विश्व-मिदं नित्यं, धृतं चैव सुरक्षितम्।
सनातनोऽक्षरो यस्तु, तस्मै धर्माय वै नमः॥

अर्थात् जिसने इस सम्पूर्ण विश्व को नित्य धारण कर रखा है और जो अविराम इसका सब प्रकार से पालन-पोषण तथा सुरक्षा प्रदान करता है, जो सनातन तत्त्व (परब्रह्म, पुरुषोत्तम) द्वारा संस्थापित, स्वयं सनातन (अविनाशी) और अनुयायियों को सनातन बनाने वाला तथा परमात्म स्वरूप को प्राप्त

करवाने वाला है– उस सनातन और अक्षर अर्थात् अविनाशी धर्म को हमारा नमस्कार है।। सविस्तार जानकारी के लिए हमारी प्रकाशित पुस्तक 'नित्यकर्मविधिः' में पढ़ें।। शुभमऽस्तु।।

सनातन-धर्म-प्रेमी आबालवृद्ध पुरुष-महिला पाठकों के प्रोत्साहनार्थ तथा जीवन सफल बनाने के लिए प्रेरणादायक, अनुसरणीय

।। सनातन-विचार।।

परिश्रम सफलता की कुञ्जी है। सफलता प्राप्त करने के लिए ज़बरदस्त प्रयत्न और ज़बरदस्त इच्छा रखो। प्रयत्नशील व्यक्ति कहता है "मैं समुद्र पी जाऊंगा, मेरी इच्छा से पर्वत टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे।" इस प्रकार की इच्छा रखो, कड़ा परिश्रम करो, तुम अपने उद्देश्य को निश्चित् पा जाओगे।।1।।

* * *

सादा जीवन उच्च्य विचार वाले कर्मयोगी बनो– कर्म करना बहुत अच्छा है, पर वह विचारों से आता है, इसलिए अपने मस्तिष्क को उच्च्य विचारों और उच्च्तम आदर्शों से भर लो, उन्हें रात-दिन अपने सामने रखो, उन्हीं में से महान कार्यों का जन्म होगा।।2।।

* * *

जीवन संघर्ष है और संघर्ष ही जीवन है– असफलता की चिन्ता मत करो, वे सर्वथा स्वाभाविक हैं, वे असफलताएं जीवन के सौंदर्य हैं। उनके बिना जीवन निरर्थक है। सुख-दुःख , यश-अपयश, जय-पराजय, हंसना-रोना, आशा-निराशा, दिन-रात, अन्धकार-प्रकाश तथा जन्म-मरण आदि द्वन्द्वों से बना यह संसार निर्बाध गति से चलता रहता है, जिसके फलस्वरूप उपर्युक्त अनुलोम-विलोम (उलटी-सीधी) शब्दार्थ वाली घटनायें घटित होना निश्चित है। जीवन में यदि संघर्ष न रहे तो जीवित रहना ही व्यर्थ है। अतः

असफलताओं की ओर ध्यान मत दो। अपने ध्येय को सामने रखकर हज़ार बार आगे बढ़ने का प्रयास करो। यदि आप हज़ार बार भी असफल रहें तो एक बार फिर प्रयत्न करो– निश्चित रूप से उद्देश्य प्राप्त कर लोगे।।3।।

* * *

हम किसी से कम नहीं– आत्मविश्वास जीवन में उत्तरोत्तर प्रगति करने की सब से बड़ी प्रेरणादायक शक्ति है। 'मानव–मानव अन्तर, कोई हीरा कोई कंकर'– इस लोकोक्ति में एक तथा दूसरे मनुष्य के बीच अन्तर होने का कारण उसका अपने में विश्वास होना और न होना ही है। अतः अपने आप में विश्वास करना सीखो– कीचड़ में कमल के समान खिलोगे।।4।।

* * *

निडर बनो – निर्भयता या निर्भीकता अत्युत्तम गुण है। भय से ही दुःख होता है। भय ही पतन तथा पाप का कारण है। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में पतन का कारण मात्र भय है। अतः निर्भीकता का पाठ पढ़ो और पढ़ाओ।।5।।

* * *

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन – शास्त्र का कथन है– "शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।।" अर्थात् स्वास्थ्य बड़ा धन है। इस धन के बल पर सभी उपर्युक्त विचारों में सफलता प्राप्त करना सहज है। अतः शरीर को सदैव स्वस्थ रखने के लिए सन्तुलित आहार, व्यायाम (योगाभ्यास) आचरण तथा विचारों की शुद्धि नितान्त आवश्यक है।।6।।

* * *

दृढ़ इच्छाशक्ति वाले बनो – दृढ़ इच्छाशक्ति सब से अधिक बलवान है। इसके सामने हर एक वस्तु झुक जाती है, क्योंकि वह ईश्वर व स्वयं ईश्वर से ही आती है। पवित्र और दृढ़ इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान् है– क्या तुम इसमें विश्वास करते हो?।।7।।

* * *

दान वीर बनो – पूरा जीवन देने के लिए ही है। प्रकृति देने के लिए तुम्हें विवश करेगी, इसीलिए ही अपनी खुशी से दो। स्वार्थी मत बनो। स्वार्थ हीनता ही नैतिकता है। निःस्वार्थता ही धर्म की कसौटी है– "सामान सौ बरस का पल की खबर नहीं" ऐसा कोई भी नहीं है, जिसे अन्त में सब कुछ छोड़ना न पड़े।।8।।

* * *

परोपकारी बनो – शुद्ध बनना और दूसरों की भलाई करना ही सब उपासनाओं का सार है। जो गरीबों, निर्बलों और दीन-दुखियों में शिव (परमात्मा) को देखता है, वही वास्तव में शिव का उपासक है– "परहित सरिस धर्म नहीं भाई, पर पीड़ा सब नहीं अधमाई"।।9।।

* * *

उपदेशों की अपेक्षा, आचरण पर अधिक बल दो– अभ्यास अत्यावश्यक है। तुम घण्टों बैठ कर उपदेश सुनते-सुनाते रहो, पर यदि तुम उसका अभ्यास नहीं करते, तो एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते। यह सब तो अभ्यास पर ही निर्भर है। सिद्धांतों और उनकी व्याख्याओं को मात्र सुनने, सुनाने किन्तु तदनुरूप आचरण न करने से कुछ लाभ नहीं होगा।।10।।

* * *

किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्ति का मूल मन्त्र – एक विचार ले लो। उसी एक विचार के अनुसार अपने जीवन को बनाओ, उसी को सोचो, उसी का स्वप्न देखो और उसी पर अवलम्बित (लटके) रहो। अपने मष्तिष्क, मांसपेशियों, स्नायुओं और शरीर के प्रत्येक भाग को उसी विचार से ओतप्रोत (जुड़ा हुआ) होने दो और दूसरे सब विचारों को अपने से दूर रखो। यही सफलता का रास्ता है और यही वह मार्ग है, जिसने महान् धार्मिक पुरुषों (सनातनकर्म वीरों) का निर्माण किया है। इस मूल मन्त्र द्वारा जो मांगोगे, वह तुम्हें मिलेगा, जो ढूंढोगे, तुम उसे अवश्य पाओगे।।11।।

(धर्म वीर-कर्मवीर स्वामी विवेकानन्द)

* * *

दूसरों का सहारा एक मृगतृष्णा – अपने बल पर, अपनी बुद्धि पर कार्यों को करने से मनुष्य की अनेक गुप्त शक्तियों का विकास होता है, आत्मबल की अभिवृद्धि होती है। आत्म बल का विकास आवश्यक है। दीर्घकालीन और निरन्तर अभ्यास से इस शक्ति का विकास सम्भव है, आवश्यक है तो केवल, उत्कट बलवती इच्छा शक्ति की।।12।।

* * *

जीवन पराग – कानाफूसी से विक्षुब्ध न हों। वर्तमान् का सदुपयोग करें। सद्ग्रन्थ तथा जीवनोपयोगी पुस्तकें पढ़ें। बात को कल पर न टालें, यह मानसिक शैथिल्य और मन की चंचलता वृत्ति का परिचायक है। खुले मन से अपनी भूल स्वीकार करें, गलतियों से जीवन का पाठ सीखें, भविष्य में भूल न करने की सावधानी रख, दृढ़ता से कर्त्तव्य पथ पर आरूढ़ रहें, सहन करना सीखें, अति से बचें– न इतना कड़वा बनें कि जो चखे, सो थूक दे और न इतना मीठा बनें कि जो चखे सो चट कर जाये। सब से मिलना, बरतना, पर इच्छानुसार स्वतन्त्र कार्य करना ही उन्नति का सही मार्ग है तथा मध्यम मार्ग अपनायें– अधिकव्यय – अल्प व्यय का मध्य, अत्युदार कृपण का मध्य, मूक-वाचाल का मध्य। ये मध्यमार्ग ही समाज में मनुष्य की योग्यता, सामर्थ्य और सच्चे गौरव को प्रकट करने वाला है।।13।।

* * *

जिस मनुष्य के मन से भय, चिन्ता, आशंका, सन्देह, निराशा, लाचारी, बेबसी, अकर्मण्यता और निर्बलता किंवा-झिजक ऐसी शास्त्र विरुद्ध भावनायें टपक रही हों, वह कभी कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकता।।14।।

* * *

जीवन में रस लें, बन्धनों से मुक्त समझें, आवश्यक-अनावश्यक का भेद करना सीखें। सच्ची इच्छा और नकली इच्छा में विवेक करें–समीप से देखें (दूर के ढोल सुहावने)।।15।।

* * *

योगी की तरह एकान्त वासी मत बनिए – जहाँ तक हो सके साहसपूर्ण ढंग से सामाजिक कार्यों में भाग लीजिए। आप व्यर्थ ही डरते हैं– भला किस लिए? क्या आप नहीं जानते कि अन्य व्यक्ति भी आपसे अधिक नहीं जानते, वे भी साधारण ही हैं। ज़रा साहस से काम लीजिए। किसी सभा समिति में सम्मिलित हो जाइये। पहले पहल यदि झेंपना पड़े तो घबराइये नहीं, हतोत्साह के स्थान पर उत्साह और उल्लास धारण कीजिये– "हिम्मते मरदां, मददे खुदा" बिना हिम्मत संसार में मनुष्य का कोई मूल्य नहीं।।16।।

* * *

क्रियाशीलता, परिश्रमशीलता – हमारे जीवन का सर्वस्व है। जय, मान प्रतिष्ठा, रुपया-पैसा, कार्यदक्षता, उन्नति, प्रगति, स्वावलम्बन– ये सब श्रम के पुरुस्कार हैं; क्रियाशीलता यौवन को स्थिर रखती है।।17।।

।। सत्य सनातन वाणी ।।

* दूसरों पर दोष न मढ़ो– तुम जो कष्ट भोग रहे हो, उसके एकमात्र कारण तुम्ही हो।।1।।
* जिसमें आत्मविश्वास नहीं, वही नास्तिक है।।2।।
* अज्ञान, भेद बुद्धि और वासना – ये तीनों ही मनुष्य जाति के दुःख के कारण हैं।।3।।
* जीवन क्षणस्थायी, एक क्षणिक स्वप्न है। यौवन और सौन्दर्य नश्वर हैं।।4।।
* एकमात्र ईश्वर ही सत्य है, एकमात्र आत्मा ही सत्य है, एकमात्र धर्म ही सत्य है।।5।।
* ज्ञान लाभ प्राप्त करने के लिए शास्त्र को पढ़ने की बड़ी ज़रूरत है।।6।।

* किसी की निन्दा मत करो। यदि दुःख विपत्ति आये तो समझो ईश्वर तुम्हारे साथ खेल रहा है और यही समझ कर दुःख में भी सुखी रहो।।7।।
* मन, वाणी और कर्म से पवित्र बनो।।8।।
* प्रेम और लग्न के साथ किया हुआ प्रत्येक कर्म आनन्ददायक होता है।।9।।
* भगवान् के नाम जप में चमत्कारिक शक्ति है।।10।।
* किसी विषय पर मन को एकाग्र करने का नाम ध्यान है।।11।।
* कलियुग में दान ही एकमात्र कर्म है।।12।।
* परब्रह्म, पुरुषोत्तम, परमात्मा द्वारा संस्थापित सनातन धर्मशास्त्र श्रीमद्भगवद्गीताशास्त्र का ज्ञानदान सर्वश्रेष्ठ दान है।।13।।
* हिन्दू सनातन धर्म की तीन सार भूत बातें हैं– ईश्वर में, श्रुतिवेदों में, कर्मवाद तथा जन्मान्तरवाद के सिद्धान्त में विश्वास करो।।14।।
* गीता और गङ्गा में हिन्दुओं का हिन्दुत्व है।।15।।
* शिकायतों और झगड़ों से क्या लाभ? सदा बड़बड़ाते रहने से तुम्हारा जीवन दुःखमय हो जायेगा और सर्वत्र असफलता ही हाथ लगे।।16।।
* गीता एक सुन्दर पुष्पमाला या चुने हुए सर्वोत्तम फूलों के एक गुलदस्ते के समान है।।17।।
* मृत्यु का समय स्थान और कारण निश्चित हैं, भले ही मृत्युंजयी भीष्म पितामह की तरह गोलियों से छलनी हो जाये, किन्तु मृत्यु नहीं होगी यदि समय नहीं आया हो तथा यदि मृत्यु का समय आ गया हो तो कुशा के अग्र भाग के स्पर्श मात्र से ही मृत्यु हो जायेगी। अतः मृत्युभय से व्यर्थ ही किसी अनर्थ में मत पड़ो।।18।।

यथा– नाऽकाले म्रियते जन्तु – विंद्धः शर शतैरपि।

कुशाग्रेणैव संस्पृष्टः प्राप्त कालो न जीवति।।

अनमोल बातें

1. उठो! जागो! और जब तक ध्येय की प्राप्ति नहीं होती, तब तक रुको मत।

2. चिन्ता को– चिन्तन, पुरुषार्थ, उद्योग तथा निराकरणार्थ सतत प्रयत्न से परास्त करने की अकाट्य क्षमता प्राप्त होती है।

3. यदि आप में सत्य, पवित्रता और निःस्वार्थता– ये तीन बातें विद्यमान् हैं, तो इस ब्रह्माण्ड में ऐसी कोई ताकत नहीं जो आपका बाल भी बाँका कर सके।

4. क्विंटल भर ज्ञान से एक किलो क्रिया अधिक है।

5. वर्णमाला में ऐसा कोई अक्षर नहीं है जिससे मन्त्र नहीं बन सकता, उनका उपयोग करने वाले विद्वान् की आवश्यकता है।

6. ऐसी कोई वनस्पति नहीं जिसकी औषधी नहीं बन सकती, उनका उपयोग करने वाले पारखी वैद्य की आवश्यकता है।

7. प्रत्येक व्यक्ति को उपयोग किया जा सकता है क्योंकि कोई भी व्यक्ति अयोग्य नहीं है, उससे काम करवाने की क्षमता रखने वाले मनोवैज्ञानिक की आवश्यकता है।

8. मैं अनेकों से श्रेष्ठ हूँ, थोड़े मुझ से श्रेष्ठ हैं, परन्तु अधम (Inferior) कदापि नहीं।

9. शक्ति का रहस्य एकता और संगठन में निहित है।

10. श्रद्धापूर्वक नीच से भी अच्छी विद्या को, चाण्डाल से भी परम धर्म को तथा नीच कुल से भी स्त्री रत्न को ग्रहण करो।

11. कार्य की सामान्य शुरूआत देख कर घबराओ मत, कार्य सामान्य से ही महान होता है।

॥ सद्विद्यायुक्त मानव के लक्षण ॥

12. ऐसा व्यक्ति विद्वान् होने पर भी निरन्तर सद्ग्रन्थों का अध्ययन करता रहता है। अच्छा वक्ता, लेखक, गायक, समय व प्रसंगानुसार अनुकूल उद्धरण देकर बात स्पष्ट करता है। ज्ञानी होते हुए भी बड़ों की बात आदरपूर्वक सुनकर तथा पालन करने का प्रयास करता है। शब्दों के ठीक ठीक अर्थ करता है, लोगों की शंकाओं का समाधान करता है।।

13. दुनिया में तीन प्रकार के कष्ट, जिनका जीवन में भोगना सब के लिए ज़रूरी है–

(क) **आध्यात्मिक कष्ट या देहिक ताप** – अन्दरूनी बीमारियाँ– खुजली, फोड़ा-फुंसी, बुखार, हाथ-पैर-आँख, कान, दान्त, सिर, जोड़ों का दर्द; सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, दाग-धब्बे, पेट की खराबी, चेहरे की कुरूपता आदि, पूर्व जन्म के कर्मों का फल है –ये आध्यात्मिक कष्ट हैं।।

(ख) **अधिभौतिक या सांसारिक ताप** – बाहरी कारणों से रोग और कष्ट – अंग पर चोट लगना, टूटना, कटना, सांप-बिच्छु द्वारा काटना, ऑप्रेशन, घर-दुकान-मकान में चोरी, बारिश होने या न होने से, होने वाली हानि; पति, पत्नी, संतान की ओरे से होने वाले कष्ट, जेल जाना, बाल्यावस्था में माता-पिता, जवानी में पति-पत्नी तथा बुढ़ापे में सन्तान की मृत्यु – इस श्रेणी में आते हैं।

(ग) **अधिदैविक ताप या कष्ट** – वर्तमान् जीवन में किये जाने वाले बुरे कर्मों या पापों के कारण मरने के बाद मिलने वाली यमयातना – इस श्रेणी में आती हैं।

14. दो बातों का डर हमेशा रखो– पाप का और परमात्मा का।

15. कर्म करने में ही तेरा अधिकार है, उसके फल में नहीं।

16. संघर्ष ही जीवन और जीवन ही संघर्ष है।

17. **चार युगों की समयावधि**

(क) सत्युग = 17,28,000 वर्ष

(ख) त्रेतायुग = 12,96,000 वर्ष

(ग) द्वापरयुग = 8,64,000 वर्ष

(घ) कलियुग = 4,32,000 वर्ष

चार युगों की चौकड़ी का मान = 43,20,000 वर्ष

18. संकट काल – धैर्य, धर्म, मित्र और नारी को परखने की कसौटी है।

॥ शुभमऽस्तु ॥

श्रीमद्भगवद्गीतान्तर्गत ७०० श्लोकों की वर्णानुक्रम सूची
अकारादिक्रम से हकारपर्यन्त क्रमबद्ध सूची

(आ)

(र)

(ल)

(ह)

सम्पूर्ण संख्या = ७००

श्रीमद्-भगवद्-गीता जी के क्रमबद्ध प्रधान विषयों का दिग्दर्शन

श्लोक विषय

अर्जुन विषादयोग नाम पहला अध्याय

१-११ दोनों सेनाओं के प्रधान योद्धाओं की गणना एवं सामर्थ्य-कथन।
१२-१९ उभय पक्षीय सेनाओं की शंखध्वनि-कथन।
२०-२७ अर्जुन द्वारा सेना निरीक्षण-प्रसङ्ग।
२८-४७ मोहाकुल हुए अर्जुन के कायरता, ममता एवं शोकयुक्त वचन।

सांख्य योग नाम २रा अध्याय

१-१० अर्जुन की कायरता के विषय में श्रीकृष्णार्जुन संवाद।
११-३० गीतोपदेश प्रारम्भ, सांख्य योग का विषय।
३१-३८ क्षात्रधर्मानुसार युद्ध करने की अनिवार्यता निर्धारण।
३९-५३ कर्मकाण्ड का विषय।
५४-७२ स्थिर बुद्धि पुरुष के लक्षण तथा उसकी महिमा-वर्णन।

कर्मयोग नाम ३रा अध्याय

१-८ ज्ञान एवं कर्मयोगानुसार निष्कामभाव से नियतकर्म करने की श्रेष्ठता का निरूपण।
९-१६ यज्ञादि कर्मों की आवश्यकता का निरूपण।
१७-२४ ज्ञानवान् एवं स्वयं भगवान् के लिए भी, लोक संग्रह के लिए, कर्मों की आवश्यकता।
२५-३५ अज्ञानी एवं ज्ञानवान् के लक्षण तथा राग-द्वेष रहित होकर कर्म करने की प्रेरणा।
३६-४३ काम के विरोध का विषय।

ज्ञान-कर्म-संन्यास योग नाम ४था अध्याय

१-१८ सगुण भगवान् का प्रभाव एवं कर्म-योग-विषय।
१९-२३ योगी पुरुषों के सदाचरण तथा उनकी महिमा।
२४'३२ फलसहित भिन्न-भिन्न यज्ञों का कथन।
३३-४२ ज्ञान की गौरव।

कर्म-संन्यास योग नाम ५वां अध्याय

१-६ सांख्ययोग-कर्मयोग निर्णय।
७-१२ सांख्या योगी-कर्मयोगी-लक्षण तथा उनकी महिमा।
१३-२६ ज्ञानयोग का विषय।
२७-२९ भक्तियुक्त ध्यान-योग-वर्णन।

आत्म-संयम-योग नाम ६वां अध्याय

१-४ कर्मयोग-विषय तथा योगारूढ़ पुरुष के लक्षण।
५-१० आत्मोद्धार के लिए प्रेरणा तथा भगवत् प्राप्त पुरुष के लक्षण
११-३२ सविस्तार ध्यान-योग-विषय।
३३-३६ मनोनिग्रह-विषय।
३७-४७ योगा-भ्रष्ट पुरुष की गति का विषय तथा ध्यानयोग-महिमा।

ज्ञान-विज्ञान-योग नाम ७वां अध्याय

१-७ विज्ञान सहित ज्ञान का विषय।
८-१२ सम्पूर्ण पदार्थों में कारण रूप से भगवान् की व्यापकता का वर्णन।
१३-१९ आसुरी स्वभाव वालों की निन्दा तथा भगवद्भक्तों की प्रशंसा।
२०-२३ अन्य देवोपासना का विषय।
२४-३० भगवान् के प्रभाव एवं स्वरूप से अनभिज्ञ जनों की निन्दा और जानने वाले पुरुषों की प्रशंसा।

अक्षर ब्रह्मयोग नाम ८वां अध्याय

१-७ ब्रह्म-अध्यात्म-कर्मादिविषयक ७ प्रश्नोत्तर।
८-२२ उपासना काण्ड-विषय।
२३-२८ शुक्ल एवं कृष्णमार्ग का विषय।

राजविद्या-राजगुह्य योग नाम ९वां अध्याय

१-६ प्रभाव सहित ज्ञान का विषय।
७-१० जगतोत्पत्ति का विषय।
११-१५ भगवन्निन्दक आसुरी स्वभाव वालों की निन्दा तथा दैवी प्रकृति वाले भगवद्भक्तों का स्वरूप।
१६-१९ [illegible] से प्रभाव सहित भगवत्-स्वरूप-वर्णन।

२०-२५ सकाम-निष्काम उपासना-फल।
२६-३४ निष्काम भगवदोपासना की महिमा।

विभूतियोग नाम १०वां अध्याय

१-७ भगवान् की विभूति एवं योगशक्ति-कथन तथा उनके जानने का फल।
८-११ फल तथा प्रभाव सहित उपासना का कथन।
१२-१८ अर्जुन द्वारा भगवदस्तुति तथा विभूति और योगशक्ति के कथन के लिए भगवान् वासुदेव से प्रार्थना।
१९-४२ भगवान् द्वारा विभूतियों और योग शक्ति का कथन।

विश्वरूपदर्शन योग नाम ११वां अध्याय

१-४ विश्वरूपदर्शनार्थ अर्जुन की प्रार्थना।
५-८ भगवान् द्वारा अपने विश्वरूप का वर्णन।
९-१४ संजय द्वारा धृतराष्ट्र के प्रति विश्वरूप का वर्णन।
१५-३१ अर्जुन द्वारा विश्वरूपदर्शन तथा स्तुति।
३२-३४ भगवान् द्वारा अपने प्रभाव का वर्णन तथा अर्जुन को युद्ध के लिए प्रोत्साहन।
३५-४६ भयाकुल अर्जुन द्वारा भगवदस्तुति तथा चतुर्भुजरूप का दर्शन कराने के लिए प्रार्थना।
४७-५० वासुदेव द्वारा विश्वरूपदर्शन के गौरव का कथन तथा चतुर्भुज एवं सौम्यरूप का दर्शन।
५१-५५ विना अनन्य भक्ति के चतुर्भुज रूप के दर्शन की दुर्लभता और फल सहित अनन्य भक्ति कथन।

भक्तियोग नाम १२वां अध्याय

१-१२ साकार तथा निराकार के उपासकों की उत्तमता का निर्णय एवं भगवत् प्राप्ति के उपाय का विषय।
१३-२० भगवत् प्राप्त पुरुष के लक्षण।

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-विभाग योग नाम १३वां अध्याय

१-१८ ज्ञान सहित क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-विषय।
१९-३४ ज्ञान सहित पुरुष-प्रकृति विषय।

गुण-त्रय-विभाग योग नाम १४वां अध्याय

१-४ ज्ञान-महिमा तथा प्रकृति-पुरुष से जगदुत्पत्ति।
५-१८ सत्, रज, तम – तीन गुणों का विषय।
१९-२७ भगवत् प्राप्ति का उपाय तथा उपर्युक्त गुणातीत पुरुष के लक्षण।

पुरुषोत्तमयोग नाम १५वां अध्याय

१-६ संसार-वृक्ष-कथन एवं भगवत् प्राप्ति-उपाय।
७-११ जीवात्मा का विषय।
१२-१५ प्रभाव सहित परमेश्वर-स्वरूप-विषय।
१६-२० क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम- विषय।

दैवासुर सम्पद् विभाग योग नाम १६वां अध्याय

१-५ फलसहित दैवासुर-सम्पदा-कथन।
६-२० आसुरी सम्पदा वालों के लक्षण तथा उनकी अधोगति का कथन।
२१-२४ शास्त्र विपरीत आचरणों को त्यागने तथा शास्त्रानुकूल आचरणों के लिए भगवत्प्रेरणा।

श्रद्धा-त्रय-विभाग योग नाम १७वां अध्याय

१-६ श्रद्धा का और शास्त्र प्रतिकूल घोर तप करने वालों का विषय।
७-२२ आहार, यज्ञ, तप और ज्ञान के भिन्न-भिन्न भेद।
२३-२८ ॐ तत्सत् के प्रयोग की व्याख्या।

मोक्ष-संन्यास-योग नाम १८वां अध्याय

१-१२ त्याग-विषय।
१३-१८ कर्मों के होने में सांख्य-सिद्धान्त-कथन।
१९-४० त्रिगुणानुसार ज्ञान, कर्म, कर्ता, बुद्धि, धृति और सुख के अन्यान्य भेद।
४१-४८ फलसहित वर्णधर्म का वर्णन।
४९-५५ ज्ञान-काण्ड-विषय।
५६-६६ भक्ति सहित कर्म योग विषय एवं गीतोपदेश समाप्त।
६७-७२ श्रीमद्भगवद्गीता माहात्म्य।
७३-०० अर्जुन-मोह भङ्ग एवं युद्ध के लिए उद्यत।
७४-७७ सञ्जय की बारम्बार हर्षानुभूति।

७८-०० सञ्जय द्वारा दृढ़ विजयोद्घोष।



लेखक से मिलिये
'सुस्वागतम्'

श्रीस्थलवासिनी, महिषमर्दिनी महालक्ष्म्याऽष्टादशभुजा के अनुग्रह से ख्रीष्टाब्द दिसम्बर 2, 1943 तदनुसार मार्गशीर्ष प्रविष्टे 20,2000 वैक्रमाब्द को कष्टवार (किश्तवाड़) नगर के सुप्रतिष्ठित, राजपुरोहित नाम से प्रसिद्ध, पत्स्वामिन कौशिक गोत्री ब्राह्मण परिवार में जन्म। माँ दुर्गा के प्रसाद से प्राप्त होने के फल स्वरूप पारिवारिक जनों ने 'दुर्गा लाल' इस नाम से पहचान बनाई।

गणित एवं हिन्दी-संस्कृत भाषा के प्रकाण्डाचार्य दिवङ्गत प्रातः स्मरणीय गुरूदेव पं॰ लक्ष्मणदास शर्मा शास्त्री प्रभाकर, ज्योतिष एवं कर्मकाण्ड मार्तण्ड मामा श्री हरिलाल शर्मा 'व्यास' तथा संस्कृत व्याकरणाचार्य एवं भाषा विद प्रोफेसर जगन्नाथशास्त्री जी के प्रशिक्षण में बी॰ ए॰ (हिन्दी-संस्कृत) बी॰ एड, वार्धा मुम्बई से संस्कृत 'कोविद' की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं तथा ज्योतिष शास्त्र की दीक्षा मामाश्री से ली।

ज्योतिष तथा धार्मिक क्षेत्र में जनकल्याण विषयक साहित्य' संकलन एवं टीकाकार' के दायित्व निर्वहन का श्रेय भी पूज्य गुरूदेवों को जाता है।

मार्च 1970 से ज्योतिष क्षेत्र में पदार्पण। वर्ष 1980 में **'भारती ज्योतिष प्रकाश-जन्म पत्रिका निर्माण, विश्लेषण एवं समाधान केन्द्र'** कार्यालय की स्थापना। कार्यालय से शुद्ध-संस्कारित प्रक्रिया द्वारा-'जन्म पत्रिका' लघुजन्माङ्गपत्रक निर्माण, परीक्षण एवं परिहार, उपचार हेतु कल्याणकारी समाधान के परिणामस्वरूप देश के विभिन्न क्षेत्रों की जनताजनार्दन सेवा कार्य उत्तरोत्तर वृद्धि की ओर अग्रसर है।

वर्ष 1990 से धार्मिक क्षेत्र में लेखन कार्य का शुभारम्भ। गुरूदेवों की पुण्यस्मृति में तीन पुष्प-'भवानी सहस्रनामस्तवराजम्,' विवाह संस्कार विधिः तथा नित्यकर्म विधिः प्रकाशित हो चुके हैं। इस वर्ष ज्ञान-कर्म-उपासना' की त्रिवेणी श्रीमद्भगवद्गीता' का यह चतुर्थ पुष्प सरस एवं सरल ढंग से सनातन धर्म प्रेमी बन्धुवों के लाभार्थ प्रस्तुत करने का एक लघु प्रयास किया है।

कर्म काण्ड क्षेत्र में लोकापदा निवृत्त्यर्थ 'दुर्गा सप्तशती' पाठ यज्ञादि के अनुष्ठान में यथेष्ट अभिरूचि।

॥ श्री शङ्करः शं करोतु ॥